श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

आत्मपरिचयन

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एव लाइब्रेरियोको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमे ।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७५ [मूल्य ६) रु०

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान् सेठ भवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	,, वर्णीसघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,, कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,, सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	श्रीमान् मित्रसैन नाहरसिंहजी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,, प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,, सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,, दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,, बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,, बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,, केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,, सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,, मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मडी,	मुजफ्फरनगर
१५	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	श्रीमान् जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,, मत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,, बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,, विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	,, बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	श्रीमती सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसघी,	जयपुर
२२	,, मत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	श्रीमान् सेठ समल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,, बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी जैन,	,,
२५	,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	,,

२६ श्रीमान्	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७ ,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
२८ ,,	गोकुलचद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९ ,,	दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इजीनियर,	कानपुर
३० ,,	मत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मडी,	आगरा
३१ श्रीमती	सचालिका, दि० जैन महिलामडल, नमककी मडी,	,,
३२ श्रीमान्	नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस,	रुड़की
३३ ,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४ ,,	रोशनलाल के० सी० जैन,	,,
३५ ,,	मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	,,
३६ ,,	बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७ ,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गाँव
३९ श्रीमती	माता जी धनवती देवी जैन, राजागज,	इटावा
४० श्रीमान्	ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१ ,,	लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२ ,,	लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	,,
४३ ,,	हुकमचद मोतीचद जैन,	सुलतानपुर
४४ ,,	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५ ,,	इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४६ श्रीमती	कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी,	सुलतानपुर
४७ श्रीमान्	* गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज,	गया
४८ ,,	* बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा,	झूमरीतिलैया
४९ ,,	* सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन वडजात्या,	जयपुर
५० ,,	* बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ	सदर मेरठ
५१ ,,	× जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५२ ,,	× जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोटः—जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिन नामोंके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

•••०○०•••

[धर्मप्रेमी बधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरो पर निम्नाकित पद्धतियो मे भारतमें अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।

आत्मपरिचयन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

हम स्वय ही आनन्दमग्न है, किन्तु अपने इस स्वभावका विश्वास न रखकर बाह्य पदार्थोंसे आनन्द हो या आनन्दमे बाधा होती है—ऐसी एक दृष्टि हो गई है। इस दृष्टिसे वह अपने आनन्दको रोकता है। वह स्वय आनन्दमयस्वभावकी निधि है। आनन्द कही बाहरसे नही आता है। स्वय यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किसीसे लेना नही है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। कभी भी दूसरी जगहसे इसमे आनन्द लाया नही जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किसीने इसे आनन्दमय ब्रह्म कहा है अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप है आनन्दमय और इसीको किसीने ज्ञानका स्वरूप कहा है और किसीने इसे सत्का स्वरूप कहा है। इस तरहसे पृथक्-पृथक् कहा है, किन्तु स्याद्वाददृष्टिने इसे सत्चिदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभावसे वेढते स्वभाव वाला है। अतः इसे कोई ब्रह्मा कहते है और कोई आनन्दकी प्राप्ति कहते है, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है, अत उसे सच्चिदानन्दमय कहा है। जहाँ आनन्दका स्वरूप, चित्का स्वरूप पूर्ण विकसित है उसीका नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीवको स्वरूपसे देखो कि ऐसे है कि नही। वह ऐसे ही है। इन जीवोमे चैतन्य भी है, क्योकि अगर चैतन्य नही होता तो ज्ञान और समझ इन जीवोमे कहाँसे आती ? और आनन्द है कि नही ? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवोमे आनन्द आता कहाँसे ? इस तरह यह सच्चिदानन्दमय आत्मा है। मतलव यह है कि जैसा यह स्वय है अद्वैत वैसा ही अनुभव करना चाहिये। परपदार्थ भी अद्वैत है। किसीमे कोई दूसरा मिला नही है। दूध और पानी मिला हो फिर भी दूधमे दूध ही है और पानीमे पानी ही है। दूधमे पानी नही गया और पानीमे दूध नही गया। और यहाँ तक कि दूधके जितने परमाणु है वे सब पृथक्-पृथक् उसी दूधमे हें और पानीके परमाणु पानीमे पृथक् है, वे स्वय सत् हैं। यही बात है कि एकसे दूसरेमे परमाणु नही आते। प्रत्येक पदार्थ अपनो-अपना सत्ता लिए हुए है, प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है।

अद्वैत कहते उसे है जो दूसरेमे न लगा हो। जो दो चीजोमे मिलता है उसे द्वैत कहते है और जो दूसरेमे नही मिला है, खुद-ब-खुद अपने आप एक ही है उसे अद्वैत कहते है। जगतके सब पदार्थ खुद-ब-खुद अपने आपमे अपनी सत्ता लिए हुए हैं। इस तरह सभी अद्वैत है। सब पदार्थोंको अद्वैत निरखना है। प्रत्येक पदार्थ अपनेमे एक ही है इसमे दूसरेका प्रवेश नही है। इसलिए स्वयको अद्वैत निरखना और इसी प्रकार अपने आपमे भी अद्वैतका अनुभव करना बस इसीके मायने सिद्धि है। और इनका अनुभव करना कि यह मेरा भैया है, यह तो मेरा बच्चा है, यह तो मेरा घर-द्वार है यह मेरा वैभव है, यह मेरा शरीर है, मैं कुछ हू, इस प्रकार द्वैतका अनुभव करना रहा तो इसीको असिद्धि कहते है। उसीके मायने ससार है। पदार्थ जैसे है वैसा न अनुभव करना, वैसा न मानना बस इसीका नाम है जगजालका रुलना। जो अपनेको नाना वेशोरूप ही अनुभवता है उसे शाति नही मिलती है, क्योकि नानारूप इसके बन गए, सो एक तो वे सब पराये और फिर है नाना, अत: उनकी संभाल कैसे हो ? मुक्तिका रास्ता और कोई दूसरा नही है। यही अपने आपको जैसा शुद्ध, अकेला स्वरूप है वैसा मान जाना, बस यही मोक्षका रास्ता है, मुक्तिका पथ यही है। अभी धर्मपालनके लिए बहुत-बहुत काम किए जाते हैं, कर लो, किन्तु अपने आपके इस अद्वैत स्वरूपका अनुभव नही है तो धर्मपालन नही हुआ, शातिका मार्ग नही मिला, मोक्षका मार्ग नही पाया। धर्म एक ही होता है, धर्म पचासो नही होते। दुनियामे ये जो मजहब है वे तो मत है, धर्म नही हैं। आज जो दुनियामे प्रसिद्ध है, यह अमुक सम्प्रदाय है, यह अमुक मजहब है वे सब मत कहलाते है, धर्म नही होत हैं। मत अनेक होते हैं, पर धर्म अनेक नही होते।

धर्म अनेक हो ही नही सकते है। अब हमे धर्मपालन करना है या मत पालन करना है। अगर मत पालन करना है तो मतपालन किया जाय और यदि धर्म पालन करना है तो धर्म पालन किया जाय। धर्म है वस्तुका स्वरूप, वस्तुका अनुभव। यह मैं आत्मा कैसा हू, क्या हू, कैसे स्वभाव वाला हू ? जैसा हू तैसा ही मानना, इसीके मायने हैं धर्मका पालन। जैसे जातिया अनेक हो गईं—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि। इन सबके रहन-सहन प्रकार अनेक हो गए, बुद्धि अनेक हो गई। एकसा ही उन मनुष्योका जन्म हुआ। एकसा ही उनका मरण होता है। इसी तरह इन सब लोगोने अपने-अपने मतको बदल दिया है, पर वे हैं सब एक किस्मके आत्मतत्त्व। जैसे उन सबने अपने-अपने मत बदल दिए हें पर स्वरूप को तो नही बदल पाया हे। उन्होने अपना आकार तो नही बदल दिया है।

ऊपरकी चीजोका फर्क बना लिया है कि कोई चोटी रखाता हे, कोई नहीं रखाता है। यह सब कुछ हो जाता है, पर उनका स्वरूप नही बदल जाता है। जैसे मनुष्यक स्वरूप

नही बदलता है, इसी तरह चाहे जितनी ही कल्पनाएँ आ जावें, चाहे जितने ही मत बन जावें उनकी आत्माका स्वरूप नही बदलेगा। उनकी आत्माका एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है। कोई ऐसे भी जीव है जिनका यह मन है कि आत्मा फात्मा कुछ नही है, आत्माका अस्तित्व कुछ नही है। वे आत्माको मना कर रहे है, आत्माका विरोध कर रहे है। आत्मा ही आत्माका निषेध कर रहे है, सो निषेध करनेमे सत् तो नही मिट गया। वैसे आत्माकी अन्यरूपमे कल्पनाएँ कर लें तो कल्पनाएँ कर लेनेसे आत्मामे वह कुछ नही हो जायगा। आत्मा वही है। जैसे रस्सीकी डोरमे भ्रम हो जाय कि यह सर्प है तो भ्रम हो जानेसे कही रस्सीकी डोर सर्प नही बन जायगी। वह तो रस्सी ही रहेगी। हम कितनी ही चीजोंके बारे मे कितनी ही कल्पनाएँ कर डालते है, परन्तु इतनी कल्पनाएँ कर लेनेसे ही वह चीज वैसी नही हो जाती। वह तो सत्तासे स्वत.सिद्ध जैसी है वैसी ही है, हम इस आत्माके बारमे कितनी ही कल्पनाएँ कर लें, तो कल्पनाके अनुसार हम नाना नही बन जावेंगे। हमारा तो एक स्वरूप है जो अनादिसे है व अनत काल तक रहेगा। यह निगोद कीडो जैसी पर्यायोमे भी पहुचा है, इस आत्माका प्रदेश आकार भी बदल-बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओमे भी इस आत्माका स्वरूप वही एक रहा है, वह नही बदल गया। उसका जो स्वत्व है सोई है, वह नही बदला। ऐसी आत्माका वह अद्वैत स्वरूप जिनके ज्ञानमे आया है, जिसने द्वैतका अनुभव किया है उनको प्रसिद्धि होती है।

इस एकको जिसने चाहा है उसको सर्वस्व मिला है और उस एकको छोड़कर जिसने नाना पदार्थोमे दिल लगाया है उनको कुछ नही मिला है। एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसरे राजासे लडाई करने गया। दो एक माह तक युद्ध होता रहा उसमे उस राजाकी विजय हो गई। इसके बाद वहाँपर राजाने बडा उत्सव मनाया और खुशीमे देशकी सब रानियोको पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिए हमारेको पत्र लिखें। तब किसी रानीने साडी लिखा, किसीने जेवर लिखा, किसीने अमुक खिलौनेको लिखा, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ लिखा। जो सबसे छोटी रानी थी उसने अपने पत्रमे लिख दिया, केवल १ एकका अक और कुछ नही लिखा। पत्रको लिफाफेमे भरकर भेज दिया। जब राजाने पत्रोको खोला तो किसीमे कुछ लिखा था, किसीमे कुछ। मगर छोटी रानीके पत्रमे केवल १ का अक लिखा था। राजा इस केवल १ का अर्थ न समझ सका। उसकी समझमे उस केवल १ का मतलब न आया। उस राजाने मत्रीसे पूछा कि इस छोटी रानीने क्या मगाया है ? मत्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानीने केवल एक आपको ही चाहा है और कुछ नही चाहा है। राजा सभी रानियोको किसीको साडी, किसीको गहना, किसीको खिलौने लेकर अपने देश जाता है। जब वह वहाँ पहुचता है तो जहाँ जो कुछ देना था उनके

घर पहुचा दिया और छोटी रानीके महलमे स्वय पहुच गए। इसने केवल एकको चाहा था पर अब यह बतलाओ कि राजाकी सारी चीजें, सारा वैभव, हाथी, सेना, शासन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महलमे पहुच गए या नही। इस जगतमे जितनी भी व्यवस्थाएँ चल रही है वह सब चैतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योतिको जिसने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभावको जिसने चाह लिया उसको सर्वसिद्धि है।

प्रियतम आत्मन्! इस आत्मानुभवकी ओर आवो, वाहरकी ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन-सहनको सात्त्विक बनावो और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धिका है उसे करो। बनावट, दिखावट, सजावट न करके मर्ममे दृष्टि दो तो बस यही धर्मका पालन है। शाति भी इसी उपायसे प्राप्त होगी, मोक्षमार्ग भी इसी उपायसे मिलेगा। दर दर पदार्थोमे भटकना, नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करके उपयोगको बाहर फसाना, यह सब अशातिके साधन है, अधर्मका पालन है, धर्मकी उपेक्षा है। अपने इन २४ घटोमे जब कि प्राय. सारा समय दुरुपयोगमे जाता है, मोह, राग, द्वेषोमे जाता है, नाना कल्पनाओके विकल्पमे जाता है। भाई! १५ मिनटका सकल्प करके, सत्यका आग्रह करके, असत्यका असहयोग करके अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो। एक-आध मिनट लगानेमे कुछ बिगड नही जायगा। एक अमूर्त तत्त्वकी प्राप्ति होगी। अद्वैतका ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते हैं। जगतके जीव अहकार भरे हुए है। मैं परिवार वाला हू, धन वाला हू, इज्जत वाला हू, यह मैं अमुक हू, उत्तम हू, शुद्ध हू। नाना प्रकारकी कल्पनाएँ लिए हुए यह प्राणी विचर रहे हैं। अरे तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप सर्वत्र एक है। यदि मैंने अपने ही स्वरूपको माना तो धर्मका पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूपको छोडकर यदि नाना रूपोमे माना तो अभी धर्मसे बाहर है। अपने धर्मसे अर्थात् अपने आत्मस्वभावसे स्नेह करो। जगतमे कहाँ भटक रहे हो? शरण कही नही मिलेगी, हर एकसे धोखा मिलेगा, हर एकसे बहकावा मिलेगा, शरण कही नही मिलेगी। शरण तुझे अपने आपमे बसे हुए उस सहज परमात्मतत्त्वकी शरण लेना है। यही मुक्तिका मार्ग है। दूसरा कोई मुक्तिका मार्ग नही है। जैसे कहते है—"सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्राणि मोक्षमार्गः।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। जहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्रमे विकल्प भी नही उठने, इसका एकरस उपयोग हो जाता यही एक मोक्षका मार्ग है जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्माके सहज चैतन्यस्वरूपकी श्रद्धा पा लेगा, वह ही अपने स्वरूपमे रम जायगा। ऐसी स्वाधीन शाश्वत सत्यकी श्रद्धा बिना मोक्षका मार्ग नही मिलेगा, किसी बहकावा व किसी बाल-बच्चोकी उलझनमे पडकर शाति नही मिलेगी और आगेका रास्ता भी बन्द हो जायगा। बाहरी चीजोमे पडकर इस आत्माको हित कुछ नही है। हित तो यह स्वरूप है, यह तो धर्मकी साक्षात् मूर्ति है।

यह चैतन्यस्वरूप ही आत्मा धर्मकी मूर्ति है, वह भगवान स्वरूप है, वही कल्याण है। मैं इस एकको छोड दूं तो ससारमे भटकते हुए कुछ पता भी नही लगेगा। कितनी योनियाँ है, कितने शरीरके कुल है, कितने जगतमे लोकके स्थान है, किस स्थानमे, कितनी बार, कहाँ जन्म लूँगा ? कितने-कितने शरीरोमे कितने बार जन्म लेते रहेगे—कुछ पता तक भी न रहेगा। अभी मनुष्य है, ज्ञान साफ है, स्वाधीन है, हम दूसरोकी बात समझ लेते है, दूसरोको अपनी बात समझा देते है। पशु-पक्षियोको देखो ऐसा जन्म हो तो क्या पल्ले पडेगा ? इनके अक्षरमय भाषा नही है। दूसरोकी बात वह दूसरोसे क्या कहेगे ? उनमे धर्मकी चर्चा क्या होगी। कीडे, मकौडे बहुतसे जीव है, पर वे क्या कर सकते है ? उन जीवोके मुकाबलेसे देखे तो हमारी अब कितनी उच्च अवस्था है ? हम और आप सम्यक्दर्शनके पात्र है, सम्यक्-ज्ञानके पात्र है और सम्यक्चारित्रके पात्र है। अपनेमे पुरुषार्थ करनेकी योग्यता है, हमे कुछ अपना हित बाहर कही नही निरखना चाहिए। घर-द्वार, धन-वैभव इत्यादिमे ज्यादा दृष्टि नही रखनी चाहिए। यद्यपि इस गृहस्थावस्थामे सबका प्राय यह निर्णय रहता है कि इसके बिना गुजर चल ही नही सकती है। परन्तु जब यह घर द्वार, धन वैभव छूट जावेंगे तो क्या इसके बिना गुजारा चलेगा नही ? चलेगा। धन वैभवके बिना, घर द्वारके बिना आत्माका गुजारा चल जायगा, पर सम्यक्ज्ञान बिना आत्माका गुजारा नही चलेगा। इस अपने सम्यक् ज्ञानको छोडकर यदि परपदार्थोको महत्व देगा तो अशाति, कर्मोपासना तथा कर्म बन्धना ही रहेगी और यदि अपने इस शुद्ध स्वरूपको महत्त्व देगा वही रमेगा, वही पहचानेगा, वही झुकेगा तो उसके बधन कटेंगे, शातिका मार्ग मिलेगा और भविष्यमे इसका जब तक ससार है उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निकट समयमें मुक्ति प्राप्त होगी। इसलिए अपने आपका सम्यक्ज्ञान करो, प्रमादी मत हो। इस अपने स्वरूपको देखकर प्रसन्न रहो। यह मेरा शाश्वत आनन्दमय चैतन्यस्वरूप है, सदा सबसे अलग है, यह सब अहकारोसे दूर है, मैं अपने स्वरूपमे हू। एक अपने आपमे यही स्वरूपका पता लग जाय तो इससे बढकर कुछ जगतमे नही है। इस तरह अपने अद्वैतका अनुभव करो। यही मोक्षका मार्ग है और ऐसा ही अद्वैत सब पदार्थोमे है। उन सबमे भी उनके अद्वैत स्वरूपका बोध करें। इसीका नाम ही सिद्धि है। आत्माके ध्यानमे, चिंतनमे, मननमे, अध्ययनमे, अनुभवमे अधिकसे अधिक पुरुषार्थी बनकर अपने जीवनको सफल बनावे।

आत्माके शुद्ध स्वरूपको आत्माका स्वत्व कहते है अर्थात् जो आत्माका अपने आप अपनी सत्ताके कारण जो कुछ सर्वस्व है वह आत्माका एकत्व है। इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही मगल है, इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही सर्वोत्तम है और इस एकत्वमे दृष्टि जाना यही शरण है। आत्माके केवल स्वरूपकी निगाह होना यही रक्षाका सबसे बडा दृढ किला है। जैसे

बडे मज्बूत किलेके भीतर राजा लोग अपनेको सुरक्षित अनुभव करते हैं, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूपमे ही यह मै हू - ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपनेको सुरक्षित अनुभव करता है। जब इस दृष्टिसे जावेगा तब उसे नाना विकल्प होंगे और उसकी रक्षा करने वाला कोई नही होगा। उसको सुख-शांति और आराम मिलनेका साधन व मार्ग नही मिलेगा। देखो इस एकत्वका शरण गह बिना ही इतना बड़ा जगजाल बिछाया, इससे सैकडो आपदाएँ बिछ गईं। परन्तु जो आत्मा अपने इस स्वरूपके किलेमे प्रवेश करके बैठता है उसकी सारी विपदाएँ खत्म हो जाती हैं। एक भी सकटमे प्राय वह नही रहता है। यदि इस जीवने आज तक ऐसा कार्य नही किया है तो इसीका फल है कि उसका ससारमे जन्ममरण चक्र बना रहा आया। यहाँका परिवार यदि अच्छा लगता है, बच्चोका, धनका यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम खुले दिलमे डटकर मोहको कर लो, खूब मोह कर लो, १०के बीचमे मोह कर लो, अधकचडे क्यो रहते हो ? अच्छा आजमा लो मोह करके, फिर बताओ कि क्या अपने मे लाभकी व्यवस्था हो जायगी ? यदि इसमे सार नजर आता है तो इसमे ही लग जावो। फिर अपने आपमे ही पता पड जायगा कि मुझे इससे हानि मिली है कि लाभ मिला है। इससे कुछ नही मिलेगा, क्लेश ही मिलेंगे, आत्मबल ही घटेगा, नाना शल्य बढेंगे। बाहर दृष्टि एकदम फैल जायगी, फिर आनन्दका उपाय बनना कठिन हो जायगा। अनेक खोटी परिस्थितियाँ आ जायेंगी, यदि बाह्यमे मोह कर लिया तो। बाह्यमे कोई मगल नही है, कोई मुझे सुख देने वाला नही है। मगल वह होता है जो मगल है। मग अर्थात् सुखको जो लावे वह मगल कहलाता है। आनन्दको, सुखको जो लावे उसे मगल कहते है।

आप लोग णमोकार मत्र पढकर फिर चत्तारिदडक पढते है। उसमे यही तो बोला जाता है—"चत्तारि मगल—अरहता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल, केवलि पण्णत्तो धम्मो मगल" अर्थात् चार मगल है—अरहत मगल है, सिद्ध मगल है, साधु मगल है और केवली भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मगल है। मगलका अर्थ है जो मग लावे व म गलावे। म का अर्थ है पाप। जो पापको गलावे वही परिणाम सुख दे सकता है। पापोको बढाने वाला जो परिणाम है वह मोह और अज्ञानसे भरा अर्थात् विषयोमे लगा हुआ रुचिकर तो होता है, परन्तु उसका परिणाम खोटा ही निकलता है। यहाँ किसीका कुछ करने वाला कोई नही है। आत्मा और कर्म इन दोनोंके परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव चल रहे है। जैसे परिणाम हो तैसे ही कर्म इसमे बँधेंगे। जैसा बद्ध कर्मोंका उदय आवेगा वैसे आत्मामे भाव होगे। ज्यो ही आत्माने खोटा भाव किया त्यो ही आत्मामे कर्मके बन्धन हुए और वह बधा हुआ कर्म जब अपना समय पायगा, अपने उदयकालमे आयगा उस समय ही आत्मामे दु.ख और खोटा परिणाम उत्पन्न हो जायगा। न इस आत्माको कोई समझाने वाला है कि देखो खोटा उदय आ

रहा है तो खोटा बन जावो और न कर्मको समझाता है कोई कि आत्मामे खोटा भाव आ रहा है तो तुम बँध जावो। परन्तु ऐसा प्राकृतिक सुयोग है कि जहाँ आत्मामे खोटा भाव आया कि कर्म बँध गए। तात्पर्यकी बात यहाँ यह समझनी चाहिये कि यहाँ करने-हरने वाले कोई नही हैं जिनकी भक्ति करें जिनकी मिन्नति करे तो कुछ अपनी गुंजाइश निकाल लें। यहाँ तो ओटोमेटिक सब हो रहा है तो खोटे भावको रख लो, दुर्गति प्राप्त कर लो, अच्छे भाव कर लो, लो सद्गति पा लो, यह तो जिस समय किया उस ही समयपर निर्भर है। इस कारण सदा अपने परिणामको स्वच्छ व सयत बतानेका यत्न होना चाहिए। परिणामकी निर्मलताके लिये क्या करना है, जैसा यह मै हू तैसा समझ लेना है। यह मै आत्मा सबसे निराला है ना। है, तो सबसे न्यारा, सबसे निराला मान लो, बस यह मौलिक यत्न आवश्यक है। अच्छा देखो यह पीछी चौकीसे न्यारी है कि नही, पुस्तकसे न्यारी है कि नही। है ना न्यारी, फिर न्यारा माननेमे कौनसा हर्ज होता है ? है नही यह शरीर सबसे न्यारा ? जो बैठे है इन सबसे यह शरीर जुदा है कि नही। है जुदा तो जुदा मान लो, इसमे कौनसी कठिनाई पडती है ? अब जरा भीतर की बात परख लो कि यह मै आत्मा जो दुखी होता, सुखी होता, विकल्प करता है, समझनेकी चेष्टाएँ करता है। यह आत्मा है ना सबसे न्यारा। यदि न समझमे आए यह बात तो फिर धर्मके लिये और काम छोड दो, पहिले यह निर्णय कर लो—यह बताओ कि मैं सबसे न्यारा हू कि नही ? भैया ! इस निर्णय बिना तो धर्मका पालन ही नही होगा। अपने आपको ठीक समझ बना लो। यह काम सबसे बडा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड करके सच्चा विश्राम लेकर देखो कि तुरन्त समझमे आ जाता है। यदि कोई ज्ञान ज्ञानका निषेध भी करे तो भी ज्ञान ही तो यह है, जो निषेध करेगा। इस ज्ञानसे इस ज्ञानको इस ज्ञानक अदर ले जाएँ और देखें कि इस ज्ञानका स्वरूप है क्या ? जिस ज्ञानके द्वारा हम सारी दुनियाको जाना करते है वह ज्ञान खुद कैसा है ? मैं ज्ञानके स्वरूपको देखनेमे लग जाऊँ तो सब ओरके विकल्प हट जावेगे, क्योकि हम ज्ञानस्वरूप ही ज्ञानके स्वरूपको देखनेमे चल उठे और कुछ विशेष अतरमे प्रवेश करके देखें तो शरीरकी सूरत भी भूल जायगी। शरीर है या नही है। यह भी भान न रहेगा वहाँ केवल ज्ञानज्योति, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानतत्त्व ही अनुभवमे आयगा। यह ज्ञानघन पदार्थ देखो जुदा है सबसे या नही। इसका ठीक निर्णय कर लें। समझमे आवे कि जुदा ह तो बस ऐसा मान लो। यही धर्मका पालन है और समझमे न आवे कि जुदा है तो अच्छी तरहसे पहिले इसीके निर्णयमें लग जावो। अगर जुदा नही है तो ऐसा ही मानते रहो। जैसा है, तैसा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है ऐसा ज्ञान होनपर भी गृहस्थीमे जुदी-जुदी व्यवस्थाओमे भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है। यह उसका आत्माकी प्रेरणा अन्तरसे रहा करता है। यह तो गृहस्थवस्था

के लिये है। सबका जुदा-जुदा परिवार है और यह उठकर उसी परिवारमे जायगा, बात भी करेगा, उसी दूकानमे जायगा। यह सब व्यवस्था है। जैसा सबका काम ठीक चले तो सब लोगोने मिलकर व्यवस्था बना ली कि ये इतने लोगोकी व्यवस्था कर ले, ये इतने लोगोकी। यह बात परिवारके रूपमे ही हुई। सो सब जुदा जुदा कर रहे है, सब काममे व्यस्त (बिजी) हो रहे हैं, केवल लोकव्यवहारमे उच्छृंखलता न आ जावे, इसके लिए व्यवस्था बना रखी, इस व्यवस्थामे ज्ञानी भी पड रहे है। लेकिन प्रतीतिमे यह रहता है कि मैं तो अपनेमे पा रहा हू अपनेको सबसे निराला, चैतन्यमात्र एक पदार्थ, जिसका कुछ नाम नही है, जिसका कुछ आकार प्रकार नही है। यह मैं एक चैतन्य वस्तु हू, इसके सिवाय अन्य किसी पदार्थमे इसका रच भी सम्बध नही है। ऐसे देखना बस यही मगल है। पापके कामसे पाप नही कटे और पापके काममे सुख नही मिलेगा। करोडोका धन मिल जाय तो उससे सुख नहीं मिलेगा। कितना ही वैभव बसा तो शाति नही मिलेगी। अगर बाह्य पदार्थोंमें शाति होती तो तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुषोको लोकवैभवमे शाति क्यो न मिल जाती ? उन्हे ज्ञान जगा तब वे लोक व्यामोह छोडकर अपने एकत्वस्वरूपमे उपयुक्त हो गये।

देखो मगल पाठ पढते है तब अरहत सिद्ध साधुको मगल कहकर फिर अपने एकत्व को मगल कहकर विश्राम पाते है। "अरहत मगल, सिद्ध मगल, साहु मगल, केवलि पण्णत्तो धम्मो मगल" चार मगल हैं ना। अरहत भगवान मगल है। चार घातिया कर्मोंसे रहित, मोहसे अत्यन्त परे परमपवित्र ज्योति आत्मा अरहत भगवान हैं वह जिसके स्वरूपके स्मरण से भव-भवके पाप कट जाते हैं वह अरहत मगल है। जिसके स्वरूपके स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेसे और वर्तमानमे जो कुमति हो रही है उसकी मदद नजर रखनेसे जो आनन्दसे मिला हुआ पछतावा होता है उससे जो आँसू बहता है उससे मानो भक्तके कितने ही पापकर्म धुल जाते है। वह मगल है। अहुन शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो बनाओ कि आसमानमे यहाँसे ५ हजार धनुष ऊपर, माने २० हजार हाथ ऊपर एक प्रभु विराजमान है। जिनकी पूर्ण महिमाके कारण स्वर्गके देवता लोगोने आकर एक बडा मडप बनाया है जिसके आगे जगत्मे कोई ज्ञानीका वैभव नही हो सकता। १०-१२ कोसमे २४ कोसमे एक मडप बना हुआ है जिसमे कई गोलोमे कितने ही सुन्दर कोट, खातिका, वाटिका, चैत्यालय आदि रचे है, बीचमे प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाओमे घिरी १२ सभायें हैं। इसे समवशरण कहते हैं। समवशरणका अर्थ है जहाँ जीवोंको अच्छा पूरा शरण मिले। इसके नीचे कितने ही सोपान लगे हुए है। बहुतसे पर्वत जहाँ नीचे आ गए हैं। उस मण्डपकी ओर जिसमे कि कहते हैं समवशरण, अच्छी तरहसे पूरा जहाँ शरण मिलता है। ऐसेमे समवशरणकी ओर देवता तथा मनुष्य लोग मनमे पुलकित होकर धर्मसाधनामे उनके उपदेशोको सुनते जा रहे हैं। देखो ना,

आनन्दमे नाना प्रकारके गुणानुवाद करते हुए, नृत्य कलाके साथ चले आ रहे है, हर्षित हो रहे है ये देवाङ्गना व देवता लोग। ये लोग प्रभुके गुणानुवादोके पीछे अपने परिवारको भूल गए है। देखो भैया यहाँ ही जब आप किसी त्यागीका आदर करते है तो पहले अपने त्यागी को ही अपना मानते है, पहिले त्यागीको खिलाते है, चाहे बच्चे भूखे पडे रहे। फिर तो यहाँ तीन लोकके नाथकी बात कही जा रही है। वे अपने प्रभुके पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे है। उन्होने अपने परिवारको भूलकर उस प्रभुको कितना अधिक माना होगा ? उनका विश्वास है कि मेरा शरण मेरा प्रभु है, मेरे समस्त सकटोको टालने वाला मेरा प्रभु है। कितने ही प्रकारके गीत वादित्रके दिव्य शब्द होते चले आ रहे है। धन्य है उन परम आत्मावोको जिनके विकासके कारण दुनियाके लोग एक चित्त होकर, आकर्षित होकर जिनका चरणसेवन प्राप्त कर रहे है। यही अरहत भगवान मगल है। जो इस शरीरके झझटसे सदा के लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्दस्वरूपमे विराज रहे है।

ऐसा सिद्धप्रभु वही मेरा सब कुछ है। ममताके साधनभूत परिवारके बच्चे भी कुछ कहते आवें तो भी भक्तिके समय तो विशेषतया ही ज्ञानीके भाव रहता है कि मेरेको किसी कार्यसे प्रयोजन नही है। जगतके बडे-बडे बाह्य पदार्थोसे क्या सबसे उत्कृष्ट तो यह प्रभु हमारे है, जो समस्त राग, द्वेष, मोह भावोसे रहित और इस शरीरसे रहित, ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है वह प्रभु इसके लिए मगल है। वह साधु जिसको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमे ही जिनकी रुचि है, न वस्त्रोकी रुचि है, न सासारिक कार्योकी रुचि है, इसी कारणसे जिनके शरीरके एक धागा भी नही है, जिनके वैराग्यमुद्राके दर्शन करने मात्रसे उनके आत्मरसका भी अनुमान हो जाता है तथा जिनको भोजनसे भी रुचि नही है, शरीरका साधन समझकर यदि शरीरके लिये आवश्यक समझा विवेकने तो यह विवेक दिनमे एक बार विधि मिली तो आहार करा देता है, जो अपने स्वरूपके अनुभवके यत्नमे रहते, अन्य कुछ झझट नही रखते है, ऐसे वे ज्ञानानन्दघन साधु परमेष्ठी है। ऐसे साधुवोके दर्शनसे भवके पाप कट जाते है। अरहत सिद्ध, इस आत्माका मगल बनाकर अपने केवल स्वरूपमे परिणमता रहे। केवल भगवान स्वरूपकी ओर दृष्टि होना यह धर्म है, सो धर्म ही मगल है। इस आत्माका सहज शुद्ध जो स्वरूप है उसको ही लक्ष्यमे लेना, यह धर्म बतलाता है। अन्तमे देखो यह धर्म ही मगल कहा है। देखो जिसकी दृष्टि, जिसका विचार, जिसका उपयोग अपने काममे अधिक रहता है उसको बडे-बडे पुरुष भी आदरसे देखते है। इस ही धर्म मगलके प्रसादसे साधु पूज्य है, इस ही धर्ममगलके प्रसादसे साधु अरहत सिद्ध भगवान बने है। यह निजधर्म, यह आत्मधर्म हमारा मगल है।

इसका हम केवल भावका विचार करेंगे—हमको मिलता है या इसका काम बन सकता है—वह भी मालूम होता है। दूसरी बारमें शुद्धिके उपकारमें आनन्दमें अपने आपके धर्मसे काम जानना बनता, फिर आनन्दमें उनके समान किसीका उपयोग दे, अपने द्वारा कुछ नही हो सकता है। केवल भगवानकी ओर हुए धर्म मगल है। इसी प्रकार ये चार उत्तम हैं और ये चार शरण है।

देखो इन चारोंमे पहिले हितकारी अरहतका ध्यान किया है जिनके कारण सिद्धका भी ज्ञान हुआ, बादमे सुगम प्राप्त उपकारी साधुका भी ध्यान किया है। अतमें पूर्ण सार शरण कहा है। केवली भगवानके द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवल भगवानने तो कहा है। क्या कहा है? इतनी बात जो हम भूल गए थे, इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूपसत्तामात्र चैतन्यमय अपने स्वरूपको अपनी दृष्टिमे अनुभवो तो यह भी एक ऐसा दृढ किला है कि कैसा भी उपद्रव आ जाय कि जिससे तीन लोकके जीव अपना-अपना रास्ता छोडकर कही भी हटकर घूमने लगें, बिछुडने लगें, डरने लगें, किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप रक्षाके किलेमे आराम कर रहा है। जैसे पानीके जीव पानीसे ऊपर मुह उठाकर चलते रहते है और जरासा भी उपद्रव उसके सामने आवे तो वह पानीमे डूब जाता है। सारे उपद्रव लो शान्त हो गये। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी कभी अपने ज्ञानके बाहर अपने ज्ञानसे ऊपर बाहरी पदार्थोंकी ओर जब मुह करता है वहाँ आकुलता होती ही है। सो तब झट ही बाहरी पदार्थसे मुख मोडकर अपने उपयोगको अपने ही ज्ञानमे डुबो दे तो सारे उपद्रव खत्म हो जाते हैं, पर ऐसा कर सकने वाले बिरले ही ज्ञानी होते है। जगतके ये बाहरी पदार्थ जहाँ अज्ञानी आनन्द करता है उसका ज्ञानीको पता भी नही। इसी कारण ज्ञानियोमे रहने वाले, ज्ञानियोके सगमे ही बसने वाले शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते है। बस जिन्होने अपने आपको अन्तरके मर्मका पता लगाया वे पुरुष उपास्य है, हम उनके गुणानुवादमे अधिक अनुरागी रहे। हमे जीभ मिली है तो इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर लें। जिह्वाके द्वारा, गुणी पुरुषोके गुणानुवादोसे अपनेको गुणलाभ मिलता है। हमे विनाशीक जिह्वा मिली है, तो हम कल्याणके लिए इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर ले। मन मिला है तो इस मनसे गुणी पुरुषोके गुणोका स्मरण कर लें। यह तन मिला है तो गुणी पुरुषोका वैयावृत्य कर लें।

सर्वव्यवहारधर्मका प्रयोजन आत्मधर्मका पालन है। आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दर्शन करना ही धर्मका पालन है। वस्तुस्वभावके जाननेका सुन्दर उपाय स्याद्वादकी विधि है कि भाई अपने आपको पहिचानो। सब वस्तुओंको यथार्थस्वरूपमे पहिचानो। देखो जितनी वस्तुयें हुआ करती है अपने-अपने उत्पादव्ययध्रौव्यमे ही रहती हैं। वे सब केवल अपने आपकी सत्ता लिए हुए हैं, वे सब अनादिसे है और अनन्त काल तक है और वे अपने आप ही

अपने स्वरूपमे अपने उत्पादव्ययसे अपनेको परिणमाते रहते है, अपने ही परिणामसे अपने लिये उत्पाद करते है और अपनेमे अपने लिए अपने आप अपनी पूर्वपर्यायका व्यय करते है। प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपने लिए अपने आप विकसित व विलीन होते है, फिर भी वे प्रत्येक पदार्थ अपने आप अपने लिए अपनेमे अपना सत्त्व बनाए रहते है, यही पदार्थका स्व-रूप है।

हे आत्मन्! हम सब भी एक पदार्थ है, अपने आप बनते है। इन पदार्थोका अन्य किसी पदार्थोसे रच भी सम्बध नही है। सम्बध नही है तब श्रद्धामे पूरे तौरसे सबसे न्यारा अपनेको समझो। सत्य श्रद्धा नही पकडी तो ससारमे रुलना पडेगा। हे आत्मन्! तू पवित्र है, अपनी प्रभुताको देख। इस ही प्रभुके प्रभुत्वकी भक्तिसे तू पाप काटेगा तो सुख पायेगा, यही मगल है, यही उत्तम है, यही शरण है, यही रक्षक है, यही महान् कला है। यह है अपने आप और स्वय ही ज्ञानानन्दमय अपने आपको ससारके सर्वक्लेशोसे मुक्त करनेका उपाय।

जीवका शरीरसे घनिष्ठ सम्बध है और शरीरमे जब-जब रोग होते है तब तब इस जीवको दुःखी भी होना पडता है। पर इस रोगका मूल कारण क्या है और इस रोगके मिटनेका मूल उपाय क्या है? इस बातपे मोही जीवकी दृष्टि नही जाती। यह शरीर मिला है तो जैसे-जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ, शरीर नामकर्म सघात आदि नामकर्मका उदय हुआ, उस उसके अनुसार जीवको शरीर मिला करता है और वह नामकर्म कैसे मिलता है? जैसे-जैसे जीवके परिणाम होते है वैसे-वैसे कर्मोके बधन होते है, शरीरमे रोग होते है, व्याधियाँ होती है, मृत्यु होती है, शरीर सडना-गलता है, खोटा शरीर मिलता है। इन सबका शरण आत्माका परिणाम है। इन सब विपदावोका मूल कारण क्या है? इसके अतरमे कारण खोजो तो खोटा आत्मपरिणाम उनका कारण मिलेगा। जो-जो कुछ इस आत्मापर गुजरता है, धनी होना, निर्धन होना, यश, अपयश, रोग, निरोगता, जो-जो गुजरते है इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। जैसा परिणाम किया वैसा कर्मबन्धन हुआ। जैसा कर्मबन्धन वैसी सामने स्थिति आ गई। इस शरीरमे विपदाएँ, विपत्तियाँ कैसे मिटें, इसका कारण सोचेंगे वह भी आत्माका परिणाम है अर्थात् जो उपयोग निज आत्माके सहज शुद्ध चैतन्यतत्त्वको पहचानता है, वहाँ ही रमता है, उसको ही आत्मा अगीकार करता है। वह परिणाम तो सर्वक्लेशो, व्याधियोके नाश करनेके लिये सब परिणाम हैं। सब क्लेशोको नष्ट करनेका शुद्ध परिणाम ही उपाय है। जो अपने आपके यथार्थस्वरूपको छोडकर अन्य किसी जगहमे लगते है, विपत्तिया आती है, सकल्प होगे, विकल्प होगे, क्लेश होगे।

जगत्के कोई पदार्थ मेरे नही है, सब न्यारे-न्यारे है। एकका दूसरेसे त्रिकालमे कुछ सम्बध नही होता। चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितना पुण्यवान हो, उन्हे अपना स्वरूप ही

उनका मिलेगा, इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी नही है। जो अपना नही है उसको अपना मान लेना उसको अध्यात्मलोकमे चोर कहते है। कैसे चोर कहते है ? देखो यहा भी जो दूसरोकी चीजोको उठा लें, अपने घरमे रख लें और मनमे यह धारणा बना लें कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जो बना लिया तो वही चोर है। इसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी-अपनी सत्ताके जगत्के है। एक दूसरे सब परस्पर अत्यन्त भिन्न है। जो भिन्न चीजें है, जिनसे त्रिकालमे हमारा कोई सम्बध नही है, जो अपनेमे ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमे ही अपनेको विगाडता है और अपने स्वरूपमे बना रहता है त्रिकालमे उनका अपना यही काम है। किसीका किसीसे रच सम्बन्ध नही। फिर भी उनमे यह धारणा करना कि यह मेरा हैं। यही तो परमार्थको चोरी है। यह भगवान आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है। यह भगवानस्वरूप आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर वाहरी पदार्थोंमे आपा अङ्गीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी होती है। हमारा है नही, पर मानते है कि हमारा है। जैसे लोकमे चोर क्यो कहते है ? हमारी चीज नही है, पर मानते है कि हमारी चीज है। जो चोरी करते हैं वह गिरफ्तार किए जाते है। उनको सजा होती है। यह हमारी बात है। हम परमार्थकी चोरी करते है, कर्म हमे गिरफ्तार कर लेते हैं। यह हमारी सजा उस सजासे अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारण करना, जन्म मरण करना, जन्ममरणके चक्रम आना आदि। यह भी जो विपदाएँ है—घर बार, स्त्री बच्चे वगैरा इस आत्माको वह सत्य नजर आ रहे है। उनने मोह उठाए हुए है, ज्ञानको दवा रहे है। सच्चाईको नही सोच सकते हैं, ऐसी विपदाएँ देखो परमे आपा माननेसे ही पैदा कर लेते हैं। जैसे यह मेरा है, वह मेरा आदि प्रकारसे सोचा तो तभी उन्हे आकुलता हो जाती है क्यो ऐसा होता वे अपनी दृष्टि बाहर लगाते है, जो जैसा है उसे वैसा नही मानते। जो जैसा है वैसा माननाकी आकुलताओको दूर करनेमे समर्थ है। अपने शुद्ध स्वरूपका परिज्ञान कर लेना, यह सब विपदाओ को नष्ट करनेमे समर्थ नही है। दूसरा और कोई इन विपदाओको नष्ट करनेमे समर्थ नही है। कही बाहर दृष्टि न जावे। धर्मके प्रसगमे भी वेशभूषामे, मजहबोमे, क्रियापद्धतियोंमें उन सबमे दृष्टि न डालो। केवल अपने अतरमे दृष्टि डालो। अपनेको केवल ज्योतिमात्र समझो। अपने आत्माके प्रगट रूपमे दर्शन करो। इसीमे अपने प्रभुका दर्शन प्राप्त होगा। दूसरा उपाय नहीं है कि विपदाएँ दूर हो सके। एक यही अनुभवका उपाय है जो सब आपदापो विपदाओको समाप्त कर देता है। जैसे बच्चे लोग एक कथानक कहा करते है कि किसी जगलमे स्यार, स्यारनी थे। स्यारनीको गर्भ था, प्रसवका समय था। स्यारने स्यारनीसे शेरके बिलमे प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गये। स्यारनीको विधि समझा दी। स्यार ऊपर चट्टान पर बैठ गया। स्यारनीने अपने बच्चोको समझा दिया कि जब कोई आवे तो रोने लगना।

एक शेर आया । बच्चे रोने लगे । स्यारने स्यारनीसे पूछा—बच्चे क्यो रहते है ? स्यारनीने कहा कि बच्चे भूखे है शेरको खाना चाहते है । शेर डरकर वहांसे भाग गया । इस तरहसे १०-२० शेर आए तो वह सब भी डरकर भाग गए । सब शेरोने मिलकर एक मीटिंग की । सबने सोचा कि ऊपर चट्टानमे जो बैठा है उसकी सब करतून है । सब शेरोने हिम्मत की और उस स्यारके पास पहुचे । अब सब यह सोचते है कि इसके पास कैसे पहुचा जाय । सोचा कि एकके ऊपर एक खडे हो जावें । उन सबमे से एक लगडा शेर था । सलाह हुई कि यह ऊपर चढ नही सकेगा सो इसको नीचे ही खडा करो । लगडा शेर नीचे खडा होता है और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा खडा होता चला जाता है । इतनेमे ही स्यारनीके बच्चे रोने लगते है । स्यार, स्यारनीसे पूछता है कि बच्चे क्यो रो रहे है ? स्यारनीने कहा कि बच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते है । लंगडा शेर इतना सुनकर घवडा गया । वह एकदमसे भागा । दूसरे शेर जो ऊपर चढ पाए थे वे शेर भदभद गिरने लगे और सब भाग गए । इसी प्रकार हम सबपर अनेक विपत्तियाँ छाई है । जितने जगतके क्लेश है वे परमे आपा बाँधे है, इस बुनियादपर अडे है ।

ये सारे क्लेश, विपदाएँ यो ही खत्म हो जाएँ । यदि परमे ममत्व बुद्धि है वह खिसक जाय । अच्छा परीक्षा ही करके देख लो जैसे जो कहते हो कि यह मेरा घर है । बतावो—आपके पास क्या निर्णय है कि आपका ही घर है । आपका शरीर भी नही है । विषय कषाय विकल्पोका परिणाम तक भी आपका नही है । यह जो कुछ होता है यह भी आपका नही है । ये विषय कषायोके परिणाम आपके स्वभावमे नही हैं । अन्य कषायोके करने वाली भी यह आत्मा नही है । केवल मैं अपने स्वरूपको भूल गया हू, इसलिए सारे झझट लग गए है । अब इस आत्माको दृष्टि करो, शुद्ध स्वरूपकी पहचान करो । समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे नष्ट हो जाते है । सब क्लेशोके नष्ट करने की सामर्थ्य इस आत्मदृष्टिमे ही है । देखो अन्तरङ्ग तपस्या करके जो निर्मल परिणाम होते हैं जिनसे घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तो अरहत अवस्था आती है । अरहत अवस्था आते ही उनका शरीर औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है । घातिया कर्मके क्षयसे पहिले कोई साधु रोगी हो, कोई उपद्रुत गया है, वृद्ध हो, कैसा ही हो, अरहत होनेपर शरीर निरोग, पूर्ण देदीप्यमान हो जाता है । इस शरीरमे कितने ही परिणमन आते है, परन्तु वीतराग सर्वज्ञ अवस्थामे जब आत्मा हो जाता है तो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमौदारिक हो जाता है । अब भी देखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमे लीन हो जाते है, उनके गुणोमे अनुराग होता है, शुद्ध, निर्मल परिणाम होता है तब देखो रोग भी दूर हो जाते है । इसी कारण जो रोगी बुद्धिमान होता है, पड-पडे निरतर णमोकार मंत्रका जाप किया करता है वह रोगमुक्त हो

जाता है। इन मन्त्रोमे इतनी विशाल महिमा है कि ससारके क्लेश दूर हो जाना तो सरल बात है भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाते हैं, क्लेश भी और झझट भी समाप्त हो जाते है। ऐसी आत्माएँ शुद्ध होती है।

इनमे दो प्रकारके पवित्र आत्मा है, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे है और दूसरे वे है जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमे सफल हो रहे है। जो शुद्ध हैं वे है अरहतसिद्ध, जो शुद्ध होनेके प्रयत्न मे सफलता पा रहे है वे है आचार्य, उपाध्याय और साधु। साधु कहते किन्हे है जिनको अपने यथार्थ स्वरूपका विश्वास हो गया है, अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूपको शुद्ध देखते हैं। ये आत्मा किन्ही रागोसे सम्बधित नही है, ज्ञानस्वरूप है। ऐसा जो आतमचिन्तनमे दृढ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बडा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उन्हे दूसरी चीज जगतमे नही रुचती। उनका परिवार छूट जाता है, आसार परिग्रह छूट जाते है। यह शरीर नही छूट पाता है। यदि शरीर भी छोडा जा सकता होता तो वह शरीरको छोडकर बाहर ही रहकर आत्माकी उपासना करेगा। वे तो आहार भी नही करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धर्मसाधनके लिये है। शरीरकी स्थितिके लिये आहार आवश्यक है। सो दिनमे एक बार ही वे आहारकी एषणा करते हैं। एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामे व्यतीत करे, निरतर आत्म-साधनामे लगा रहे, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमे जो ज्ञानी साधु है औरोको पढाते है जिनको आचार्य, उपाध्याय घोषित कर देते है वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते है, जो बडे ज्ञायक हैं, साधुवोमे प्रमुख है, जिनकी आराधनामे साधु रहते है वे आचार्य कहलाते है। देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है, आत्मा ही मोक्षका मार्ग है। इस निज आत्म-तत्त्वको, परमेष्ठित्वको निरखकर अपनी दृढ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मकल्याण कर लेना महान् विवेक व पुरुषार्थ है। वह आत्मा जिनके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रद्धा पूर्ण विकास को प्राप्त हो गए है, जिसके ज्ञानमे सर्व विश्वके सकल ज्ञेय तत्त्व ज्ञानमे सर्व विश्वके सकल ज्ञेय तत्त्व प्रतिभात होते है (ज्ञात हो रहे है) वे हैं सिद्धात्मा। ये प्रभु सर्वज्ञ होकर भी अपने आनन्दरसमयी हो रहे हैं, ऐसा परमानन्दका जो पिंड है उसीको परमात्मा कहते है। भग-वानके दर्शन करना है तो अपने स्वरूपमे दृष्टि दो। बाहरी चीजमे न अपने का पता चलेगा और न भगवानका पता चलेगा। ये इन्द्रियाँ जिनको आत्माका घात करने वाला कहा गया है जब यह जीव इन इद्रियोके कहनेमे लगा रहता है तो यह बरबाद हो जाता है। मुझे केवल ज्ञानदृष्टिसे कार्य लेना है। मै ज्ञानमात्र हू, ज्ञानका ही कार्य करता हू और मै इसके अति-रिक्त कुछ नही करता। मैं अपने आपकी दृष्टिमे रहू, ऐसे उपयोगमे जो आनन्द होगा। उस आनन्दमे वह शक्ति है जिसके कारण भव-भवके सचित कर्म भी ध्वस्त हो जाते है। बाकी

तपस्याएँ जो की जाती है वह इद्रियोको कन्ट्रोलमे लानेके लिए की जाती है। उन बाहरी चीजोसे कर्म नही कटते, पर आत्मप्राप्तिमें जो सतोष होता है उससे कर्म कट जाते है।

हम इस ससारमें अनन्तकालसे भटकते चले आए। उन अनन्त पर्यायोमे कितनी इच्छायें की होगी धर्मके प्रसङ्गमे, किन्तु उन चेष्टाओंसे कुछ नही हुआ। जब धर्मका संयोग होता है तब ऐसेमे भी यदि हमारी दृष्टि बाहर रमी, बाहर ही हम उलझे रहे, हम केवल अपने आपको न पहचान सके तो यह सब बाहरी बातें है, मिट जावेंगी, हम कोरेके कोरे रह जावेगे।

एक सेठ था। उसकी राजासे बडी मित्रता थी। कुछ दिन बाद वह गरीब हो गया, उसके पास कुछ नही रहा। एक दिन वह राजासे बोला—राजन् कुछ निधिका सयोग हो तो पुनः व्यापार करूँ। कहा २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हू, रत्नोके खजानेमे से जाकर जितना तुमसे हो सके रत्न ले आवो। वह सेठ रत्नोके खजानेमे चला गया। ज्यो ही वह खजानेके अन्दर पहुचा, एक बडा महल था, हॉल था। वहाँ देखता है कि यहाँ बहुत सुन्दर-सुन्दर खिलौने भी है, बडे-बडे कलायुक्त खिलौने देखना शुरू किये। खिलौनोमे ही उसका मन रम गया। इतनेमे ही चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह फिर राजाके पास आया, बोला—महाराज मै तो खिलौनोमे ही रह गया। मैं कुछ नही कर सका। राजाने कहा—कल २ बजेसे चार बजे तककी इजाजत मै तुम्हे स्वर्णके खजानेमे जानेकी देता हू। वह सेठ उस स्वर्णके खजानेके अन्दर गया। वहाँपर भारी मैदान था। वहाँ उसने सुन्दर सुन्दर घोडे देखे। वह घोडीका बडा शौकीन था। यह घोडा देखा, वह घोडा देखा। एक घोडेपर बैठ गया। चाल देखने लगा, इतनेमे चार बज गए। चपरासीने निकाल दिया। वह सेठ राजा के पास गया, बोला—महाराज यह भी समय मेरा यो ही गया। मैं घोडोमे ही पडा रहा। राजाने कहा कि कल २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हू। एक चाँदीके खजानेमे जाओ। जितनी चाँदी ला सको, ले आवो। वह सेठ चाँदीके खजानेमे गया। वहाँपर उसने सुन्दर-सुन्दर चित्र देखे। नाना रूपोके भिन्न-भिन्न प्रकारके चित्र देखे। उन बाह्य चित्रोको देखनेमे ही उसका मन रम गया। इस तरहमे ४ बज गए। चपरासीने निकाल दिया। राजाके पास गया, बोला—राजन् आजका भी दिन व्यर्थ ही गया। राजा बोले कि ३ दिन हो गए, तुम नही चेते, अच्छा तुम्हे एक दिनका समय और दिया जाता है। एक ताँबेके खजानेमे कल जाना। जितना ताँबा ला सको, ले आना। चौथे दिन जब सेठ खजानेमे गया तो वहाँपर एक बहुत ही अच्छा स्प्रिगदार पलग देखा। पलगकी परीक्षाके लिये पलगपर वह लेट गया। नीद आ गई। इस तरहसे चार बज गए। तब चपरासीने निकाल दिया। इसी तरह भाई इस मनुष्यपर्यायके चारपन होते है। बच्चा हुआ, फिर बालक हुआ, फिर युवा हुआ, फिर वृद्धावस्था हुई। कुमारावस्थामे भी धर्मपालन करना आवश्यक है। आठ वर्षका बालक भी अरहत

हो सकता है। बालिग जैनसिद्धान्तमे ८ वर्षका माना गया है। आठ वर्षकी आयुमे तो सम्यग्ज्ञान, सम्यक्त्व व सयम करता है, परमात्मा हो सकता है। कुमार अवस्थामे भी धर्मभावना नही किया, खेलोमे ही समय बीत गया। युवावस्थाका समय स्त्रीप्रेममे व्यतीत हो गया, वृद्धावस्थामें पड़े-पड़े अधमरेसे हो गये। बतावो किस पनको इमने सार्थक किया ? देखो छहढाला एक बहुत सुन्दर पुस्तक है। वह तो प्रत्येक गृहस्थको कण्ठस्थ भी होनी चाहिये। उसमे पहिली ढालमे चारो गतियोके दुःख बताते हुए मनुष्यगतिका वर्णन किया है कि "बालपनमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणीरत रह्यो। अर्धमृतकसम बूढापनो कैसे रूप लखे आपनो।"

बचपनमे तो ज्ञान नही किया, जवानीमे स्त्रीरत रहा, बुढापा अर्धमृतकसम है, बतावो अपना रूप कैसे लख सकता है ? भाई कुछ लोग ऐसा सोच सकते है कि बुढापा तो आता ही है। सब कुछ कर लें, बुढापा तो आयगा ही। और बुढापेमे सब खराबी होगी तो किसलिये धर्म पुरुषार्थ करें ? इसका समाधान यह है कि जिस जीवने बचपनमे ज्ञान नही किया व उसी जीवने सयम न कर विषयरति की, ज्ञान नही किया तो युवावस्थाके बादमे यह जीव बूढा हो जाता है, अधमरा हो जाता है तब वह कुछ नही कर पाता है। जहाँ धर्मकी ओर दृष्टि रहे, ऐसा पुरुष बूढा है तो क्या हानि है ? आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि तो ज्ञानी ही डाल सकता है। बडी अवस्थामे तो उन ज्ञानियोका ज्ञान ही मज जाता है, उनको हानि नही होती है। ज्ञानी तो वह है जिसकी आत्माके स्वरूपकी ओर दृष्टि रहे वही ज्ञान वास्तविक है। बडे-बडे रेडियो का आविष्कार, वैज्ञानिक कलाएँ आ जावे तो यह वास्तविक ज्ञान नही है। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हू, यदि ऐसा अनुभव नही है तो जगतमे रच भी शाति नही हो सकती है। यदि मैं बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि कर लूं, उनको ही अपना मान लू तो क्या बाहरी पदार्थोंमे कुछ अधिकार पाना अपने बसकी बात है ? अरे इन बाहरी पदार्थोंका प्रवेश भी इस आत्मामे नही है। पर जिन्होंने विकल्प बनाया है उन विकल्पोसे यो ही भ्रमसे परको अपना मान लिया है, इसका फल यह होता है कि वे कर्मबधनोमे फस जाते हैं। ऐसा एक निर्णय करो कि मैं आत्मा आनन्दघन हू, मेरेमे ही मेरा काम पूरा पडेगा। यहाँके चकाचौंध चार दिनके हैं, मिट जावेगे। यहाँ कुछ नही रहेगा।

मैं एक सत् सारभूत वस्तु हू, मै रहूंगा। अनादिसे हू, अनतकाल तक रहूगा, किसी न किसी रूपमे रहूगा। अब हमे क्या करना चाहिए कि हमे क्लेश न हो, मैं अमुक जातिका हू, कर्मके उदय है, मैं अमुक कुल, अमुक मजहबका हू, अमुक धन वाला हू, इतना समझदार तथा धर्मात्मा हू—ये सब विकल्प ही विपदायें हैं।' ये बाधाएँ वह अपने ज्ञानमे डाल रहे हैं। इन सब बातोंसे दूर रहना चाहिए। अरे तू तो निर्विकल्प है, तेरेमें विषयकषाय ही नही है, तू तो ज्ञानसे रचा है इसके अतिरिक्त और कुछ नही है। यही दृष्टि धर्मका पालन है, यही कल्याणका

उपाय है। यह अगर कर लिया तो सब कर लिया और अगर नही कर पाया तो कुछ नही कर पाया। यदि ऐसा न कर पाया तो उद्धार नही होगा। दिखाकर नही, बनाकर नही, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। दिखावट, बनावट, सजावटसे आत्माका कल्याण नही होगा। तू अपने अतरको अपने उपयोगमे लगावे। तू बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मस्वरूपको देखनेकी कोशिश नही करता है। बननेसे धर्मकी बात कैसे होती है? दिखावेसे धर्म हमारा खतम होता है, सजानेसे धर्म हमारा नही रहता है। सो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन कर लो, इस ही मे रमनेमें तुम्हारा कल्याण हो सकता है अन्यथा कल्याण कोशो दूर है। जो अपनेमे है उसे देखो और अगर न देखो तो अहकारोसे घुल-मिल जावोगे, कही कीडे मकोडे हो गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यो धुल गई? अहंकारोका परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गई। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य था। दोनो एक राजाके बगीचेमे पहुच गए। वहाँ दो पलग पडे हुए थे, एकपर सन्यासी जाकर बैठ गया और दूसरेपर शिष्य जाकर बैठ गया। सन्यासीने शिष्यसे कहा कि तुम बनना नही। थोडी देर बाद राजा घूमने आया। उन्हे देखकर राजाने सिपाहीसे पूछा कि बंगलेमे ये कौन बैठे है? सिपाहीने कहा—महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे है, पता नही है कि कौन है? सिपाही शिष्यके पास जाकर कहता है कि तुम कौन हो? शिष्यने कहा कि देखते नही हो, हम साधु है। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकडकर बाहर निकाल दिया। सिपाही संन्यासीके पास जाकर पूछता है कि तुम कौन हो? साधु कुछ नही बोलता है। सिपाही राजाके पास गया और बोला कि राजन् एक मनुष्य है, मौन है, वह कुछ बोलता ही नही है। और दूसरे से पूछा कि तुम हो? उसने जवाब दिया कि देखते नही हो कि मैं एक साधु हू। सो मैंने उसे कान पकडकर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है कुछ बोलता नही उसे छेडा तो नही था। अरे वह कोई सन्यासी होगा। राजाके जानेपर शिष्य गुरुसे कहता कि मै पीटा गया। गुरुने कहा कि तुम बने तो नही थे। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मैं गृहस्थी हू, साधु हू। इस बाह्य वेश-भूषाकी दृष्टि छोडकर अपने परमार्थस्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा और बनता है और कुछ। अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मै सर्वसाधारण एक चैतन्यमात्र वस्तु हू। जो अपने आप चैतन्यमात्र ही अनुभव करे वह न रुलेगा, निकट समयमे ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमे न देखना है कि मैं दयालु हू अथवा न देखना है कि तपस्वी हू। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका सिंचन करना है। यह सिचन ज्ञानसे होता है। ज्ञानकी उपासना की तो भी यह ज्ञान होता है कि मै ज्ञानघन हू। यह दिखानेमें, बनावटमे, सजावटमे, सोचनेमे न मिलेगा।

उससे कीड़े बनते रहना होगा। अपने आप ही रमनेका प्रयास करो। इसीमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। इस रत्नत्रयके एकत्वमे आत्माके एकत्वका विकास है। यह एकत्वदर्शन चिंतामणिदर्शन है। इसके दर्शन बिना ही शरीरके क्लेशोंका सम्बध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमे रहे। यही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थोंमे दृष्टि नही डाली, उसका ही जीवनमे कल्याण है।

इस आत्मामे राग आदि विकार व्यक्त हो रहे है। उन रागादिकोके होते हुए भी आत्माका स्वरूप जो ज्ञायकत्व है उस ज्ञायकत्वमे विकार नही है। सफेद वस्त्रमे जैसे हरा रंग चढा देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है? नही। उसपर हरा रग चढा दिया गया है। जैसे जल है, जलमे हरा रग मिला दिया जाय तो क्या जलमे हरा आदि रग आ जायगा? नही, जल जल ही रहेगा। जैसे बिजली के तारका प्रकाश हरे, नीले, पीले रगके प्रकट होते है, पर क्या भीतर जो बिजलीके तारका प्रकाश है वह प्रकाश क्या हरा, नीला, पीला होता है? नही। कभी कोई तार भी हरा, नीला, पीला आ जाय और उससे फिर हरा, नीला, प्रकाश भी झलके तब भी बिजलीका जो काम है, बिजलीका जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमे विकार आ जायगा? नही आ जायगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा इस शरीर देवालयमे विराजमान है। इस शरीरमे कई प्रकारके रूप, रग इत्यादि नजर आ रहे है। क्या इन पौद्गलिक पदार्थोंसे जीवोमे विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपमे क्या विकार आ गया? नही। अतरङ्गमे क्रोध, मान, माया, लोभ, असयम योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते है। विकार है, पर इस आत्माका जो स्वभाव है वह ज्ञानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमे विकार आ गया। अरे विकार होते है, फिर भी यहाँ विकार नही होते, ऐसा मर्म जब आपकी समझमे आता है तब आत्माके मर्मका पता चलता है। ५ सेर पानीमे लाल, गुलाबी, हरा कोई रग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, लाल या गुलाबी या अन्य कोई रगका ही नजर आता है। यह पानीका रग हरा, नीला, गुलाबी इत्यादि जो प्रतीत होता है तो वह पानीका स्वरूप है क्या? उस पानीके स्वरूपमे हरा, पीला, नीला अथवा गुलाबी रग आ गया। वह केवल रग डालनेसे ही रगीन नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रगीन नही। पानी अब भी अपने स्वरूपमे स्वच्छ ही है पर उस पानीकी स्वच्छता रगसे ढक गई है। यह ज्ञायकस्वरूप भगवान अपने स्वरूपमे स्वच्छ है, अपने स्वभावमे अविकृत है, किन्तु इन विपत्तियोके सम्बधमे, इन कषायोके परिणामोसे इस भगवान आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्वरूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमे विकार नही आया। स्वरूपमे विकार आ गया होता तो त्रिकालमे भी यह विकार न मिट सकता था। पानीमे रग आ जानेपर भी कुछ

समय बाद रंग बैठ जाता है और ऊपर पानीमे पतला रंग मालूम होता है। कभी पानी बिल्कुल ऊपर स्वच्छ ही है। रंगमे रंग है और पानीमे पानी है। रंगको घोल दें तो सारा रंग दिखता है और वहीका वही पानीमे सारा पानी दिखता है।

अब घरकी बात देख लो। घरमे पिताजी अपनी धोती और साफा पीले रंगसे रंगते है तो बोलते है कि साफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया, लाल हो गया, क्या धोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हो गई क्या ? चाहे इनको बार-बार फीचें, फिर भी रंग नही निकले। तो भी रंगमे रंग ही है, धोतीमे धोती है, वस्तुमे वस्तु है। वह तो चीजें अपने स्वरूपको लिए हुए है। इतनी ऊपरी भेदकी बाते भी मोही जीव कैसे पा सकते ? भीतमें कलई पोती गयी तो भीत लगती है कि सफेद है अथवा यदि भीतमे हरा रंग पोता गया तो लगता है कि भीत हरी है। भीत हरी नही होगी भीत भीत ही है, जैसी थी वैसी ही है। यह हरा रंग हरा हो गया है भीत हरी नही हुई। इतनी बाहरकी भेदकी बातें समझमे जल्दी नही आती हैं, पर कुछ तो समझमे आ ही रहा है। यह हरा रंग है, वह रंग ही है। भीत इसमे वहीकी वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए है। वह समझते है कि भीत ही हरी है। भीतका आश्रय पाकर वह आधी वर्ग इंचका रंगका ढेला १ हजार वर्ग गजमे फैल गया। पर देखने वाले लोग यह समझते है कि भीत हरी है। पर ऐसा नही है। भीत हरी नही है, रंग ही हरा है। भीत तो भीत ही है।

ऐसे अनेक उदाहरण ले लो। अब भाई धीरेसे अपनी आत्माकी ओर आवो। शरीर मे यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नही होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूपमे ही दृष्टि देकर परख लो कि हम हम ही मे हैं। गायको जेवरीसे बाँध दिया। लोग देखते हैं कि गायको इस जेवरीसे बाँधा है। गायका गला रस्सीसे बांध दिया गया है, पर गायका गला पूरा ज्योका त्यो है। वह रस्सीसे नही बँधी है। उस गलेके चारो ओर रस्सी लटकी है, उसके चारो ओर रस्सी है। उसका ही एक छोर दूसरे छोरसे बन्धा है, पर एकदमसे ऐसा लगता है कि गला रस्सीसे बधा है। अरे गलेमे गला है, रस्सीमे रस्सी है। रस्सीका यह बन्धन है गलेका बन्धन नही। देहमे देह है। शरीरमे आत्माका बन्धन नही है। मैं आत्मा स्वरूपको देखूं तब तो जान पडे कि आत्मामे कुछ बन्धन नही है। जरा बाहर देख तो लो फिर वही विकल्प आता है कि मै देहमे बधा हूं। अरे बाहर न देखो। अपने आनन्दघन स्वरूपको देखो तो अपना स्वरूप अपनेमे मिलेगा। बहुत विकल्प, कषाये होते है यह काम मेरा रह गया है, इसमे टोटा पड गया है, इसमे यह करना है, पुत्र, स्त्री तथा परिवारको नही छोडते है, उनको ही अपना सर्वस्व देखते है, विपत्तियां उठाते है। अरे तू केवल शुद्ध ज्ञायकस्वरूप सबसे निराला, ज्ञानघन अपनेको निरख। तू एक पदार्थ है

जिसमे वही वही है यह तो एक पदार्थ है और ज्ञानस्वरूप परिणाम रहता है, जहाँ विकल्प एक नही है। ऐसा यह स्वय स्वरूप है। चमडेकी आँखे खोलकर यदि अपनेमे बाहरको देखोगे तो उतनी ही विपदाएँ आयेंगी। सर्वज्ञदेव तो कहते है कि उन प्राणियोंके रागादिक भाव जब होते है उस समय भी आत्माका जो स्वरूप है, स्वभाव है, ज्ञायकत्व है उसमे विकार नही होते है। मैं शुद्धस्वरूप हूं—यह दृष्टि जो हो तो आने हुए विकार भी खत्म हो जायेंगे और यदि शुद्ध स्वभावमे दृष्टि नही है तो समझो कि विकार बुलाए जा रहे है। ख्याल मे ख्याल रक्खो तो ख्याल होता चला जायगा और अगर उस ओरसे मुडकर किसी आरामके स्थानपर उपयोग लगाया तो वह कम ख्याल होते हुए भी भूल जाय। तात्पर्य यह है कि आत्माके स्वभावमे रागादि दोष नही है। जैसे कोयलेकी आग जल रही है और उसीमे गंधक लोभान भी डाल देते है। गंधक लोभान डाल देनेसे हरे, पीले रगकी लौ निकलती है। उस हरी नीली लौ के होनेमे क्या अग्नि हरी नीली हो गई? अग्नि तो इस उष्ण प्रकृतिमय सदा एक स्वरूप है। चाहे उसमे लौ हो या न हो या किसी रग या आकारका हो, इससे क्या? प्रत्येक परिस्थितियोमे अग्नि एक सामान ही है। इसी प्रकार कर्मोंके विचित्र सम्बन्ध मे इस आत्मामे क्रोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकारके विकार, नाना प्रकारके विकल्प छाये रहते है। इतनेपर भी इस भगवान आत्माके स्वरूपको देखो तो वह सदा एक ही स्वरूप है।

यह बात सुननेमे समझनेमे थोडी आती भी हो तो भी इस बात का पता लगाए बिना उत्थानका मार्ग नही मिलेगा। और-और प्रकारसे तो धर्मके मार्गपर चलकर ही जहाँ का तहाँ अन्य उपायोसे तो मात्र कल्पित संतोष प्राप्त किया जा सकता है। जैसे गर्मीके दिनोमें रातके समयमे समुद्रके पास एक नदीके किनारे खडे हुए जहाज या बडी नावमे कुछ मनुष्य बैठ गये। जहाज या नाव रस्सीसे खूँटेमे बँधी हुई थी। उसको खूंटेसे खोला नही और उस पर बैठ गए। नावको वे खे रहे है, ताकत लग रही है, परिश्रम लग रहा है। दो-तीन-चार घटे तक नाव चली, ६ घटे तक चली, सवेरा हो गया। सोच रहा था मन ही मनमे कि अब चार मील पहुच गए है, अब ६ मील पहुच गए है, अब मैं अपने गाँवके किनारे लिए जा रहा हू, खुश हो रहे थे। जब सवेरा हुआ तो देखा कि नाव अपनी ही जगहपर स्थिर है। बोले अरे भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, ताकत लगाया, पर नाव वहीकी वही रही। क्या किया कि खूटेमे रस्सी खोली ही न थी।

इसी प्रकारसे धर्मकी बातें सोचकर बहुत-बहुत बातें कर डाली। ४०-५०-६० वर्ष बहुत-बहुत बाते कर ली। इस तरहसें बहुत श्रम करनेपर भी जब हम अपनेको पाते हैं तो हममें अशांति ही नजर आती है। उस २४ घटेके समयमे कोई लक्षण ऐसा नहीं नजर आता

कि वह धर्म करता हो । यदि ऐसा समय आ जाय तो उसे शांति मिलती है । अपना स्वरूप तो देखो—यहाँ सब कुछ है, कृतार्थ हू, स्वरूपवर्तनके अतिरिक्त मेरेको कुछ करनेका नही है । लेकिन मोहके खूँटेसे उपयोगकी रस्सी बँधी हुई है उसे खोला नही है । हमारे १० लक्ष है, हमारे महल हैं, हमारे यही परिवारके लोग सब कुछ है, परिवारमे दो-चार लोग हैं वही सबसे बढ़कर है । भगवानकी उतनी कदर नही है जितनी कि बच्चोको है । उनका जो कुछ सर्वस्व है वही दो-चार लोग हैं । परमपवित्र ज्ञान जिसके दर्शनमे मिलता है उस स्वरूपका दर्शन ही नही हुआ । वह अपना आया कैसे ? अनेक काम कर डाले, बड़े-बडे प्रयत्न कर डाले और बडे प्रयत्न करके भी जगतमे जहाँके तहाँ रह जाते है, किन्तु आत्मशान्ति, आत्मीय आनन्दके लिए जो यत्न करना चाहिए उस यत्नके लिए तैयार नही होते । करते है पर तैयार नही होते । जैसे उपयोगमे कोई जमा ले जाता है कि हमको तो यह दूकान करनी ही है । इस तरह जम करके यह बात नही आई कि हमको तो आत्मशाति लेनी ही है । मुझे तो आत्मकल्याण करना ही है । इस तैयारीके साथ भाव उत्पन्न हुआ हो तो यह सब अपने स्वरूपकी बात यही बहुत जल्दी सुगमतया अन्तरमे बैठ जाय । देखो यह आत्मा या स्वरूप जो केवल ज्ञानरसमय है, जानन जानन ही जिसकी पूरी बौडी है । विचित्र जगतके सब पदार्थोंका सार यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा है । इस आत्मामे न विकार है ,न विपदाए है । स्वरूपकी बात यह है पर सत्के इस पिडकी बात यही सब सामने है । क्रोध है, माया है, लोभ है, शरीर तो केवल चल रहा है, ये सब सत्पिण्डमे है, पर स्वरूपमे नही चल रहा है । हाँ केवल स्वरूपको पूरा पिंड मान लिया तो एक ब्रह्मवाद निकल आया है । मैं निर्विकार हू । ठीक है, स्वरूपसे निर्विकार हू, किन्तु इस पिण्डमे परिणमन तो निरतर चल ही रहा है । पानी गर्म हो गया है, पानीमे बहुत गर्मी आ गई है, पर पानीके स्वभावमे गर्मी है क्या ? पानीके स्वभावमे गर्मी नही है ।

इतनी बात सुनकर कि पानीके सत्वमे गर्मी नहीं, है कही उस खौलते पानीको पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानीके स्वभावमे गर्मी नही है, पर इस पिण्डमे तो है । अभी कोई गर्म पानीको पी ले तो बोलता है कि हाय जीभ जल गई । कहता है कि यदि पानी स्वभावसे गर्म नही होता तो मैं जल कैसे जाता ? इसका पता लगानेके लिए ज्ञानी से मालूम कर । पानीके पिण्डमे गर्मी है, पानीके स्वभावमे नही । बस इतने ही अतरसे वेदांत के व स्याद्वादके स्वरूपमे अतर है । इस ज्ञायकस्वरूपमे विकार कहा है ? जिस स्वरूपमे विकार नही है ऐसा ही ज्ञायकमात्र मैं हू । मै आत्मा अनन्त ज्ञानानन्दस्वरूप हू ।

हे आत्मन् ! तू परमे दृष्टि न लगा, पर मिट जाने वाले हैं । तू मिटने वाली चीजोका विश्वास करता है । परमे दृष्टि लगानेसे दु ख होगा । अभी घरमे दादाके गुजरनेसे, बापके

गुजरनेसे, बच्चोके गुजरनेसे दुःख होता है। क्या दुःख हो ? यो दुःख होता है कि उनमे बाबा, बच्चे वगैराके बारेमे यह निर्णय किया था कि ये सब अमिट है। जब तक उनके मनमे यह नही आया था कि जो समागम होता है वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बाप जी मर जावेगे तो कहेगे कि कैसे तूने सोच लिया अपशकुनकी बात। अरे यहाँ पर जो कुछ है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमीको कोई अगर साधु मिल जाय तो उसे बडा गुस्सा आयगा। शिकारके लिए साधुका दर्शन अपशकुन हो गया। मोहियोके लिए ज्ञानी और वैरागी तो अपशकुन है। यदि सत्यस्वरूपको देखा जाय तो समझमे आता है कि शकुन तो ज्ञान और वैराग्य ही है। मोह सम्बध तो अपशकुन ही है। यदि तूने अपना समय अपशकुनमें ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने स्वभावशकुनमें उपयोग दिया तो तेरेमे है तू है ही, तुझे कष्ट नही होंगे। जहाँ पर ज्ञानदृष्टि होगी वहा पर दुःख नही होगे। अनित्यमें अनित्य की दृष्टि होनेपर वह पदार्थ मिट जाय तो वह ज्ञाता रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बात हो गई ना जो हम पहले समझते थे।

अरे वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी सौदेके खरीदनेमे यदि तुरन्त अनुभव हो जाय कि इसमे तो ठग गए। १० हजारका खरीदा हुआ बेचनेसे ६ हजारका पडता है तो इतनेकी हानि हो रही है। वह इस सौदेको वर्ष भर रखकर बेचता है और उतना टोटा पडता है तो पडो, परन्तु इससे उसे दुःख नही होगा, क्योकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। देखने सुननेका ही आत्माके भीतर कितना कमाल हो गया ?

यह प्राणी अनित्यको नित्य समझे तो जब हम मरते है तब हम रोते है। इस असार शरीरको जब हमने सार ही समझ लिया तब रोते है। असार चीजको हमने सार समझा, तब रोते है। दूसरेकी चीजोको हमने अपनी समझ ली या तब रोते है। असत्यको सत्य समझ लिया इससे हम रोते है। वहाँ पवित्रता नही है, जहाँ मोह है। लेकिन कहते क्या है कि नाली गदी है, यह पानी गदा है, सडा हुआ है, उससे बदबू आती है अर्थात् इसमे बहुतसे गदे पदार्थ पहुच गए है अत गदगी है। सडे गले मासकी तथा अन्य बाह्यपदार्थोंकी वह गदगी कैसे हो गई ? सोचो तो सही पहले तो इस गदगीमे मिष्टान्नके टुकडे थे, बर्फी थी, बूँदी थी, लड्डू थे, परन्तु अब वह तो विष हो गया, अब वह गदगी बन गयी। अब जो गदगीकी शक्ल है वह भी पहले एक साफ पिड थी और उससे पहिले देखो तो वे अणुस्कन्ध थे, आहारवर्गणाये थी। उनसे भी पहले परमाणु-परमाणु थे उन स्कन्धोपर जब इस आत्मा ने कब्जा कर लिया उन्हे ग्रहण कर लिया तो ये शरीरकी शक्ल बन गये वे बनकर इस शक्लमें आ गये है। इन सब बातोका मूल कारण क्या है ? इनका मूलमे कारण यह हुआ

कि इन परमाणुवोमे आत्माका कब्जा हुआ, जीवका सबध हुआ, तब उन्हें ये विचित्र शक्लें मिली। जब तक इस पिण्डके साथ आत्माका सबध न हुआ तब तक सब पवित्र था। आत्मा से सम्बन्ध होनेपर, मोही आत्मासे सम्बन्ध होनेपर इन वर्गणावोकी ऐसी प्रगति होने लगी। अब देखो इसका मूल अशुद्धिकारक कौन हुआ ? ये सब गंदगिया अशुद्ध है किसके प्रसादसे ? जीवोके सपर्कके प्रमादसे, जीवोके नही, मोही जीवोके। तब मोह ही तो मूल हुआ। देखो लोकमे जो लडका अशुद्ध हो जाता है उसको छूते तो नही है। बाहर रहो, बाहर रहो, कही छू न लो। यदि उस लडकेने छू लिया तो अशुद्ध हो गए, दिलमे अशाति हो गई। दूसरेने तीसरे को, तीसरेने चौथेको छू लिया, जहाँ तक नजर चलती है वह सब अशुद्ध ही होते चले जात है। यह क्यो अशुद्ध हो गए ? उसने हमे छू लिया। उन सबमे मूल खराब है केवल एक लडका। अरे यह लडका तो शुद्ध है किन्तु हो गया जठराग्निसे सम्बन्ध। यह जठराग्नि कैसे बनी ? मोही जीवके सम्बन्धमे। लो, जठराग्नि भी हो गई, जीवका सम्बन्ध होनेसे। अब सब गदी शक्ले बनने लगी। अब मूल कारणका विचार करे तो मूलमे क्या अशुद्ध है ? किस वजहसे सारी चीजे अशुद्ध हो गयी। अरे रागी जीवने कब्जा किया तो यह अशुद्ध हो गया। जीवके सम्बन्धसे यह अशुद्ध नही हुआ, किन्तु रागके सम्बन्धसे यह अशुद्ध हो गया। फिर यह राग हुआ क्यो ? यह अशुद्ध राग बना क्यो ? अरे मिथ्यात्वकी वजहसे यह अशुद्ध राग बन गया। दुनियामे सबसे गदा होना है मोह। क्या माससे गदा है ? हां मांससे भी गदा है, खादसे गदा है तथा अन्य अशुचि पदार्थोसे भी गदा है। हा, हा सब पदार्थोसे गंदा है। गंदगी जो है उसका करने वाला भी यह मोह ही है। मोह है, मोहका सम्बन्ध जीवसे है तो राग पैदा हुआ। तो राग तो मोह-परिणामोसे हुआ। शरीर बन बैठा तो यह मोह। दुनिया मे जो गदी चीज है तो केवल एक मोह है और कोई दूसरी चीज इस दुनियामे गदी नही है। जिस मोहने इस समस्त जगतको गदा कर दिया उसका महत्व इतना है कि भगवान भी छूट जाय, धर्म भी छूट जाय, सबसे मुँह मुड जाय, पर मोहसे मुख नही मोडते। यही वजह है कि हमारे धर्मके प्रयत्न तो होते है, धर्मकी बात चलाते तो है, किन्तु उपयोगकी रस्सी मोह की खूँटीसे गडी हुई है। ४० वर्ष तक धर्म किया, पूजा किया, सेवा किया—५० वर्ष तक, परन्तु आज हम उसी जगह पर हैं। कषायमे फर्क नही पडा।

वह सहज उजेला नही मिल सका। यही चीज समझने की है कि इस आत्माके ज्ञायकस्वरूपमे क्या विकार है ? मै तो मैं ही ज्ञानमय हू, ज्ञानमय होना ही मेरा स्वभाव है। ऐसा ही मैं शाश्वत निश्चल हू। यही साक्षात् भगवान् हूं। भगवान होनेके लिए बाहरसे कुछ नही आता। मैं तो बना बनाया भगवान् हू, मेरेमे विषय कषाय नही है। विषय कषायों को ज्ञानदृष्टिकी छेनीमे काटकर बाहर कर देना है और फिर है बना बनाया प्रभु। जैसे पत्थर

की मूर्ति बनाई जाती है तो पत्थरसे जो कारीगरोने मूर्ति तैयारकी । उसमे केवल बाहरी ढकने वाले पत्थर काट दिये, मूर्ति तैयार हो गई । कुछ बाहरसे मूर्ति तो नही रची । इसी प्रकारसे मूर्तिको तैयार कर लेते है, अन्य काम नही करने पडते है । यह मूर्ति वही तैयार कर सकता है जो कुशल कारीगर है । जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है । जरासा ढकने वाले पत्थरोको काटकर हटा दिया, मूर्ति तैयार हो गई । इसी प्रकार इस आत्मामे भगवान बननेके लिए कुछ नहीं बाहरसे लाना है । केवलज्ञान स्वरूपको ढकने वाले जो विषय कषायोके परिणाम है उन विषय कषायोको ज्ञान-छेनीसे बाहर करना है । यह स्वरूप कृतकृत्य है । दुकान करने को पडी है, यह नही चलेगा तो इसके विना गुजारा नही है । ऐसा कुछ नही है । विषय कषायोकी गदगीको हटाकर इस ज्ञानस्वरूपसे भगवानके स्वच्छ व सही दर्शन तो कर लें, इसको कर ले और अगर न कर सका तो जहांके तहाँ मौजूद मिलेंगे । हे ससारी प्राणी, हे ज्ञान नन्दघन आत्मन्, तू दुखी क्यो हो रहा है, विवश क्यो हो रहा है ? अपने स्वरूपको तो देखो । तेरा तू ही है, एक ज्ञानघनरस, आनन्दपुञ्ज है । तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है । दु ख तो तूने कल्पनाएँ करके बनाये है । स्वभावमे तो आनन्द ही बना हुआ है । तेरा स्वरूप चतुष्टय तुझमे ही है, तेरा उत्पाद व्यय ध्रौव्य तुझमे ही होता है । पदार्थोका अपना अपना स्वरूप उन ही, उन ही मे है । अन्य पदार्थोका दूसरे पदार्थोसे कुछ भी सम्बध नही है । किन्तु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वस्तु बाह्य पदार्थोमे कल्पनाए करता 'यह मै हू' यह मेरा है' बस इन कल्पनाओसे दु ख उत्पन्न होने लगता है । दु खका मूल दृढ नही है । एक केवल भ्रमसे बाह्यमें आ जानेसे, अध्रुवका आश्रय मान लेनेसे, असत्यको सत्य मान लेनेसे क्लेश उत्पन्न होते है । क्लेशोका मूल दृढ नही, परन्तु हिम्मत करना नही तथा अपने आपके स्वरूपमें ही आपा बुद्धि रखना नही । और क्लेश यो ही मौज करते-करते खतम हो जायें सो कैसे हो ? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजी आत्मतत्त्व मैं समझू तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेगे, तेरा न्याय तू ही है । तेरा न्याय करने वाला कोई दूसरा नही है, तेरी पुकारका सुनने वाला कोई दूसरा नही है । तेरी प्रभुता तेरेमें ही है, तू ही अपनी पुकारको सुन सकता है, तेरी आवाज तेरा प्रभुत्व ही सदा सुनता रहता है अर्थात् जैसे परिणाम उत्पन्न होते है वैसे ही इस प्रभु आत्मामें परिणतियाँ होती चली जाती है । तेरा निर्णय तुझमें है । तू अन्यत्र दृष्टि मत कर । तूने अन्यत्र दृष्टि बहुत की, इसीकी वजहसे दुःख होते आ रहे, यह मेरा स्वभाव नही है । परको तो महिमान जान । महिमान कहते है उसे जिसकी कोई महिमा न हो, आते हो तो आओ, न आते हो तो चले जाओ । ऐसे ही मेहमान होते है, जिनके प्रति लोग कहते हैं कि इसकी चाहे यह बडा भी हो मेरे यहाँ महिमा नही है । तू अपने ज्ञानस्वरूपको देख । और कर्मोके स्वभावसे उत्पन्न हुए भाव, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि यह

तेरे स्वभावमे नही है। तू तो निश्चल, एक ज्ञानस्वभावमात्र है। तू अपनेको ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई पुरुष है इसके मित्र है, मैं उसका मित्र हू, इस तरहसे जो अनुभव करता है, जिनको मित्र माना है, जिनको वैभव माना है उन्हीसे उसे क्लेश होते है और उन क्लेशोसे उसे रज होता है, दुःख होता है। इसी प्रकार यह किन्ही पदार्थोंको अपना मान लेते है तो इस बिगाडसे ही उसे दुःख उत्पन्न होता है। इन रागात्मक भावोको तू अपना मान लेता है तो दु ख उत्पन्न होता है। भेदविज्ञानकी चरमसीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावोको अपने आपसे न्यारा समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दीखते हैं। मकान हैं, देखो यह तो प्रकट ही न्यारा दीखते है। यह मित्र तो प्रकट न्यारा दीखते है। परिवारके लोग भी जुदा-जुदा है। और इसी आत्मभूमिका मे जो अष्ट प्रकारके कर्म-बन्धन बधे हुए है वे भी इस आत्मासे जुदे है। पुद्गल कहलाते है रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले है, वह सब भी न्यारा है। इस आत्मामे जो रागादि विकार उत्पन्न होते है उन्हीमे सुख व दु ख उत्पन्न होते है। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि विकार न्यारा है कि नही। एक दृष्टिसे देखते है तो वह न्यारा नही जचता है। मेरा द्रव्य ही तो इस समय यो परिणमता है। जब इसके कारण देखते हैं तो यह जुदा समझमे आ जाता है। यह विकार मेरा नही, यह मेरे स्वभावके कारण नही हुआ। रागादिक भाव मेरे स्वभावसे उठकर नही होते, किन्तु कर्मके उदयका निमित्त पाकर झलके होगे। जिन महात्माओने, जिन सौभाग्यशाली पुरुषोने इस निराले तथा चैतन्य चमत्कारमात्र स्वरूपको पहिचाना है वे आनन्दमय है और जिन्होने अपने स्वरूपको नही पहचाना है वे प्राणी ससारमे रुलते है, रोते है। ऐ रोने वाले प्राणियो! व्यर्थमे दुखी हो रहे हो, व्यर्थमे विवश हो रहे हो। तेरी सहायता करने वाला ससारमे कोई है क्या ? तेरेको दड देने वाला कोई दूसरा इस जगतमे है क्या ? तेरा अहित करने वाला, तेरे पहिचानने वाला, तुझे मुक्तिमे ले जाने वाला, तेरेको इस ससारमे भटकाने वाला कोई दूसरा इस जगतमे है क्या ? कोई नही है। आप तो परिणाम करते है और ये क्लेश अपने मे ही ओटोमेटिक बनते चले जाते है। इन दु खोसे बचना है तो अपने स्वरूपको देखो। दूसरा कोई उपाय नही है। धर्म का पालन इसीको कहते है। धर्म बाहर नही, वेश-भूषामे नही, नाना स्थानोमे नही, नाना पद्धतियोमे नही। केवल निज सहज स्वभावमे 'यह ही मैं हू' ऐसा मान लेनेसे, ऐसा अगीकार कर लेनेसे, ऐसी दृष्टि बना लेनेसे धर्मका पालन है। इस ही बातके लिए यह व्यवहार धर्म है। सत्संग करते है किस प्रयोजनके लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रहे कि हम धर्मके पालन के योग्य बने रहे। इसके लिए सत्संग किया जाता है। उपकार सत्सग जो किए जाते है इस-लिए किए जाते है कि मेरी बुद्धि ऐसी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभावके दर्शन करनेके लायक बना रहू। अपने स्वभावके दर्शन करना सोई धर्मका पालन है। दु ख तो कल्पनाओसे

बनाया गया है। कोई भी दुःख हो रहा हो, यही निर्णय कर लो कि और कुछ नहीं है, केवल कल्पनाए बनी रही। बस इसीसे दुःख होता रहा है। इन कल्पनाओंका बना लेना, इसीका नाम दुःख है। जैसे न तो टोटा पडा है, न विपत्तियाँ आती हैं, न हमारे लिए कोई अनर्थकी योजना कर रहा है। केवल कल्पनाए बना बैठा होऊ कि हमारे अनर्थके लिए कोई योजनाएं कर रहा है। वहा कुछ नही हो रहा हैं, वहाँ अपने हित की ही बात बन रही है और मनमे कल्पनाए कर ली कि मेरी हानिके लिए योजनाए ये बना रहे हैं तो इसीसे दुःख होता है। बाह्य पदार्थ है, है, वे अपने आपमे परिणमते है। हम ऐसे है, वह वैसे है, इस प्रकारसे वस्तुस्वरूपके अनुकूल विचार चले इससे उन्हे आनन्द है। सुख और दुःख कही बाहरसे नही आते है। जैसी भावना है वैसे ही दुःख तथा सुख है। वस्तु है किसी दूसरे प्रकारकी और मान लेना उसे भिन्न प्रकारकी तो दुःख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान ले तो सुख होगा। वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहरकी नरकगतिके दुःख भी भोगे जा रहे हो, किन्तु यदि आत्मामे मिथ्यात्व नही है तो आत्मामे सुख है, कोई क्लेश नही है। और अन्तरमे सम्यक्त्व नही है तो उसकी आकुलता बराबर लगो चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुख को पैदा करता है और मिथ्यात्व सदा आकुलताओ को पैदा करता है। जैसा है तैसा ज्ञान हो जाना, जैसा है तैसी समझ हो जाना, यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असयमके काम करता है, चरित्रके-प्रतिकूल भी चलता है पर जैसे पतग उडाई गई, पतग कितने ही ऊपर पहुच गई है तो डोर तो अपने हाथमे है, वह पतग कही बाहर नही जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व है तो चाहे उपयोग थोडा भ्रमकी ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहाँ वहाँ पहुच जाय तो वह सब सम्यग्दृष्टिके आधीन बात है। वह अपने उपयोगको शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। होता भी ऐसा ही कि श्रद्धा तो सही है, फिर भी मार्गपर नही चल पाता। कौन नही जानता कि हिंसा, झूठ, चोरी कुशील परिग्रह ससारमे भटकाने वाले हैं। इनकी निवृत्ति होनेपर भलाई है, फिर भी लोगो को कुछ समय तक करना पडता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप कम हो जाते है।

जैसे सामने अग्नि पडी है। एक पुरुपको जबरदस्ती ढकेलकर कहा जा रहा है कि आगपर चलो तो वह पैरोको आगमे ऊपर-ऊपर रखकर निकल जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पडी हुई हे और कहनेसे नहीं, किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख लेता है। इन दोनो पुरुषोंमे जरा बतलाइए कि अधिक कौन जलेगा? जिसने पीछे बिना प्रेरणाके पैर रख दिया है, उसको पता नही था तो वही अधिक जलेगा। उसको आगका पता न होनेसे जल्दी उठनेका परिणाम भी नही है, सो अधिक जल गया और जो सामने देख रहा है वह जल्दी-जल्दी पैर रखकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसको ज्ञान है, श्रद्धान है,

वैराग्य है, फिर भी कोई परिस्थिति आती है जिससे कुछ प्रतिकूल चलना पडता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिचा हुआ रहता है। जिसमे ज्ञानस्वरूप नही, विषयोमे आसक्ति है, उसके कर्म बन्धन विशेष है। ज्ञानीको विपयोमे आसक्ति नही होती, इससे वह मोक्षमार्गस्थ है। एक कुत्ता जानवर होता है, वह बडा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होता है। २ रोटीके टुकडोमे ही २४ घटे पहरा देता है। अपनी पूँछ हिलाकर बडे प्रेमसे अपने मालिकको बडा प्रेम दिखाता है। देखो कुत्ता कितने काम आता है ? चोरीसे बचानेके लिए रखवाली करता है, कोई उपद्रव मालिकपर आ जाय तो शीघ्र कुत्ता अपने मालिकका उपकार करनेके लिए तैयार हो जाता है। एक सिहको देखते है तो दिल दहल जाता है। किसी किसीका तो हार्ट फेल हो जाता है। कोई-कोई तो शेरसे डरकर मर जाता है। कितना अहित करने वाला यह शेर है ? क्यो जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा देना चाहिए या नही। अच्छे पुरुष किसी सभामे खडे हो जाएँ और कहे कि फलाने भाई तो बहुत उपकारी है, इनका कहना क्या है ? यह बहुत ही उपकारी एवं धर्मात्मा है। यह तो एक कुत्तेके समान है। इनकी बडी भव्य आत्मा है। यह बडे उपकारी है। और उसी को या अन्य किसीको यह कह दिया जाय कि यह शेरके समान है (यानी दूसरोकी जान लेता है)। ऐसा नाम सुन करके वह खुश हो जायगा। पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्तिको यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह व्यक्ति कुत्तेके समान स्वामिभक्त यथा आज्ञाकारी है। यह अंतर किस बातका आ गया ? यह आध्यात्मिक मर्मको बताने वाला अन्तर है। अगर कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो उस लाठीको कुत्ता चबाने लगता है। वह समझता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है। यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सब कुछ करने वाला है। ऐसी दृष्टि हुई कुत्तेकी जैसी दृष्टि। उसको यह पता नही चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नही है बल्कि यह पुरुष है, जब कि शेरको कोई लाठी, तलवारसे मारे तो शेर यह नही समझता है कि मेरा दुश्मन लाठी और तलवार है बल्कि वह यह समझता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है, इसलिये वह शेर उस पुरुषपर ही हमला करता है। एकको दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और दूसरेकी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानीमे अन्तर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसीमे मेरा सुख नही है। मेरा सुख मेरे अन्तरसे उठता, परन्तु अज्ञानी यह देखता है कि धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदिमे ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्य पदार्थोसे सुख नही होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्य पदार्थोपर ही सुख दुःख निर्भर हैं। अज्ञानी जीवो अपनी प्रभुताको बरबाद कर दिया है। वह सोचता है कि यदि प्रपच, परिवार, सदस्य तथा अमुकको मैं न देखूगा तो

नुक्सान है। परन्तु नुक्सान है—इसी बाह्य दृष्टिमे यह आत्मा पूर्ण स्वच्छ हो तो दु ख नही होगे। एक पुरानी घटना है कि बज्रदत चक्रवर्ती जब फूलमे मरे हुए भँवरेको देखते है तो देखकर विचार करते है कि यह भँवरा फूलकी सुगधमे आसक्त होकर इस फूलमे ही छिपा मर गया। कोई फूल ऐसे भी होते है कि दिनमे तो खुले रहते है और शाम होते ही बन्द हो जाते है। भवरा मकरदरस चूसनेके लिए बैठ गया शामको और उसी फूलमे वन्द हो गया। जिस भवरेमे इतनी ताकत है कि काठमे छेद कर सकता है। एक ओरसे छेद करके दूसरी ओरसे निकल जाता है। फूलकी उन कोमल-कोमल पखुडियोमे आसक्त होकर भवरा मकरद रसका पान करता है और वही मर जाता है। इसी तरह आत्मामे तो अनत शक्ति है, आनन्द शक्ति है, केवलज्ञानकी शक्ति है। परतु विषयोमे आसक्त होकर अपने ज्ञान प्राणको बरबाद कर रहा है। आत्मामे क्लेश या आनन्द केवल जानने की कलापर निर्भर है। लो, शरीरको देखो, आनद खत्म हो गया और लो ज्ञानस्वरूप देखनेमे उपयोग बन गया, तो आनन्द प्रकट हो गया। ऐसी महान् चमत्कारकी कलासे युक्त यह भगवान आत्मा है।

यह प्राणी बाह्य दृष्टि करके कि मुझे तो बाहरी चीजोसे आनन्द मिलता है, बाहरमे ही आसक्त होकर बाहर-बाहर ही घूमता है। इस प्रकारका प्राणी बाहरी पदार्थोको नही छोड सकता है। यह भूला हुआ प्राणी भ्रममे ही रह रहकर अपना आत्मबल खो देता है और बरबाद हो जाता है। ऐ प्राणी! क्यो दुखी हो रहे हो? तेरा तो स्वरूप भगवानका है। तेरेमे भी तो वही द्रव्य वही गुण है, ६ चीजें है। भगवानकी आत्माका तत्त्व शुद्ध ज्ञानके द्वारा आनन्दमय है, ज्ञानघन है। मेरे आत्माका उपयोग अशुद्धकी ओर है, यही तो हो गया अतर। चीज तो एक है जिसमे दुविधापन नही है। तो जैसा सुखका भण्डार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नही जानता है। इसी कारण बाहरी फसावमे फस रहा है। २४ घटेके समयमे २ क्षण को सबकी कल्पनाए छोडकर अन्तरमे ता देखो। तू उत्कृष्ट ज्ञानानदका पिड है। कहते है कि जीव हवा है। फूक मारा उड गया। यह जीव हवामे भी अत्यन्त सूक्ष्म है, शरीरसे अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीरके अदर है, इसमे निमित्तनैमित्तिक भावोका होना कारण है। नही तो शरीरसे इतना सयोग होनेकी भी गुन्जाइश नही, तेरे परिवारके लोग तेरे नही है जिनसे तू इज्जत चाहता है, यह तेरे नही हैं। तू तो चैतन्य-स्वरूप एक वस्तु है। ऐसा सुखका भण्डार तू है। अतर भीतरमे देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप देखते रहो।

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया। तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम्।

एक समयसार ग्रन्थ अध्यात्मका एक ही ग्रथ है, जिसमे अध्यात्म पद्धतिसे आत्माका स्वरूप बताया है। उसमे आत्माका स्वरूप बताते-बताते उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते है।

और शिक्षा देते है कि हे आत्मन् ! तब तक भेदविज्ञानकी भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञानमे प्रतिष्ठित नही हो जावे । मै ज्ञानमात्र हू, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू । इस प्रकार सबसे निराला अपने आपके चैतन्यस्वरूपको देखो । यही काम अभी पडा हुआ है । यही काम कठिन है, पूजा सरल है । अरे नही भैया अपना यह काम सरल है, पूजा कठिन है । पूजामे १० साधन जुटाने है । यहाँ क्या है ? जैसे ही वैसा अपनेको देख डालो, यह क्या कठिन है ? धर्मका पालन यही है । बाहरी चीजें तो सहारा मात्र है, उनमे दृष्टि न दो । जैसे नीचेसे ऊपर आनेमे जो सीढियाँ है वे तो सहारा मात्र है ऊपर आनेके लिए । सीढियोंसे प्रेम नही कर लो । सीढ़ियाँ बहुत अच्छी है, बडी सुखद है, मैं नही छोडूँगा । अरे तू न छोडेगा तो वही पडा रहेगा, बाह्य तो तेरे सहायक है । पहली सीढीपर कदम रखकर उसको छोड दे, दूसरीको छोड दे, तीसरीको छोड दे । ग्रहण किया है छोडनेके लिए । ऐसा न चलो कि हम तो पहलेसे ही छोडे हैं, पहलेसे ही छोडे पडे है । नही, ग्रहण करके छोडनेकी बात है । यहाँ कुछ छोडना नही । यथार्थ ज्ञान जो इसमे ही ज्ञान है, इसमे ही आचरण है, ऐसा स्वरूप वाला यह मैं निश्चल रूपसे अपने आपमे रहूँ और अपने आप सुखी होऊ । मै क्या हू, इस बातको समझनेके लिए इस श्लोकमे पाच बाते बताई गई है । पहली बातमे कहा है कि यह आत्मा ज्ञानपिंड है । दूसरी बातमे अन्य समस्त पदार्थोसे भिन्न बताया है । तीसरी बातमे स्वभावसे निर्विकार कहा है । चौथी बातमे स्वतन्त्र कहा है और पाँचवी बातमे सहज आनदमय दिखाया है । इन्ही पॉच बातोंके विवरणसे मनन करनेपर आत्मामे यथार्थ बल बुद्धि हो जायगी । मैं ज्ञानपिंड हू, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है । जैसे गर्मी ही अग्निका स्वरूप है वैसे ज्ञान ही मेरा स्वरूप है । जैसे कोयला तिकोना, चौखूटा है, जलता है तो वह अग्निका स्वरूप नही है । अग्निका स्वरूप तो केवल गर्मी है । और बाते तो निमित्त पाकर होती है । यह मै आत्मा ज्ञानका पिड हू, ज्ञान ही इसका स्वरूप है । ज्ञान रसमय है । यह आत्मा मच्छके शरीरमे इतना लम्बा चौडा हो गया और चीटीके शरीरमे इतना छोटा हो गया । ऐसा छोटा बडा हो जाना, फैल जाना, यह आत्माका स्वरूप नही है । यह तो निमित्त पाकर होता है । आत्माका स्वरूप तो ज्ञान है । ज्ञानपिंड यह आत्मा है और अन्यसे भिन्न है । मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है उन सबसे मै जुदा हू । यह अस्ति और नास्तिका जिक्र किया है । मै मैं हू, कुछ और नही हू । हू तो ज्ञानपिड और मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है वे सब मैं नही हू । इसीको कहते है एकत्व विभक्तत्व । तू एकत्व विभक्त, इसके अतिरिक्त और कुछ नही है । वस्तु की पहचान स्याद्वादसे होती है । स्याद्वादका आश्रय लिए बिना वस्तुओसे परिचय नही होता ।

यह पीछी है, तो यह पीछी है और और नही है । पीछी चौकी हो जाय, पीछी ही

दरी हो जाय तो यह सत् नही हो सकता है। पदार्थ सत् कहलाते है तब जब अपने स्वरूपसे हो और परके स्वरूपसे न हो। यदि वह परके स्वरूपसे न हो व निजस्वरूपसे हो तब तो वह पदार्थ रह सकता है अन्यथा नही। पदार्थ तभी कह सकते है जब अपने स्वरूपसे तो हो और परके स्वरूपसे न हो। यह चौकी है, है, स्पष्ट दीखती है। यह चौकी अपने आपमे तो है, पर इससे अतिरिक्त जितने पदार्थ है उन सब रूप नही है तभी तो यह पदार्थ है। इसी तरह अपने आत्माकी बात लगाइए। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हू और परके स्वरूपसे नही हू। अपने आपमें हू, मैं अन्य जीव नही हू, कोई पुद्गल नही हू, अन्य किसी द्रव्यरूप नही हू। वह मै क्या हू ? इसके बारेमे बताया है कि मैं ज्ञानपिंड हू। आत्मामे ज्ञान ही का तो सारा वैभव है, ज्ञानका ही सारा कमाल है। ज्ञान ज्ञान ही तो आत्मा है, अमूर्त है, ज्ञान भावात्मक है, ऐसा ज्ञानरस इस आत्माके साथ अन्य-अन्य भी गुण मालूम होते है। जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र है, परन्तु यह सब कुछ भी लगा रहता है। मानो ज्ञानधर्मके अस्तित्वकी सेवाके लिए सर्व गुण है। सबमे प्रधान एक ज्ञानगुण ही है। जब हम आत्माको पहिचानने चलें तो और-और बातोको देखकर हम आत्माको न अनुभवमे ला सकेंगे। जैसे सोचा कि यह मैं आत्मा कितना लम्बा चोडा हू ? तीन-चार हाथका लम्बा, एक हाथका चौडा, इतना ऊँचा, सोचते रहे, पर ऐसा सोचनेसे आत्माका परिचय न मिल सकेगा। आत्माका अनुभव न हो सका, आत्माकी पकड न आ सकेगी। यह मैं आत्मा कैसा हू ? अरे जो गुस्सा आ रहा है यह है आत्मा, दर्दका अनुभव है यह है आत्मा, त्याग है यह है आत्मा। सुखका, दुःखका, हर्षका, मौजका अनुभव है तो यह है आत्मा। ऐसा सोचनेमे आत्माका अनुभव नही हो सकता।

तो है क्या आत्मा ? अरे आत्मामे अनन्त शक्ति है और उस शक्तिके प्रतिसमय परिणमन चलते रहते है। अनादिसे परिणमन चला आया और अनतकाल तक परिणमन चलेगा। परिणमन तो होगा पर परिणमन या शक्तिभेदकी दृष्टिसे परिचय नही हो सकता, आत्माका अनुभव नही हो सकता। ऐसा पकडमे नही आ सकता कि जिससे स्पष्ट पहिचानमे आवे। अरे यह है आत्मा। जैसे हाथमे रखा स्वर्णका ढेला है, पहिचानमे आ जाता है कि यह है। एक ज्ञानदृष्टिसे आत्माको सोचो कि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है जो जाननका ही काम करता है वह ही आत्मा है। इतना ही नही जाननेकी जो शक्ति है, त्रैकालिक जो ज्ञानस्वभाव है वह आत्मा है। इस तरह केवल ज्ञानस्वरूपको ही लक्ष्यमे रक्खो तो ज्ञानस्वरूप ही लक्ष्यमे रहते रहते यह लक्ष्य भी छूटकर ज्ञानमात्र आत्माकी ओर अनुभव हो जाता है। यह चीज प्रयोग की है। जितने शब्द कहे गए उतने शब्दोके सुननेसे आत्माका अनुभव नही। इतना बयान करनेसे भी आत्माका अनुभव नही। इसका तो भीतरमे उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हू और जाननका जो स्वरूप है वह ही लक्ष्यमे लेवें, ज्ञाता मात्र मैं हू, ऐसा मनन करनेसे आत्माका परिचय

मिलता है, आत्माकी पकड होती है। तो यह इस नास्ति वाले दूसरे न्यायसे अलग बात नही है। मै अन्य सब पदार्थोंसे जुदा हू। इसको भी साथमे विचारना चाहिए। अरे नही, यह तो पहलेकी बात है। जब ज्ञानानुभवका अवसर आ रहा हो वहाँ विभक्तपनेकी बात सोचना विघ्न है। आनन्द तो आ रहा था। मै ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञानस्वरूप हू—ऐसा उपयोग करनेसे ज्ञानसे ही ज्ञानमे पहचानका आनन्द आनेका हो और वहाँ नास्तिका विचार करो तो वह विघ्न है। यह तो वस्तुस्वरूपके पहचाननेकी जड है।

अरे दूसरी बातसे तो निर्णय कर लो कि मै जगतमे सब पदार्थोंसे न्यारा हूं। अनुभव के मार्गमे सोचनेकी आवश्यकता नही, यह तो निर्णयकी बात थी। मै तो स्वचतुष्टयसे हू, पर-पदार्थके चतुष्टयसे नही हू। यह बात निर्णय कर लेनेके लिए थी। पर जब ज्ञानके अनुभवके आनेका टाइम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेनेकी जरूरत नही। स्याद्वाद निर्णय के लिए है। निर्णय होकर फिर हमे उसके मर्ममे ही चले जाना चाहिए। फिर स्याद्वादके विकल्पोको न लिए फिरे। मै ज्ञानपिंड हू और अन्य सब पदार्थोंसे भिन्न हू, स्वभावसे निर्विकार हू। यहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि विकार मुझमे आते तो है, परन्तु यह मेरा भाव नही बन गया। स्वभाव होता तो सदाकाल ही यहाँ रहा करता। जैसे अगुली टेढी कर दे तो टेढी तो हो गई, मगर टेढी हो जाना अगुलीका स्वभाव नही है। अग्निकी गर्मीका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया। गर्म तो हो गया, पर गर्म हो जाना पानीका स्वभाव नही है। विकार तो आ गए पर, विकारोका आना आत्मामे स्वभाव नही है। मै स्वभावसे निर्विकार हू। अपने आप सहजस्वरूप जो मेरी सत्ता है तावन्मात्र ही हू। मै कैसा सत् हू इस बात जब देखो तो मैं एक चैतन्यमात्र वस्तु हू, ज्ञानमात्र हू, मै निर्विकार हू, ऐसा अपनेको देखना चाहिए। और मै धनी हू, मै गरीब हू, मैं लडके बच्चो वाला हू, कुटुम्ब वाला हू, परिवार वाला हू, यह सब क्या है ? यह सब विकारोमे फँसना है। विकार रूप ही अपनेको माननेपर आत्मा विकाररूप नही हुआ, विकार रूप माननेसे आत्मा कही विकारमय नहीं हो गया, किन्तु अपना उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोमे आना हुआ।

मोही तथा अज्ञानी पुरुष ही अपना उपयोग अपनेको नाना विचित्र रूपोमे मान-मानकर विकाररूपमे बनाते है, परन्तु ज्ञानी पुरुष मै पुरुष नही हू, मै स्त्री नही हू, मै बालक नही हूं, मैं बालिका नहीं हू, मैं धनी नही हू, मै गरीब नही हू—इस प्रकारसे सब विचित्रभावो को मना कर अपना उपयोग यथार्थ रूपमे बनाते है। मै केवल एक चैतन्यमात्र वस्तु हू, इस मुझ चैतन्यमात्र वस्तुका अन्य वस्तुके साथ रच भी सम्बध नही है। वे सब पदार्थ है, वे अपने मे है, मैं एक पदार्थ हू, अपने आपमे हू। सब पूर्ण स्वतत्र है, आजाद है, अपने-अपने स्वत्व मे मौजूद है। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ सम्बध नही है। स्पष्ट देखो यह

वस्तुका स्वरूप है । यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्मे है, अपने स्वतत्र स्वरूपमे है, पर ऐसा न मानकर किसी दूसरेके साथ सम्बध हो, ऐसी भूठी बातें बनावें, ऐसा भूठा विश्वास बनावे, बस यही ससारके दु.खोकी जड है । धन्य है वह उपयोग, धन्य है वह ज्ञान, धन्य है वह आत्मा जो ससारके पदार्थोंको स्वयसिद्ध स्वतत्र, यथार्थ समभते रहते है । ज्ञानी गृहस्थी जहाँ पर रहते है वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समभते है, धोखा देने वाले समभते है । उन्हे यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नही है, रच भी इनसे सम्बध नही है, ये चीजें मेरी हो ही नही सकती हैं । और जो कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, बच्चो इत्यादिको ही अपना सब कुछ समभते हैं तो उनके हाथ केवल पापका कलक रहता है ।

ये तो त्रिकालमे उसके नही हो सकते है । अगर कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, बच्चोको अपना माना तो प्रोफिटमे पापका कलक आ जायगा और ससारमे रुलनेकी बात आ जायगी, अन्य वस्तु तो आ नही सकती । अरे इस ससारमे तेरा कुछ नही है । जगतके बाह्य पदार्थोंको अपना माननेमे कितना प्रोफिट है ? अपना मान लेनेसे क्या वह अपने हो गए ? वह अपने तो हुए नही । वे अपनी सत्तामे ही हैं । त्रिकालमे भी वे अपने नही हो सकते हैं । मिथ्या समभकर अनेक विकार बन गए, अनेक कपाय बन गए, ससारमे बहुत समय तक दुख रहा, रु० नेकी रजिस्ट्री करा ली । यह सब मुसीबतें आजीवन रही । अन्य वस्तुका तो कुछ अश भी मुनाफा न हुआ । जो दुनियामे कुछ चाहता है उसकी ऐसी ही हालत होती है ।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे । वह सेठ बहमी था । वह नाई बाल बना रहा था । अब सेठने जब देखा कि नाई तो बाल बना रहा है, इसमे तो मेरी जिन्दगी नाईके हाथ है । सेठ डरता है । वह सोचता है कि कही बाल बनातेमे गला न कट जाय । इस डरसे वह नाईसे कहता है कि बहुत बढिया समभकर बनाना । तुमको हम कुछ देगे । जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चवन्नी निकालकर नाईको दी । नाईने कहा कि हम चवन्नी नही लेंगे, हम तो कुछ लेंगे । सेठ जी एक अशर्फी, २ अशर्फी, १० अशर्फी देते है, पर नाई कहता है कि हम यह नही लेंगे, हम तो कुछ लेगे । सेठको कुछ भूख प्यास लगी थी । नाईसे कहा कि आरेमे जो गिलास रक्खा है वह ले आवो, दूध पी ल । हम भी पी लें और तुम भी पी लो । नाईने गिलासमे जो देखा तो उसमे कुछ काला काला था । नाईने कहा कि सेठ जी इसमे तो कुछ पडा हुआ है । सेठ बोला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ले ले । तू कुछको अडा भी था । उठाया तो क्या निकला, कोयला । जो कुछकी जिदमे पडा उसको क्या मिला, कोयला ।

इसी तरह यहाँके प्राणी कुछमे ही पडे हुए है । उनको मुनाफेमे मिला क्या है, मिथ्यात्व, भ्रम, सस्कार हो जाना, और कुछ नही मिला । मान लिया एक करोड है, पर

इस आत्मामे आता क्या है ? उसमे नए पैसेका हजारवां हिस्सा भी नही आता। सब अपने स्वरूपमे है, किन्तु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ गया, अज्ञानता बढ गई, खोटे सस्कार हो गए। यही एक मुनाफा हो गया। चीजें तो कुछ मिलती ही नही। क्योकि जगतका प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ सम्बन्ध नही है।

यह आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है। इस श्लोकमे पाँच विशेपताओसे आत्मा का स्वरूप खोला गया है। जिसमे चौथा विशेषण चल रहा है कि मै स्वतत्र हू। मै स्वतंत्र कब हो सकता हू ? जब मैं सबको स्वतत्र निरखूँ तब स्वतत्र हो सकता हू। अर्थात् मै अपने आप स्वतत्र श्रद्धामे रहू। जब हम प्रत्येक पदार्थोंको भी स्वतत्र स्वरूप देखें कि वे स्वतत्र है तो मैं भी स्वतत्र हू। मेरे घरके बच्चे तो मेरे है, वे तो मेरे आधीन है ऐसा उन्हे पराधीन माने तो खुद भी पराधीन है। अरे वे तो एक सत् है। जब वे पर पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गए। यह मेरे है, मेरे आधीन है, सोचनेसे बच्चे पराधीन नही बने, मगर तुम पराधीन बन गए। तो अपने अनुभवसे पराधीन हो गये। जो मेरा नही है उसे मैंने अपना मान लिया तो पराधीन बन गए। मै तो स्वतत्र रहू और जगतके पदार्थोंको पराधीन देखूँ। उन्हे मैं अपने आधीन देखू तो मै स्वतत्र नही बन सकूँगा। अपने स्वरूपका अनुभव न कर सकू। जिन लोगोंके मोहको लिए हुए है कि ये सारे प्राणी राम हो जाएँ। अरे तो तू भी राम नही बना। कहते है कि स्त्री सीता हो जाए और पुरुष राम न बनें क्या ? पुरुष राम नही बने और स्त्री सीता बन जाय यह कैसे हो सकता है ? सब राम बन जावो तो स्त्रियाँ भी सीता बने। तुम सब द्रव्योको स्वतत्र अर्थात् उन उनके खुदके आधीन देखो तो तुम भी स्वाधीन बन सकोगे।

यह सब मेरे आधीन रहे, ऐसी कल्पना जहाँ आई तहाँ पराधीन बन गए। यह स्त्री मेरी है, ऐसी कल्पना आनेके मायने है स्त्रीके आधीन बन जाना। यह पुत्र मेरे है, यह पदार्थ मेरे है के मायने है कि पुत्रो तथा पदार्थोंके आधीन बन जाना। मैं स्वतत्र हू। जगतके सभी पदार्थ अपनी-अपनी सत्तामे है। कोई दूसरेके आधीन नही। मै पूर्ण स्वतन्त्र हू। अब पाँचवाँ विशेपण कहते है कि मै सहज आनन्दस्वरूप हू, सहज स्वाभाविक आनद स्वरूप हू। आनद मुझमे लाया नही जाता। जैसे ज्ञानी जीवका स्वरूप है तैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है। जीवोका सर्वप्रयोजन इसी बातमे है और इसी बातमे प्रयत्न रहता है। एक तो जाननका और एक आनन्दका, यही दो प्रयोजन है इस जीवके। इन दोनो ही चीजोको प्राणी चाहता है कि जानन भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो। सो भाई ज्ञान और आनन्द यह आत्मा मे ही है। आत्मामे स्वभाव है और आत्मामे स्वरूप है, ज्ञान और आनद बाहर कहीसे नही लाना है, किन्तु जैसे हो वैसा अपनेको मान लेना बस यही ज्ञान और आनदकी प्राप्तिका उपाय

है । इस श्लोकमे पहले विशेषणमे ज्ञान है और आखिरीमे आनन्द है । मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनदसे है । ये सब मेरे ठीक बननेके लिए और आनन्दके विकासके लिए है । ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है । यदि अन्य वैभवके दर्शन करेगा तो तू अपने अमूल्य-वैभवको गवा देगा । केवल यह मै ज्ञानानदमय आत्मा हू । ऐसा ही अपनेको अनुभव करो तो अपनेमें आपने आप अपने आनदका अनुभव कर सकते हो । देखो—जैसा नही हू वैसी भी भावना करूँ तो वैसा उपयोगमे बन जाता हू, तब मैं जैसा हू तैसा अनुभव करके वैसा ही उपयोग बनाऊँ तो वैसा बन जानेमे कोई सदेह है ? क्या मैं भैंसा नही हू किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मै भैसा हू तो ऐसी यदि धुन बन जायगी तो वह अपने शरीरको भूल जायगा । यही सोचेगा कि मैं भैंसा हू । मेरा बडा पेट है । दो बडी सीगें है, एक पूँछ है, चार पैर है । ऐसा अगर एक चित्तसे वह अपनेको भैंसा समझ लेवे तो भैसा ही भैसा नजर आयगा । मैं अपने उपयोगमे भैसा ही बनूंगा और अगर दिलमे ऐसा अनुभव आ जाय कि मदिरका दरवाजा छोटा है तो रज करेगा कि मैं कैसे निकलूंगा ? मैं कैसे मदिरसे बाहर निकल पाऊगा ? हमारा शरीर इतना मोटा है, दो सीग है, एक पूँछ है, अच्छा काला काला बडा मोटा सा हू । मैं कैसे बाहर निकल पाऊंगा ? सारी बातें सोचने सोचनेमे ही अपने आप अनुभव कर डालता है जैसा कि है नही । फिर जैसा यह है, ज्ञानरस, आनदघन, आनन्द स्वरूप, ज्ञानमय, सबसे निराला, तैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थाई रूपसे ऐसा ही हो जाता है । वह भैसेकी कल्पना बनाए बैठा था तो क्या भैसा बन गया ? भैसा वह नही बन जायगा, परन्तु यह तो ज्ञानानन्दमय है और ऐसा ही मान लेवे तो स्थाई रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा । तो यह मै आत्मा सहज ज्ञानानन्दरूप हू । तो यह मैं अपने मे अपने लिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊँ ।

थोडेसे शब्दोमे यदि कहा जाय कि ससार क्या है ? सारी झझटें क्या है ? तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अन्यमे होता है इसको मानना है, इस ही को ससार कहते है । हम जो कुछ करते है उसका असर दूसरोमे होता है, उसका फल दूसरोमे होता है । इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम ही ससार है । सारी विपदाएँ हैं, ऐसी दृष्टिका ही नाम ससार है । ससार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि ससरण ससार —परिभ्रमण करनेका नाम ससार है । बाहरी दृष्टिसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमे परिभ्रमण करना ससार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपके विभावोमे आकुलित होकर फिर-फिर कर विकल्पो मे बने रहनेका नाम ससार है, परिभ्रमण है ।

यह संस्करण क्यो लग गया ? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोमे माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है । हम एक स्वतत्र पदार्थ है । जगतके ये

सभी स्वय स्वतत्र पदार्थ है। किसीका किसीसे रच भी सम्बन्ध नही है। अपने ही तो उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे रह करके अपने ही स्वभावसे ये परिणमते रहते है। अपने स्वरूपकी सीमाका उल्लघन कोई नही करता है। फिर कोई वजह ही नही कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हो जाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी कुछ भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुक मे यह परिणमन कर दूंगा। बस इसी दृष्टिके कारण ससारके सारे क्लेश लग गए। इसीको कहते है कर्तृत्व-पर्तृत्व बुद्धि अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्याल। मै दूसरोको कुछ कर देता हू, दूसरे मुझे कुछ कर देते है — इस प्रकारका जो विकल्प चलता है, खोटा अभिप्राय रहता है इस ही का नाम ससार है और इन विकल्पोसे छुट्टी लेनेका नाम ही मोक्ष है। घरमे, समाजमे, समूहमे जहाँ भी जो विवाद खडे होते है उन विवादोका मूल कारण देखो तो अहकार निकलेगा। अहंकार बिना विवाद नही होता है। घरमे, स्त्रीमे, देवर जेठानीमे, सास बहूमे अगर विवाद खडा होता है (विवाद तो दो के बीचमे होता है ना, एकसे विवाद क्या) जिमसे विवाद खडा हो। समझो इसमे भी अहकार ही है। क्यो दुखी होते ? अमुक काम नही हुआ तो न हुआ सही। वह भी पदार्थ है। यह ही परिणम गया, इसमे तुम्हारा क्या बिगड गया ?

मैंने हुक्म दिया पर उसने नही माना अथवा मै ऐसा करता था, ऐसा क्यो नही किया ? यह हो गया अहकार। यह इसके इस तरहके बर्तावसे मुझे सुख होता है यह भी हुआ अहकार। मैंने इनका इतना बडा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हू और फिर भी ये मेरे अनुकूल नही चलते। यह भी हुआ अहकार। जितने विवाद होते है वे सब अहकारसे होते है। धंधे करनेके मामले मे निरतर जैसी चिताए रहा करती है, इतना क्यों नही हुआ, इतना कैसे बचा बचा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखना है, सारे जितने राग है उनका भी मूल है अहकार। क्या उनका बिगडा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए तीन लाख रह गए। अरे इसमे क्यो तुम्हारा तत्त्व बिगड गया ? पर इन मायामयी मूर्तियोके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है, इस मायामय शरीरको जिसने सामने रक्खा है और इस मायाकी दुनियामे अपनेको कुछ बसाना चाहता है, वह अहकार ही उन व्याधियोका स्वय कारण है। जगतमे जितनी भी विपदाये हैं उन सब विपदावो की व्याधियोका कारण अहकार है। कर्तृत्व बुद्धिके होनेका कारण भी अहकार है। हम कुछ करते है फल दूसरेमे होता है। कुतत्वके माननेका नाम ही संसार है। परमार्थसे बात तो यह है कि हम जो करते है उसका फल हम ही भोगते है। हम करते क्या है ? क्या दुकान चलाना है, रोटी बनाना है, घरकी लीपा-पोती करनी है। हम विकल्प कर लेनेका ही काम करते है। अभी विकल्पके अतिरिक्त अन्य काम नही करते हैं, हम तो विकल्प करते है फिर

इसके निमित्तसे जो कुछ होता है वह अपने आप होता है ।

तुम आत्मा हो । आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है । वह इस शरीरके अदर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है । यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है । परिणाम किया कि इस शरीरमे रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है, सब प्रदेशोमे हिल जाता है, कप जाता है । जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है । कम भयका परिणाम हुआ वहा भी हिल जाता है । खुशीका परिणाम हुआ, चितनका परिणाम हुआ, इच्छा की वहाँ भी हिल जाता है । यहाँ जीव परिणाम करता है तो उस परिणामके फलमे यह जीव कप जाता है, हिल जाता है । प्रदेश परिस्पन्न होने लगता है । इसे कहते है योग । पहली बातको कहते हैं उपयोग । यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नहीं करता है । मै तो केवल उपयोग और योग करता हू । इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है । देखो यह ज्ञानकी बात है । यही अमृत है । इसको पी लोगे तो अमर बन जावोगे, अमर होगे । वह अमर तो होता ही है । समझमे आ गया कि अमर है । मै अपने स्वरूपसे हू, अपनेमे रहता हू । सदा अकेला ही रहने वाला हू । यहाँ तो यह मैं ही मैं देखता हू । मैं ही मै यहाँ हू । जरा आँखे खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमे है । व्यवहार की बात है, शरीरमे यह नही है । और व्यवहारसे है तो रहने दो । यह मै इस शरीरको छोडकर दूसरी जगहके लिए जाऊँगा तो मै तो वही का वही हुआ । यहाँसे छोडकर [illegible] जगह पहुच गया । मैं तो पूराका पूरा हू । उतनाका उतना पूराका पूरा हू । मै अमर ही तो रहा । मरा कहाँ ? मगर यह दृष्टि यह विकल्प कर डालता है कि देखो हमारा कमाया हुआ यह धन छूटा जा रहा है अथवा इज्जत बनी हुई थी अब वह छूटी जा रही है । यह जब ख्याल करता है तो दु ख हो जाते है । नही तो दुखी होनेका कुछ काम ही नही है । मै यहाँ रहू अथवा न रहू इससे उसमे क्या फर्क आयगा ? मगर बाहर जब मोहकी दृष्टि बनी होती है तब तो क्लेश उत्पन्न होते है । तो बाहर दृष्टि ही दृष्टि बनती है, पदार्थोमे फेरफार कुछ नही होता है व्यर्थ उधम मचाते है और दुखी होते हैं । ये ऊधम तथा दु ख कहाँसे आ गए ? हमारे से हम खुद कसूर करते हैं व दुखी होते है, किसीसे ठिनकनेका क्या प्रयोजन ? ऊधम किया तो दु खी होगे ? हाँ होगें । अब दूसरोसे क्या आशा रखते हो ? उनसे मेरे हितकी बात होगी । यदि ऐसे विचार कर लेते हो तो दु खी हो जाते हो । अनहोनीको होनी बनाना चाहते हैं इसका तो फल दु.ख ही है ।

एक लडका था । वह इस बातमे मचलने लगा कि मुझे तो हाथी चाहिए । उसका पिता हाथी ले आया । फिर लडका बोला—इसे खरीद दो । बापने कह सुनकर हाथीको पालें मे खडा कर दिया और कह दिया कि खरीद दिया । अब लडकेने कहा कि हाथी मेरी जेबमे रख दोजिए । अब बतावो भैया ! यह काम कौन कर देगा ? उसकी जेबमे हाथी कौन

रख देगा ? जैसे लडका मचलता है हाथीको जेबमे रखनेके लिए उसी प्रकार जीव परपदार्थो को लेनेके लिए मचलता है। अरे भैया, अनहोनी बात क्यो चाहते हो ? जो होना है होगा। उसे भगवान सब कुछ जानता है, जो कुछ वह जानता है सो होगा। वह जानते है इस लिये होगा ऐसी बात तो नही है। किन्तु जैसा हुआ था, जो हो रहा है, जो भविष्यमे होगा सबको भगवान जानता है, यह बात है और कोई बात नही। बाह्य दृष्टिमे आपदा ही आपदा है आत्मामे धोखा है, नही। यह परिचयकी जगहमे मायारूप है, परमार्थसे तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। यहा कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब जो भगवानने जाना है वह होगा, फिर पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। भैया जो आप करेगे वही प्रभुने जाना है। फिर इसकी ओरसे क्यो ऐसी उपेक्षा कर ली जाय ? हां परवस्तुवोसे क्या सिद्धि है, सो परके बारेमे सोचो यह जैसा होता है होने दो। अन्य पदार्थ तुम्हारे सोचनेसे वैसे हो नही जावेगे। तब जैसा भी हो गया होने दो, उसके भी यह जाननेसे बिगाड़ कुछ होता नही। और मोह है इसलिए दुःख होना है। जैसे कोई नाच रहा हो और नाचनेमें ऐडिया कुछ गलत उठ गयी हो, ठीक ठीक ठेकेके अनुसार एडी न चलें। नाचने की कलाको जानने वाले जो लोग बैठे हुए है वे दुखी हो जावेंगे यह गलती देखकर। वे दुखी हो जाते है, इसका कारण है कि उनको भी शौक है, उनको भी अहकार है। देखो, जाननेकी कलापर ही सब कुछ निर्भर है। जगतके सब पदार्थोसे निराला अपने आपको जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है वह जब तक अनुभवमे नही आता तब तक पर्तृत्व बुद्धि नही मिटती। अज्ञानी सदा अपने घमडमे रहता है। कोई बडा धनी था और अब जो बिलकुल गरीब हो गया हो तो वह अनेक कल्पनाएँ करेगा कि मेरे दरवाजेपर सैकडो जूते उतरते थे, मेरा सम्मान होता था, ऐसा कहकर अपना बडप्पन जताता है। चाहे अर्थ ऐसा निकले कि पापका उदय आ गया सो देखो सब खतम हो गया। यद्यपि उसके सुनानेमे इज्जत नही है बेइज्जती है तो भी उनकी कर्तृत्व बुद्धिका नशा है सो कहता है। वर्तमानकी बातका भी मोही अहकार करता व भविष्यका भी। वह यो बन जायगा, वह ऐसा हो जायगा, यो इज्जत वाली बात मे घमड किया। इस कर्तृत्व बुद्धिमे अपने हित का मार्ग नही सूझता। तो इन ससार भावोको छोडकर हमे मोक्षमार्गमे आना चाहिए। मैं जो करता हू वह तो उपयोग और योगको ही करता हू। इसके अतिरिक्त मेरा कहीं करनेका कुछ काम नहीं है। इतना कर लेनेके बाद शरीरमे जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है। तब आत्माके भावोके अनुसार चक्कर काटना शुरु हो जाता। यो उपयोगके अनुसार योग व योग के अनुसार वायु चलती है। जब आत्माके प्रदेशमे खलबलाहट होने लगी तो यहाँ एक क्षेत्रमे रहने वाले इस शरीरके स्कन्धोमे भी वायुकी खलबलाहट होने लगी। जहाँ इस शरीरमे वायु चली तो शरीरके अग भी चल उठे। जैसा उपयोग किया था उसही के अनुसार योग हुआ,

वायु चली, उसके अङ्ग चले और उन चलते हुए अगोंके बीचमे कोई रोटी जो आए उसके भी परिणमन हुए। उसको देखकर लोग कहते है कि इसने रोटी बनायी, दुकान चलाई, वस्तुवें खरीदी, इत्यादि नाना बातें लोग कहने लगते है। परमार्थसे अन्य कुछ नही किया। जीवने तो केवल उपयोग और योग ही किया है। उपयोग योग होनेके अतिरिक्त इस जीवके करतूत कुछ नही है। लोकमे कहावत ही कही गयी है कि घी, शक्कर मीठा या बहूके हाथ घी शक्कर होनेके कारण पकवान मीठा है। हाथ निमित्त है। इनमे मीठा क्या है बहूके हाथ मीठे है क्या, नही। शक्कर मीठी थी। तो पक्वान बहूने बनाया या शक्करने बनाया। रोटी को आटेने बनाया या बहूने बनाया। आटेने रोटीको बनाया। आटेमे रोटी बनाया। देखो हाथमे हाथ चला और रोटीमे रोटी बनी। व्यर्थका ही अहङ्कार होता है कि रोटी मैंने बनाया है। रोटीका उपादान तो वह आटा ही है, हाथ तो निमित्तमात्र है।

निमित्त वह कहलाते हैं जो अलग रहा करते हैं। हाथ रोटीसे अब भी अलग है। लोकमे जो भी काम होता है उन सब कामोसे हाथ अलग है। निमित्त अलगको ही कहते है। जो भिन्न चीजें है सारी अलग है। तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नही है तो कार्य नही होता है। आज भाई आटा नही बचा। अरे नही बचा तो नही सही। कैसे बनेगा ? धूल धर दो। क्या रोटी बन जायगी। नही, क्यो ? अरे उपादान तो है ही नही। कार्य जितने होते है वे उस ही वस्तुमे होते हैं जहाँ कि वह कार्य है। मैं जो कुछ परिणाम करता हू, कार्य करता हू मेरा असर मुझमे ही है। मेरेसे बाहर मेरा असर नही है। मोह करके दु खी हो गया, बरबाद हो गया। दु खी हुआ तो दुनियाके अन्य किसी वजहसे कुछ नही हुआ। मोह हुआ, उस ही से दु ख हुआ। मोहकी गदगी जो दुनियामे है हमारी ही है। बाहर कोई गन्दगी नही है। इस गदगीका कारण यह अपना मोह ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हमे निगोद जैसी खोटी योनियोमे पहुचने वाला बना दिया। बतलाओ इसमे कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और सतोषके लायक है। जैसे कहावत है कि घर घरमे मिट्टीके चूल्हे, घर-घरमें क्लेश हैं। घट-घटमे विपदाएँ है। कही चले जावो। कचहरीमे जो जज बैठता है कुर्सीपर और हुकूमत करता है, अनेक लोग आकर सलाम कर रहे है और बाबू बने हुए बैठे हैं। देखने वाले लोग सोचते है कि जज साहब सुखी हैं। अरे वह सुखी नही है। वह अहकारसे भरे हुए बैठे हुए है, निरन्तर दु खी होते हैं, चिताओसे युक्त हुआ करते है तो बतलाओ कि वह मजेमे कैसे होगे ? ऊपरी शानसे सुखी हैं, पर भीतरी मनसे वह दु खी है। जैसे ऊपरसे चांदीका घडा दीखता है और अदर विष्ठा भरा रहता है। तो वह कैसा है ? इसी तरह ससारके प्राणी ऊपरसे चिकने-चुपडे लगते हैं व भीतर अज्ञान व अशाति भरी है। कहो हैं न वैसे ही लखनऊ जैसी नजाकत है।

यही बात है कि देखने मात्रमे वे सुखी है, पर भीतरसे वे विकल्प भरे हुए हैं, मोह भरे हुए है और दुखी हो रहे है। भीतरमे राग, द्वेष, मोह इत्यादि भरे हुए है। विषसे भरे हुए घडेकी तरह हीन परिस्थिति है। कौनसी ऐसी स्थिति है जिसमे अहकार किया जाय, संतोष किया जाय, सतोष किया जाय ? जैसे रास्ता भूलकर कोई पुरुष कुछ आगे बढ़कर चला गया है तो भूल मालूम होनेपर सामनेके बडे बगीचो, वन-उपवनोसे अपना मुख मोड लेता है, उन्हे मुडकर भी नही देखता है। इसी प्रकार खोटे मार्गमे भ्रमकी बातोमे पडकर बहुत दूर तक चला-फिरा, भटका हुआ प्राणी जब यह समझ जाता है कि यह सब विषय कषाय है, भूलका मार्ग है। निज सहजस्वभावकी दृष्टि छोडकर परपदार्थोंको अपना मानना यह सारी भूल है। हम मार्गको भूल गए है। यह तो आधियो-व्याधियोका मार्ग है। जव ऐसा सही ज्ञान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अपना मुख मोड लेता है। अपने धन वैभवका लिहाज नही करता है, अपने लडकोपर निगाह नही डालता है। यदि अपनेको व्याधियोसे रहित मार्गमे लाना है तो सुमार्गकी ओर देखो। अपनी चेष्टाओका फल दूसरोमे होता हो, ऐसा दृष्टि पाप फैलाए है, यही खोटा मार्ग है, यही ससार है। यह विपरीतका मार्ग है। इसमे चलनेसे इसमे ही भटकते रहोगे।

जब समझ आती है तब ज्ञान इससे मुड जाता है। मेरी शक्तियोका परिणाम मुझमे ही होता है। मेरा मित्र मैं ही हू, मेरी विपदाएँ मैं ही हू। यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। इसको ही अपने आपके लक्ष्यमे लो। इस शरीरकी समस्त आकुलताएँ समाप्त हो जावेंगी। अपनी चेष्टाओका फल दूसरोमे मानना सोई कुबुद्धि है, ससार है। अगर कुछ असयममे भी पडा रहना पडता हो, फिर भी प्रतीति तो पूर्ण सही रखनी चाहिए। अपनेको ऐसा ही प्रतीत करना चाहिए कि मैं सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप ही, आनन्दमय भावात्मक एक विलक्षण चैतन्य पदार्थ हू जिसका यहाँ कुछ नही है, इसमे जो कुछ हरकत होती है, चेष्टा होती है वह इस स्वरूपकी होती है। और जो असर बनता है वह इसके ही बननेकी चेष्टा हो रही है। जो होता है इसके ही प्रयोजनके लिए होता है, इसमे ही होता रहता है, इसके लिए ही होता है। जैसे सर्प कुडली बना लेता है, अपने लिए ही अपनेको घेर लेता है। इसी तरह इस जीव ने जो कुछ उपयोग और योग किया वह सब अपने लिए ही अपनेमे किया। इसका इससे बाहर कुछ वास्ता नही है। अन्दर दृष्टि होनेका नाम मोक्षका मार्ग है, और बाहरमे दृष्टि फैलानेका नाम ससार है, ससारका मार्ग है। देखिए भावनासे ही यह संसार मिल जाता है और भावनासे ही मोक्षका मार्ग मिल जाता है। अब बुद्धिमानी यह होनी चाहिए कि हम किसे प्राप्त कर लें ? केवल भावनासे ही मिल रहे है सब कुछ। रातको एक भाईने यह प्रश्न किया था कि हम जैसे चीजोका सौदा करते है। सौदा तो करते है और चीज खरीदते

नही। केवल भावना ही कर लेते है। इसमे नफा-नुक्सान कुछ होता नही।

इसी तरह केवल भावना कर लें, पर हम किसीको मारें नही, किसीको सताएँ नही। बाहरसे कुछ करना नही है। केवल भावना कर लेते हैं। तो उसमे नुक्सान क्यो होता? बडे गजबकी बात यह हो गयी। नुक्सान तो सौदा लेनेपर होता है कि भाव करनेपर। लेकिन यह भाव कर्मका बध करा देता। रोजगारमे भावना करनेसे नफा-नुक्सान नही होता। नफा-नुक्सान तो सौदा खरीद ही करनेसे होता है। सो भैया! प्रथम तो यह बात है कि तू तो केवल भावनाओको बना सकता है, काम कुछ कर सकता नही है। भीतरसे विषय कषायके परिणाम भरे हुए है उनसे कर्मबध होता हिंसा, झूठ आदिके कारण कर्म नही बँधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव ही यह पाता है और भावसे ही नफा-नुक्सान होता है। भाव के कारण कर्मबधन है। हाँ यह बात जरूर है कि भाव बुरे है तो कार्य भी बुरा किया जाता है। इसीसे कहो कि हिंसा, झूठ इत्यादि भावनाओके कारण कर्मबधन है। यह रोजिगार विलक्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओंसे हटकर सही रूपमे कार्य करने लगे तो नफा हो जाय, भाव खोटे नही तो बाह्य परिणतिसे पापबध नही।

ऐसे अनेक उदाहरण मालूम होगे। सुदर्शन सेठ थे। रानीने सेठको बुला लिया। महलमे सब चेष्टायें कर ली, परन्तु सुदर्शन विरक्त ही थे। राजाने गुस्सेमे आकर शूलीका आदेश दिया। परन्तु सुदर्शन सेठका परिणाम बुरा रच भी न था। उनका विचार था व रानीसे कहा था कि माँ, मैं तो नपुसक हू। उसका परिणाम निर्मल था, उसके कारण उसके कर्मबन्धन नही हुए। तथा परवस्तुवोके कारण मोक्षमार्गमे बाधा नही आई। और ये दुनिया विचित्र गुडे लोग परिणाम बिगाडते है, पर कही वश थोडे ही चलता है, फिर भी कर्मबधन हो रहे हैं। जैनसिद्धान्त तो यह कहता है कि कार्यसे कर्मबन्ध नही, कर्मबन्धमे भावनाका कारण है। हाँ यह बात और है कि भावनाओके बिना कार्य हो नही सकता। यदि साधु ईर्यासमितिसे जाते है और अचानक मार्गमे कोई कुन्थु प्राणी मर जाता है, प्राणिघात होते हुए भी कर्मबन्धन नही हुआ। उन्हे जीवहिंसाका पाप नही हुआ। कोई बिना देखे चल रहा है और उसके शरीरसे किसी प्राणीका घात भी न हो तो भी कर्म बँधेगे। कर्मबन्धनका रोजगार भाव से चलता है, चीजके लेन-देनसे नही। सबसे बुरा भाव बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टाका फल दूसरेमे देखना यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशयको त्यागकर मैं निज सहज चैतन्यस्वभावमात्र देखूं और अपनेमे अपने आप सहज विश्राम पाऊँ।

मैं अपने आप किन तत्त्वोसे बना हुआ हू, किन तत्त्वो रूप हू? इसपर विचार करनेसे जब आत्मामे देखते है तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञानसे ही रचा हुआ है, ज्ञान ही इसका सर्वस्व है। ज्ञानके मायने जानना। जानना आत्माके आधीनताकी

बात है । परपदार्थोंके आधीनताकी बात नही । जाननेमे परपदार्थ आते है, पर जानना आत्मा की चीज है, आत्मामे उठता है, जानना आत्माके स्वभावकी कला है । इस कारण जाननेकी सीमा नही होती है कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान, ऐसा जाननेमे कोई सीमा नही है । स्वभावमे ऐसा ही जाननेका स्वरूप है । जिसे कहते है अनन्त ज्ञान । यदि ज्ञान कम जाने इतना जान लेनेका कोई कारण होता है । इतनी बात बतलाइए कि १० कोशका जान लेनेका काम है और ग्यारहवें कोसके जाननेका आत्माका काम नही है । क्यो ? अरे इसमे तो जाननेका ही मात्र स्वभाव है । सीमा बनावेगा तो स्वभाव मिट जावेगा । जो है सो जाननेका स्वभाव है, जाननेका विषय सत् है, वह सब जाननेका स्वभाव है । आगे पूछने की गुजाइश नही । क्यो ऐसा नही है । इसने हजार कोश तकका जाना, पर हजार कोशमे आगे न जाना । पूछा जा सकता है कि वह हजार कोश तक सबको जानता है इसके आगे वह किसीको नही जानता । इसका क्या कारण है ? यह कितना जानता है ? अरे यह सबको जानता है, विश्वके समस्त द्रव्य गुण पर्यायोको जानता है । क्यो जानता है ? जाननेका क्या कारण है ? अरे पूछनेकी बात नही । अनहोनीके होनीका कारण पूछा जाता है । कुछ उल्टा बन गया है उसके ही कारण पूछा जाता है । जो स्वभावसे होने वाला है उसका कारण क्या पूजा जाय ?

मेरा स्वभाव जाननेका है । जानन ही आत्मा है । जैसे वर्णन किया जाता है ना, कि आत्मामे अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्व प्रमेयत्व तथा असाधारण गुणोमे श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है । यदि इन सब गुणोमे से केवल एक गुण ज्ञानका न हो, ज्ञानको न मानो, ज्ञानको बाहर निकाल दो और कहे कि सब खुशीसे रहो, अस्तित्वसे रहो, तो न रह सकेगा एक ज्ञानभरको न रहने दो, निकाल दो, नही है, ऐसा मान लो अपनी कल्पनाएँ करलो तो अस्तित्व न रख सकोगे, श्रद्धा और चारित्र न रख सकोगे । देखो केवलज्ञानके न रहनेसे कितनी विपदाए आ गयी ? ज्ञान ही जिसका एक स्वभाव है यह मैं आत्मा हू । सारे गुणोका अतर्भाव ज्ञानमे तो किया जा सकता है, पर ज्ञानका अन्तर्भाव किसी अन्य गुणमे नही किया जा सकता है । आध्यात्मिक शास्त्रमे तो सब कुछ यह ज्ञान ही है, श्रद्धा है, ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है, जीवादिके श्रद्धानके स्वभावसे ज्ञानका होना याने श्रद्धानके स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है और जीवादि तत्त्वके जाननेके स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्ज्ञान है । और रागादिका परिहार करनेके स्वभावसे ज्ञानका होना सो सम्यक्चारित्र है । मैं ज्ञानमय वस्तु हू, ज्ञान ही जिसका सर्वस्व है ऐसा यह ज्ञानमय हू । मैं तो अनन्त ज्ञानादि गुणोका पिंड है, फिर भी तृष्णाके वशीभूत होकर अपनेमें कैसे-कैसे बखेड़े पैदा कर डाले ? हीन, दरिद्र, दुखी अपनेको कर डाला ।

जिसकी वजहसे जगह-जगह भटकता रहा। सर्वत्र कल्पनाओका ही तो नाच है। दुःख है, कठिनाई है, इस तरहकी कल्पना जो कर डाला तो दुःख है। दुःख मिटाना है तो यह कल्पनाएँ बदल दीजिए। वस्तुस्वरूपके अनुकूल कल्पनाएँ कर ली जाएँ तो दुःख मिट जायगा। वस्तुस्वरूपके विपरीत ही कल्पना की तो दुःख हो गए। असारको सार समझकर जहाँ कल्पनाएँ की तहाँ दुःख हो गया और जहाँ इन कल्पनाओको बदल दिया जाय तो दुःख मिट जायगा। यह दुःख और सुख कैसे कल्पनाकी हवामे चल रहे है? कल्पना कर ली दुःख हो गया। सही बात सोच लिया, लो आनन्द हो गया। यह जीव अनन्तज्ञान, अनतदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखोका पिंड है। लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दुखी रहेगा। जैसे ज्ञानकी सीमा नही है इसी तरह अनन्त ज्ञानसे अनन्त जानने वाले आत्माके दर्शन भी अनन्त हैं। आनन्द अनन्त है। आनन्दका अत तो उसका होता है जो आनन्द झूठा हो, पराधीन हो, कल्पनामात्रसे हुआ हो। जिसकी मूल जड कुछ नही है। केवल सकल्पका ही फल है। ऐसे सुखका तो अन्त आया करता है पर जो आनन्द आत्मासे उत्पन्न हो, आत्माके आधीन हो ऐसे सुखका अत नही आया करता है और उस आनन्दकी सीमा भी नही रहती है। जैसे गुडसे शक्करमे रस ज्यादा होता है। उससे मिश्रीमे रस ज्यादा है तो उस रसकी सीमा बन जाती है। इस तरह आत्मीय आनन्दमे तो भेद नही सो आत्मीय आनन्दरसकी सीमा नही हो सकती है।

आत्मीय आनन्द कितना आया? देख लो कितना आत्मीय आनन्द है? ऋषभेद व और महावीर स्वामीके आनन्दमे अतर है। क्या राम जी और हनुमानजीके आनन्दकी सीमा है क्या, नही है और जब यह ज्ञानी जीव भी आत्मीय आनन्दका अनुभव करता है तो उसके उस आनन्दकी भी सीमा नही है। सीमा कहाँ बताई जाय? जिसकी कमी हो वहाँ सीमा है। इसी प्रकार समस्त विकासको बनाए रहनेकी ताकत ही अनन्तवीर्य है। मैं अनंतानत, ज्ञानानन्दका पिंड हू। ऐसा होते हुए भी यह भगवान आत्मा केवल कल्पनाओके भुलावेमे पडकर, असार बाधाके बन्धनमे आकर दीनवत ससारमे भ्रमण करता है। जैसे लोग कहते हैं कि हम अपने घरके बादशाह है और दूसरे लोग चाहे जो कुछ हो। अरे अपने घरका भी सही पता लग जाये कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है जो ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र है। इस मेरेका किसीसे कुछ सम्बन्ध नही है। इसे कोई पहचानता नही है, इससे कोई बोल-चाल होती ही नही है। मैंने कभी किसीको कुछ किया ही नही। कोई मुझसे अब तक बोला-चाला ही नही। मैं सबसे निराला, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र हू। इस जगतके प्राणियोको यदि निजी घरका पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घरका सर्वस्व हो जावे। सारा जहान चाहे जैसा उनको माने उनसे कुछ अहित नही हो सकता है। सारा जहान अनीति कर यदि उनके विप-

रीत चले तो भी उनका कुछ अहित नही हो सकता है। अपना हित और अहित कल्पनाओसे सकल्पसे होता है। लोग कहते है कि ईश्वरने सकल्प किया कि सारा ससार बन गया। ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है। मगर कुछ नही करना पडता, हाथ-पैर नही चलाने पडते। वह तो सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दमय एक अद्भुत शक्ति है। उस ईश्वरने सकल्प किया कि ससार बन गया। जैसे कि लोग कहते है। अब इस ईश्वरके मर्मको विचारकर अपने आपका बोध कर। तू अपनेको ऐसा निरख कि मै ज्ञानमय आत्मा हू। जिस आत्मामे हाथ-पैर नही है, केवलज्ञानका पिंड है ऐसा मै आत्मा हू। ज्ञानमे क्या जानना है ? उस ज्ञानका जानना। अरे जो है सो जान लो, वस्तुवोको जान लो। ज्ञान इस आत्माका प्रधान धर्म है। इस दृष्टिसे देखो तो इस आत्मामे ज्ञान लोकालोक व्यापक है। यह आत्मा सकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है। और ऐसे ही सभी आत्मा है। तो उन आत्माओके स्वरूपमे दृष्टि देकर विचार करो। यह ज्ञानमय स्वरूप अपने संकल्प मात्रसे सारे ससारको रचता रहता है। सकल्प ही तो करता है कर्मके बन्धन होते हैं। कैसे इसने सकल्प किया कि बन्धन हो गए। पुण्यका बधन होता है। कैसे सकल्प तूने किए कि पुण्य नही हो पाया। पुण्यका बन्धन होता है कैसे ? सम्वर निर्जरा होगी है कैसे ? अपने निर्विकल्प यथार्थस्वरूपके सकल्पमे लो। संकल्प मात्रसे अपनी सृष्टिकी रचना करते हैं। हम तो अनन्त ज्ञानके पिंड है, मगर मोहसे, तृष्णासे रहते हैं, इसलिए इस असार ससारमे घूम रहे है। यो दश लक्षण प्रति वर्ष आते है। ये हमे ख्याल कराते है।

हे आत्मन् ! तेरा क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य सयम तप त्याग आकिंचन्य व ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र विकास रूप रहनेका स्वभाव है। ऐसे ही स्वभावमे रहे तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इस स्वभावको छोडकर अन्य बातोमे लगे तो ससारमे भटकना ही बना रहेगा। आज इस वर्षके दशलक्षणका प्रथम दिन है, क्षमाका दिन है। क्षमा करो, माफ करो। अरे अपने प्रभुको क्षमा करो। जानने वालेको ही माफ कर। अपने आपको मैंने कितना सजाया है ? कितना गुस्सा किया अपने आपपर ? यह अनतानुबधी कषाय अपने की जा रही है अपने आपपर। अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ उन्हे कहते है जो सम्यक्त्व नही होने देते। क्यो भैया, एक ऐसा मनुष्य है जिसके घरमे स्त्री व पुत्र दो प्राणी है। कमाते है, पैसा आता है, किरायेका आता है, कमाना भी नही पडता है। किसीसे गुस्सा होनेका कोई काम ही नही है। वह तो पडा रहता है। तो उसमे सदैव क्षमा बनी रहती होगी। अरे इसमे क्षमा नही बनी रहती है। अपने प्रभुकी प्रभुताको भूल रहा है और अपनेपर निर्दयी होकर, बेदर्द होकर अपनी प्रभु आत्मासे विमुख हो रहा है। अपने प्रभुकी प्रभुताका बिगाड कर रहे हो। यह कितना बडा भारी क्रोध है ?

हे आत्मन् ! तू अब अपने आपको मत सता। तू तो ज्ञानमय ईश्वर-सम परमपवित्र है, तू समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। विवादोसे तू अत्यन्त परे है, तेरेमे झझटोका नाम नही है। ऐसे अपने महान् ऐश्वर्यको तो देखो। उसकी रक्षा तो करो। अपने आपपर दया करो, अपने आपको माफ करो, अपने आपमे क्षमा आ गयी तो उत्तम क्षमा बनेगी। मैं दूसरे जीवोके कसूरोको बिल्कुल माफ कर देता हू। ऐसी दृष्टि अगर अपनेमे हो, ऐसा विश्वास अगर अपनेमे हो तो वह तो मिथ्यात्व है। जैसे लोग कहते है कि मैंने क्षमा कर दिया। अरे वह क्षमा नही है। उत्तम क्षमा हो तो अपनेको क्षमाकी मूर्ति रूप बना देती है। अपने आपको दयामे सबकी दया आ जायगी। जो अपने आपको सहजस्वरूपके दर्शनमे लगानेके लिए लालायित है उसके लिए दूसरोके अपराधोके करनेमे क्या लगेगा या दूसरेके अपराधोको दिलमे रखेगा क्या ? दूसरोकी क्षमा सहज बन जायगी। विषय कषायोंके परिणाममे क्यो अधिक लगे हुए हो, धन कमाते हो। तो अरे धन किसके लिए कमाते हो अथवा न्यायकी सीमासे बढकर किसलिए इतना श्रम करते हो ? अरे जिसके लिए श्रम कर रहे हो वह तुम्हारा कोई नही है, कुछ नही है। और है तो तुम्हारी अक्ल ठीक करनेके लिए है। अर्थात् विपदाओंमे गिरानेके लिए वह एक निमित्त कारण है। वह तुम्हारे कोई नही है। अपनेको सभालो। जैसी दृष्टि अपने आपको क्षमा कर देनेकी है वैसी दृष्टि परको क्षमा कर देनेकी बनाओ। अभी १००-२०० वर्ष पहले प० दौलतराम जी, भैया भगवतीदास जी आदि थे। जिनमे यह निर्णय रहता था कि एक रुपया कमाया वही बहुत है। आज एक रु० से १० रुपया कमा लेनेका ही भाव रखे सो भी गनीमत है। एक रुपयामे एक आना मुनाफा या एक पगडीमे एक आना मुनाफा। यदि १६ रु० का माल बेचा तो १६ आनेका मुनाफा हो गया। बस इतना होते ही तुरत दूकान बद कर देते थे और मन्दिर जी मे आकर धर्मध्यान करते थे, स्वाध्याय व चर्चामे समय व्यतीत करते थे। वे लोग थे ज्ञानी पुरुष, उनका ध्येय दूसरा था।

आत्माके दर्शन कर लें और उसी आत्मीय आनदके रसका पान कर लें तो यही आत्मानुभव पार कर देने वाला है। और सब असार काम है। ऐसी धुन लगनेके कारण दूकानसे होते हुए मुनाफेको छोडकर चले आए और मदिरमे बैठकर विचारोमे लग गए। मदिरमे धर्मकी चर्चा होती है उसको सुना। धर्मकी चर्चा सुननेसे स्वाध्याय तो हुआ। इतना तो संतोष कर रहे हैं कि रागकी आगमे जल नही रहे है। वीतराग मदिरमे बैठे हुए है। प्रभुकी वाणी तो सुन रहे है। ऐसे सुन्दर चरित्रसे रहे तो जगतके सारे पाप दूर हो जावेंगे। मोहसे तो दूर हो रहे है। क्योकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह इस ससारमे कुछ नही रहेगा। जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिसने परिणाम किया उसके

अनुसार ही जो कुछ भोगना होगा, भोगेगा। क्षमा कर अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुवो के बारेमे, अन्य जीवोके बारेमे राग, द्वेष, मोह, हठ इत्यादि न बनावें। राग होता है उसमे भी पछतावा होता है। द्वेष होते है तो अपने आपको दुखी कर लेते है। सो भाई अपने आप पर दया करो, अपनेको क्षमा करो। अपने आपकी ही तरह जगतके सब जीव है, अतः सब जीवोपर क्षमा करो। क्रोध सब गुणोको जला देता है। क्रोधको अग्निकी उपमा दी जाती है। सो यह बडा भारी क्रोध किया जा रहा है कि हम अपनेको सताये चले जा रहे है। दूसरोके प्रति नाना प्रकारके राग, द्वेप, करते हो तो यह बुरा ही तो करते है। यह परमे राग-द्वेष क्या है ? अपने आपको सताना है। अतः अपने आपको सताते चले जा रहे हो। सो भाई बढते हो तो बढते जाओ। करोडपति हो तो अरबपति हो जाओ, मेरा कोई नुक्सान नही है। यदि मेरेमे ईर्ष्याका भाव आ जाय तो इसमे अपनी हानि है। करोडपति अरबपति होना तो मामूली बात है, वह मोक्ष चाहे तो जाने दो, जावो, बडा जल्दी जावो। उससे मेरी कोई हानि है क्या ? अरे जावो परमात्मा हो जावो या जावो अपने आपमे रमो। दूसरोको बडा बना देनेमे, दूसरोके बडा हो जानेसे यहाँ कुछ कमी नही हो जायगी। सबके प्रति कल्याणका भाव हो, अपने आपके स्वरूपका परिचय हो क्षमा तभी पैदा होता है।

सबने अपने-अपने यहाँ क्षमा की महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल मे कोई तमाचा मारे तो कहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचेके लिये हाजिर है। यह ईसाई लोगोके यहाँ कहा है। अरे तमाचा तो केवल मन बहलाने के लिए लगाया है तो लो और बहला लो। किसीने किसी प्रकार कहा, मतलब क्षमाको धर्म सबने कहा। हे आत्मन् ! निज नाथको पहिचाने बिना अधेरा है। तूने अपने यथार्थस्वरूपका अनुभव नही किया इसलिए तेरेमे क्षमाका अनुभव नही हुआ। यदि तेरेमे क्षमा नही है तो समझो तूने धर्म नही किया। इस वर्ष भी ये भादोमे दशलक्षण आए और भादो सुदी पचमीसे आए ऐसा क्यो हुआ ? एक एक कल्पकालमे प्रलय काल हुआ करता है तो इस कल्पमे भी प्रलय हो चुका था। प्रलयमे वर्षके अतिम ४९ दिन खोटे होते है। बहुत वर्षा तूफान इत्यादि चला करते है। सारे विश्वमे नही चलते। भरत व ऐरावतके आर्यखडमे प्रलयकालके वे दिन आसाढ सुदी पूर्णिमा तक खतम हो जाते है। फिर ४९ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम वृष्टि होती है। अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शाति छा जाती है। वह ४९ दिन खत्म हो जाते है भादो सुदी चौथको। इसके बादमे आपके धर्मकी वृत्ति सिर्फ होती है। जो कुछ होना था इन्ही ४९ दिनोमे हो गया। अब धर्मवृद्धि होती है वह तिथि भादो सुदी पचमीको पडती है। ये दशलक्षण पर्व प्रतिवर्ष हमे धर्ममार्गका स्मरण कराने आते है। हमको चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार हम क्षमादि धर्मोको अपनेमे उतारें। सबमे ...

चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा करलो तो समझो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनन्तज्ञानमय होकर भी, स्वभावदृष्टिसे दूर रहकर इस ससारमे घूमकर अनन्त दु.ख उठाए। अब मैं अपने स्वरूपको देखकर अहंकारसे दूर रहकर अपनेमे अपने आप आनन्दमग्न होऊँ।

समाधिशतकमे भी लिखा है कि जाति और धर्म वेषभूषा या पहनावाका जिनके आग्रह है उनको मोक्ष प्राप्त नही होता। मै किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नही हू, मैं आत्मा चैतन्य जातिका हू ऐसा जानू। कोई भी आग्रह हो, चाहे जानूं कि मैं ब्राह्मण हू, मैं क्षत्रिय हू, वैश्य हू, शूद्र हू अथवा किसी प्रकारका विकल्प भरे हुए हू तो उस आग्रहके कारण मोक्ष नही होता है। हालाँकि यह बात ठीक है कि तमाम जातियोमे यह कोई श्रेष्ठ जाति है। और श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्ष पात्र है। यदि सस्कार निम्न जातियोंके हुए तो मोक्ष नही है। तो भी अपने आपमे किसी भी पर्यायका आग्रह हो तो मोक्ष नही होता। मैं पुरुष हू अथवा स्त्री हू तो कोई भी विकल्प मेरे मोक्ष नही होंगे। मोक्षकी बात दूर रही। मेरा विश्वास है कि उसे सम्यक्त्व नही होगा। मेरा मेरे सहजस्वरूपके सिवाय अन्य कुछ नही है। अगर विश्वास नही है तो सम्यक्त्व नही है। मैं तो एक चैतन्यवस्तु हू। मैं तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हू। वह ज्ञानी नही है जो अपनेको सबसे निराला तथा अछूता न निरखे। अपने आपकी सहज चैतन्यस्वभावके रूपमे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है। यह बात कहो कि हँसी-हँसीमे ही शाति मिल जाय तो नही मिलती। हँसी हँसीसे ही यदि यह चाहो कि मोक्ष का मार्ग मिले तो नही मिल सकता है। मेरे लिए तो आध्यात्मिक तपस्या की जरूरत है। तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मै पुरुष नही हू, स्त्री नही हू, अपनेको पुरुष स्त्री मनाने वाली भावनाओका तिरस्कार कर दो। और ऐसी भावना बनाओ कि मैं मनुष्य नही हू, मैं सदा आनन्दघन स्वरूप चेतन वस्तु हू, मेरी भावात्मक ज्योति बढे यही काम है। देखो इगलिशमे 'आई' शब्द है जिसका 'मैं' अर्थ होता है। वह आई शब्द न पुरुषलिङ्ग है, न स्त्री-लिङ्ग है। इसी तरह सस्कृतमे अह शब्द है जो कि अस्मदसे बना है वह शब्द भी न स्त्रीलिङ्ग है और न पुरुषलिंग है। तब सोचो 'मैं' शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनोसे परे है तो वाच्य जो यह मैं चेतन वस्तु हू, सो वह मैं भी न स्त्री हू, न पुरुष हू। मैं तो चेतनात्मक जगमग स्वरूप प्रकाशमान चकचकायमान एक वस्तु हू। हे आत्मन! तेरेमे तो कोई विकार नही पर तेरेमे ये जो विकार हो गए, विकल्प हो गए, विषय कषाय हो गए, वह तूने भ्रमवश ही झलका लिये। तू धनके ही पीछे पडा रहा, अपने परिवारके ही पीछे पडा रहा। अरे तेरा ये धन नही, तेरा यह परिवार नही। विकल्प तो तूने स्वयं ही इस जगतमे बना लिए है। अरे यदि तू नुक्सान मान लेता है तो नुक्सान है और यदि नही मानता है तो कोई नुक्सान नही। चाहे हजारका नुक्सान है, चाहे लाखका, चाहे करोडका। उसे तू नुक्सान न मान ले तो सब

परद्रव्य हैं, उनसे तेरा क्या सम्बन्ध ? हे जगतके प्राणी ! तू विकल्प छोड दे तो तुझे शाति हो जायगी ।

घरमे यदि कोई बीमार हो जाय तो जिसके बचनेमे संदेह हो तो उसके परिवारका इष्ट पुरुष कितना विह्वल रहता है । वैद्य आता तो उससे पूछता है कि सच तो बता दो यह बचेगा कि नही । यदि बीमार मर जावे तो दुःख वियोगका तो जरूर है, किन्तु अनिर्णयका अधेरा नही है । इससे पूर्ववत् भीतरी अज्ञानकी आकुलता नही है । पहिले क्लेश डबल था । अब केवल वियोगका क्लेश है । यदि कोई बीमार पुरुपके बारेमे उससे यह कह जावे कि बचने की कोई आशा नही है । हाँ हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जावे । ऐसा कहनेसे उस इष्टका दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदयमे अशाति फैल जाती थी अब मर जानेपर भी अनिर्णयकी आकुलता तो नही है । अज्ञानमे होने वाली आकुलता बडी आकुलता है । मैं पुरुष हू, मैं स्त्री हू—इस प्रकारके विकल्पसे सही ज्ञान नही मिल सकता है । ऐसी अवस्थामे वह कितने ही धर्मके नामपर काम कर डाले, तपस्या कर डाली, उपवास कर डाले पर अहकार भरे हुए हैं कि मै शुद्ध हू, मै तपस्याका काम करता हू, मुझे मोक्ष जाना है । तो विकल्पोसे तो काम नही हो जाता । जिसका कोई आग्रह नही होगा वह हा निर्वाणका पात्र है । मुझे अपने आपमे विश्वास करना चाहिए कि मैं सब जीवोकी भाँति चैतन्यस्वरूप लिए हुए हू । इसका नाम नही, आकार नही, रूप नही, रस नही, मै तो केवल भावात्मक चीज हू, ज्ञानानन्दघन मैं हू । यदि ऐसी ही बात होवे तो मैं निर्वाणका पात्र हू, सम्यक्त्वका पात्र हू । सम्यक्त्व मेरेसे कही बाहर नही है ।

जैसे नदी या सागरके तटपर पहुचनेपर फिर नदी या सागर दूर बाहर नही है । वैसे ही सम्यक्त्व ही मोक्षका एक तट है । उस तटपर पहुचनेपर मोक्ष दूर नही । हाँ कोई विरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्यामे खिसक जाय । ऐसी अवस्थामे निर्वाण कुछ दूर तो रह जाता है, पर अधिक दूर नही रह जाता है । और अगर अधिक दूर नही रह जाता है तो मोक्षका मार्ग भी ज्यादासे ज्यादा निकट समझिये । यदि सम्यक्त्व बना रहे तो मोक्षमार्ग अत्यन्त निकट है । सम्यक्त्वमे सही ज्ञान है और सही मे उजेला है, वही बना रहे उसे तो निर्वाणका सुख अभीसे है । निर्वाण सुखका ही रूप तो आत्मानुभव है ।

जैसे आजकल लोग प्रायः गिलासमे मसालेकी लकडीसे रसीला पानी पीते हैं । वह भरा हुआ गिलास लोग पीते है । उस भरे हुए गिलासमे एक रस है । गिलासमे रस भरा हुआ होता है वही तो एक संतान हो लकडी द्वारा मुहमे जाता है । यद्यपि गिलासमे सर्वाङ्ग-समृद्ध रस है और मुहमे अश जाता है फिर भी वह आशिक अश व गिलासका रस एक रूप

हो रहा है। तो देखो वह एक निर्वाणका सुख है। वह यद्यपि लबालब आनदसागर कुछ आगे है मगर सम्यक्त्वके प्रभावमे उस आनन्दकी ओटमे उसका ही स्वाद लिया जा रहा है, उसका ही आनन्द लिया जा रहा है। उसके लिए निर्वाण दूर नही है। सम्यक्त्वमे ही आकुलताएँ व्याकुलताएँ नही हो पाती है और सम्यक्त्व भी निर्वाणका एक रूप है तथा सम्यक्त्व निर्वाणका एक स्वरूप है। निर्वाण कहते हैं सम्यक्त्वकी एकरसताको। अतः सम्यक्त्वका ही नाम निर्वाण है, समझ लें तो मैं एक भावात्मक वस्तु हू। स्थानका ही नाम निर्वाण हो, सो नही है। जहाँ भगवान स्वय विराजमान है, शुद्ध भगवानकी आत्मा जहाँ विराजमान है वही अनन्ते निगोद है, किन्तु निगोदिया तो यहाँ जैसे ही निगोदियोकी तरह हैं अनन्त आनद लिए हुए है। यह जीव अपनेमे अनन्त आनन्द, भगवानके स्वरूप, सुख और केवल ज्ञानको लिए हुए है। जो अपनेको इन रूपोमे नही समझता है वह जन्ममरणके चक्रमे पडा रहता है। आत्मा जैसी आकारमे है जिस क्षेत्रमे है उसमे अनन्त आनन्दभरा हुआ है। निर्बल आत्मा की बात तो मैं नही करता, परन्तु जो आत्मा अपने आपपर विश्वास करता है, अपने आपपर दृष्टि करता है वह अनन्त आनन्द अपनेमे भरे हुए हैं। वह आत्मा अपनेमे ठसाठस आनन्द भरे हुए है। इस अपने अनन्तानत भगवान आत्मापर विश्वास करता हुआ, अपने आत्माको देखता हुआ चलें तो जीवनका प्रत्येक क्षण आनन्दसे प्राप्त होता चला जायगा। मैं एक ज्ञानानन्द पदार्थ हू, सत् हू, अपने स्वरूपमे हू, परके स्वरूपमे नही हू। मैं अपने ही द्रव्यसे हू और अपने ही क्षेत्रमे हू। प्रत्येक सत्मे ४ चीजें पायी जाती है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। जैसे यह चौथी है तो यह एक वस्तु हुई। जितनी लम्बी चौडी तथा मोटी है यह उसका क्षेत्र हुआ और जो काली है कि पीली है यह हुआ भाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नही हुआ करती है। कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए है। चाहे वह मूर्तिमान पदार्थ हो चाहे अमूर्त। प्रत्येक पदार्थमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका चतुष्टय अवश्य होता है। आत्माको देखो कि मै आत्मा गुणपर्यायमुक्त होनेसे द्रव्यरूप हू तथा क्षेत्र, काल, भाव इत्यादि को लिए हुए हू। जो गुणपर्याय है उसका मैं पिंड हू। मेरेमे विकार नही, विकल्प नही। देखो गुण पर्यायका पिंड आत्मा है। यह सब यो नही बताया जा सकेगा जैसे पुद्गलपिण्डको उठाकर बता देते हैं। ज्ञानसे ही समझमे आता कि इसमे जो त्रैकालिक शक्ति है वह गुण है। उसका प्रतिसमय कोई न कोई पर्याय है और परिणमता है। जिसमे शक्ति है, गुण है, पर्याय है उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है। इसमे अन्य द्रव्योकी भाति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। जैसे एक धोती है तो वह एक पदार्थ है। उसको फैला दिया जाय तो व्यक्तरूपसे क्षेत्र है और उसको जो काला, पीला इत्यादि जो रग है वह काल

है। उसमे जो शक्ति है वह भाव है। इसी तरहसे यह आत्मा एक द्रव्य है। इसमे गुण का प्रसार है, फैलाव है यही इसका क्षेत्र हुआ और इस आत्माका क्षेत्र आकाशके क्षेत्रके बराबर नही बल्कि अपने आपमे जितना फैला हुआ है उतना ही मेरा क्षेत्र है। परमार्थसे जितना मेरा ज्ञान है उतना ही मेरा क्षेत्र है। यदि मैं २–४ कोसकी दूरी तक जानता हू तो २–४ कोसका क्षेत्र है और यदि हजारो कोसकी दूरी तक जानता हू तो हजारो कोसका क्षेत्र है। और यदि विश्वके विषयमे जानता हू तो विश्वके बराबर क्षेत्र है। प्रदेशत: जितनेमे यह मैं द्रव्य विस्तृत हू उतना निजी असंख्यात प्रदेश मेरा क्षेत्र है। हमारा रूप दु:खरूप नही, क्लेश रूप नही, विकल्प रूप नही, ये सब केवल हमारे विभाव परिणाम हैं। इन परिणामोसे ही दु:ख होते हैं। यदि हम ऐसे परिणाम न करे तो क्लेश नही हो सकते है, ऐसी खराब भावनाएँ हो जानेसे हम विकास नही कर पाते है। यदि हम विभाव न करे तो भी हम परिणमते तो प्रतिसमय ही है। जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहती है। इस परिणमनको व इसके आधारको जो नही मानता है, उनका परिणमन भिन्न-भिन्न रूपोमे रहता है और यदि भावात्मकताके परिणमनको देखो तो अन्य-अन्य है तब भी उनका परिणमन भिन्न-भिन्न भावोमे रहता है। अहा! इस ज्ञानानन्दभावमात्र आत्माको तो देखो, यह देखनेके योग्य है, इसमे कोई विकार नही है। केवल यह आत्मा स्वरूप सत् मात्र है।

इस जगतमे जितने भी द्रव्य हैं वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोको लिए हुए हैं। इस भावस्वरूप चैतन्यका जा ज्ञान करे वह बड़े सम्यक्त्वके निकट है। बात कठिन पड रही है, मगर वस्तुकी यह खास तत्त्वकी चीज है।

जितने भी दर्शन बने, जितने भी वेदात, साख्य, बौद्ध इत्यादि बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे से हो तत्त्व विद्यमान है। अहो यह मै आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंसे परिपूर्ण अपने सत्मात्र हू। अपने ही द्रव्यमे मै सत् हू। प्रत्येक द्रव्य अपनेमे सत्रूप होते हैं। प्रत्येक द्रव्यकी अपेक्षा सत् इस आत्मामे नही होता है।

यह कमण्डल, यह दरी कोई भी हो सब अपना-अपना, अलग-अलग सत् रखते है। कभी कभी इस प्रकारकी दृष्टि बन जाती है कि कोई सर्वपदार्थोंको मिलाकर अपनेको एक सत् मानते हैं। यदि वे स्वतत्र स्वतंत्र सत् नही मानते है तो वह तो ब्रह्मवाद आ गया। परद्रव्योंमे सत् रूप न देना ही ब्रह्मवाद है। मैं तो अपने ही क्षेत्रमे सत् हू, परके क्षेत्रमे सत् नही हूं, मै अपने अकेलेमे सत् हूं। यदि मैं ऐसा अपने को मान लूं तो मेरेमे आकुलताए व्याकुलताएँ नही आवेगी और यदि इसके विरुद्ध अपनेको मान लिया तो अनेक प्रकारकी आकुलताए व्याकुलताएँ आ जावेंगी। इस तरहसे मै अपनेको ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखूं और यदि मैने अपने को यह निरखा कि मै पुरुष हू, मै स्त्री हू, मै साधु हू, मै अन्य कोई हू तो

उसका निर्वाण नही होता, वह दुःखके बन्धनमे ही फस जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नही होनी चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मैं सबसे निराला चैतन्य स्वभावमय पदार्थ हू। मेरे मे वर्ण नही, जातिया नही। मैं तो सबसे जुदा हू। ऐसा ही मुझे अपने को निरखना चाहिए। मै किसी स्त्री स्वरूप नही हू, मैं किसी पुरुष स्वरूप नही हू, मै किसी अन्य रूप नही हू, मै एक चैतन्यमात्र वस्तु हू—इस प्रकारसे जो अन्तरमे अपने आपको निरखता है वह शातिका मार्ग प्राप्त कर सकता है।

जैसे कुछ लोग कही बाहर चले जा रहे हैं, मक्खियां सिरपर मडरा रही हैं। शरीरमे बराबर मक्खियां चोट मार रही है। यदि वे व्यक्ति किसी तालाबमे जाकर डुबकी लगा लेवें तो सारी मक्खियो का प्रयास बेकार हो जाता है। वे मक्खियां उन पुरुषोको कष्ट नही दे पाती है। उसी प्रकारसे इस जगत्‌के जीवपर अनेक विकल्प विपदायें मडरा रही है यदि इस जगतका यह प्राणी अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो अनेक प्रकारके जो विकार है, विकल्प हैं वे उन्हे परेशान नही कर पावेंगे। इस जगतका प्राणी यदि अपने ज्ञानसागरमे डूब जावे तो उसके विकल्प समाप्त हो जावेंगे और वह मोक्षको प्राप्त करेगा। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, मेरेमे अन्य-अन्य रूप नही है, मैं चैतन्यस्वरूप हू—ऐसा मुझे अपने आपको मानना है। यदि अपने को यथार्थ रूप नही दिया जाता तो काम नही चलेगा।

आगे यह कहते हैं कि जहा कल्पनाये प्रतिभासित होती है वह तो मैं हूं, किन्तु ये अस्थिर कल्पनायें मैं नही हू। इस समय अमृतको पीऊँ और अपनेमे अपने लिये स्वय सुखी होऊ। इस जगतके प्राणियोको कल्पना मात्रसे ही क्लेश होते है। जो कुछ वे कल्पनाएँ बना लेते है उन्हे सत्य दिखती हैं, पर वे सत्य नही होती हैं। उन कल्पनाओसे उनसे उन्हें क्लेश होते हैं। जैसे सोते हुए व्यक्तिको स्वप्नमे सब बाते सही दिखती है। वह उस स्वप्नमे आनन्द मान ही जाता है। परन्तु वे सब बातें सही नही होती है। जैसे सनीमाके पर्देमे चित्र उछलता है, तो पर्दा नही उछलता है बल्कि चित्र ही उछलता है। पर्दाका स्वरूप चित्र नही हो जाता है। पर्दा तो वह है जिसपर चित्र उछलकर गये। अपनेमे यह भावना बनाओ कि मैं चैतन्यमात्र हू, मेरेमे सुख दु ख नही है। सुख दु·ख आदि विकार मुझमे उछल जाते है पर मै तो चैतन्यशक्तिमात्र आत्मतत्त्व हू। मै सबसे निराला हू। मेरेमे मोह नही है। मैं तो अविनाशी तत्त्व हू, मिटने वाला नही हू। ऐसी श्रद्धा हे आत्मन्! तू अपने आपमे बना।

हे आत्मन्! यदि तू अपने आपको सबसे निराला शुद्ध अविनाशी समझे तो तुझे अविनाशी सुख प्राप्त होंगे। तेरेको कभी आकुलताएँ व्याकुलताएँ नही आवेंगी। और यदि तूने अपनेको इसके विपरीत समझा, मैं तो ससारके समस्त प्राणियोसे मिला हुआ है, यह मेरी मां है, यह मेरे भाई हैं, यह मेरी बुवा है, यह मेरे फूफा है तो उसको कष्ट ही रहेगा।

मैं तो जैसा हू तैसा ही सदा बना रहने वाला हूं। मैं अन्य अन्य रूपोमे नही हू। हे जगतके प्राणी! यदि तू अपनेको अन्य-अन्य रूपोमे मानेगा तो तुझे क्लेश प्राप्त होगे और यदि अपनेको भगवानरूप मानकर अपनेमे ही रम गया तो तुझमे आकुलताएँ व्याकुलताएँ कभी नही आवेंगी। मैं ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू—ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपने को भगवानरूप मान। तेरे मे तो कोई विकार ही नही दिखते है, तू तो निर्विकार है। तेरेमे दुःख कहाँ है ? तू तो सदा सुखी है। दुःखोका रच भी तेरेमे नाम नही है। तू अपनेको शुद्ध चैतन्यमात्र समझ। तेरेमे दुःख करनेकी, विकल्प करनेकी, कोई आवश्यकता नही है। तू अपने आपको भगवानस्वरूप मानकर अपनी ही अतर आत्मामे रम और अपनेमे अपने लिए अपने आप सदा सुखी हो। देखो जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमे जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव झलकते है वे औपाधिक है। वे कल्पनायें मैं नही हू, किन्तु जिस पदार्थमे कल्पनाये प्रतिभासित होती है वह मैं हू। जैसे फिल्मके चित्र सिनेमाका पर्दा नही है किन्तु जिसपर चित्र उछलते हैं वह परदा है। यह मात्र लौकिक दृष्टान्त है। मैं समस्त पर्यायोका स्रोत तो हूँ किन्तु किसी पर्यायमात्र नही हू। जो पर्यायमात्र अपना अनुभव करे वह परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है और जो ध्रुव स्वभावमय अपना अनुभव करे वह स्वसमय अर्थात् सम्यग्दृष्टि है। अपने सहज स्वरूपमात्र अपनी श्रद्धा करना सो परमार्थ अमृतका पान करना है। इस अमृतपानसे आत्मा अमर व अनुपम आनन्दमय हो जाता है। आनन्द तो यही इस आत्मामे है। सो अपनेको सहज चैतन्यस्वरूपमात्र निरखकर निर्विकल्प हो, अपनेमे अपने आप सुखी होऊं।

प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख प्राप्त होवे, इसका केवल एक ही उपाय है, दूसरा नही है। वह यह है कि मैं एक स्वतत्र स्वय सत् हू। मै सबसे निराला एक जुदा पदार्थ हू, ऐसा अपने आपमे विश्वास आ जाना यह ही सुखका उपाय है। मै कैसा स्वतन्त्र पदार्थ हू, मैं किसी पर अन्याय करनेके लिए स्वतन्त्र नही हू, किसीको धोखा देनेके लिए नहीं हू। मैं स्वय एक स्वतन्त्र पदार्थ हू और जगतके सब जीव भी स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ है। किसी पदार्थ का दूसरा पदार्थ न कार्य है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतत्र जानते रहनेका उपयोग करना ही सुखका उपाय है। मेरा कोई कारण नहीं है अर्थात् मैं किसी चीजसे पैदा हुआ नही हू। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखने से ही सुख है। यह मैं किसी दूसरे पदार्थसे पैदा हुआ हू ऐसी बात नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे है और अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं मैं ऐसा ही ज्ञानमय हू, सुखमय हू। जो स्वतन्त्र हू और अपने आपमे अपने द्वारा अपनी शक्तिकी व्यक्तिमे परिणमता रहता हू। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुखका होगा। जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही परिणमन होगा। जैसे आममे रूप गुण ;

तो आममे क्या काम होगा ? नीला हो जाय, पीला हो जाय, लाल हो जाय । रूप बदलता रहेगा । यही तो आमका काम है । आममें रस है तो रस बदलता रहता है । खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा ही हो जाय । यही तो आमका काम है । इसी प्रकार मेरा गुण ज्ञान व आनन्द है तो मेरा क्या काम होगा ? कभी अपूर्णानन्द रहे, कभी पूर्णानन्द रहे, कभी अल्प ज्ञान रहे, कभी पूर्ण ज्ञान हो, यही तो मेरा काम है । यहापर कोई दूसरा काम नही है । मेरे गुणसे हो ज्ञान और आनन्द वर्तता है । यह मै आत्मा अपने को सोचूं कि मैं आनन्दस्वरूप हू, स्वतन्त्र अस्तित्वको लिए हू । हू तो अपने आपमे हू । अपने आपसे ही ज्ञान व आनन्द मिलना है । किसी दूसरे पदार्थमे अपनेको ज्ञान व आनन्द नही मिलता है । यह आत्मा ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है । मेरेमे ज्ञान किसी दूसरे पदार्थोंसे नही आता है । मेरेमे जो ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थोंके कारण नही है । दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक बन सकते हैं । हमारे ज्ञान और आनन्दके वे साधक नही बन सकते हैं । परमार्थसे बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक भी नही बनते, क्योकि हम स्वय ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते हैं । मेरेमे तो आनन्द और ज्ञान है, मैं आत्मा अपने स्वरूप में हू । यदि किसी बाह्यमे दृष्टि न हो, मोह न हो, विकल्प न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना हो जायगा । जितना आनन्द भगवानमे है उतना हो जायगा । मैं तो सबसे जुदा हू, फिर भी स्वय ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हू । मेरी और भगवानकी जाति तो एक है, पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त हैं और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प हैं । ऐसा क्यो हुआ ? हममे गलती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए है । यही गलती है और यही कारण है कि दुःख हो रहे हैं । जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमे दीनता नहीं आती है । दीनता तो केवल अपने मे आशामयी कल्पनाएँ बना लेनेसे आती है । दीनतासे क्लेश आ जाते हैं । यदि आशायें मिट जावे तो दीनता भी मिट जायगी । यदि हमे दीनता मिटानी है तो परकी दृष्टि छोड दें । परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते है । अत. यदि परकी दृष्टि छोड दें और अपने आपके महत्वको समझे तो दीनता मिट जाती है । यदि अपनेमे दीनताका भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका उपाय नही है । कितने ही उपाय कर डालें पर अधूरे ही रहेगे । दुःख न हो, अशान्ति न हो, ऐसी अवस्था न हो, ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर मुझे अपने आपपर विश्वास करना चाहिए । विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हू, सत ही स्वरूप हू, अपनेमे हूँ, मेरेमे ज्ञान अपूर्ण नही, ज्ञान और सुखसे लबालब भरा हुआ हू । हालाकि इस समय एक समस्या सामने है कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमे तो दृष्टि देनी ही होती है, पर यह नही कि दृष्टि भोजन ही भोजनमे रहे । उपाय

तो ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनन्द ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पडता नही, तब इतना तो करो कि भोजनमे आसक्ति न रखो। अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वभावमात्रकी प्रतीतिरूप रूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजन की इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सज्ञा खत्म हो जावेगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस ससारके सारे झगडे छूट जावेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगी। यही स्थिति सर्वोत्कृष्ट है। यदि मनमे अन्य कुछ लालसा, लालच इत्यादि करनेकी भावनाएँ बने तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है?

लालसा करो तो इस बातकी करो कि यथार्थ दृष्टिको अपने आपमे लानेकी, अपने आपमे झुकनेकी, विकल्पोसे छूटनेकी और अपने भावकी आत्माकी सेवा करनेकी बात बनो। और ऐसी लालसा करना कि मेरे २ लडके हो जावे, ४ लडके हो जावें, मेरी ऐसी स्थिति बन जाय, धन हो जाय इत्यादि ऐसी लालसा बनने से तो ठीक नही होगा। अरे इससे पूरा नही पडेगा। ऐसा करनेसे तो कोई न कोई काम विपदा सकट खडे रहेगे ही। अब यह है, अब वह है, अब यह चाहिए और अब यह मिले—इस तरहसे अनेक विकल्प खडे ही रहेगे। इस तरह विकल्पोसे आकुलता ही आकुलता आयगी। हे प्रभो, हे निज नाथ! मेरेमे ऐसा बल भरो कि मेरेमे केवल अपने आपकी शक्ति आवे, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बने। बाह्य पदार्थोंको मुझे सोचना ही न पडे। बाह्यको सोचनेसे कुछ लाभ भी नहीं है। सोचते होगे कि हम लडके को पढाते है तो पढ़ता है। अरे लडकेका भाग्य है। अपने भाग्यसे ही पढता है। लडकेकी सेवा करते है, खुशामद करते है तो यह बतलाओ कि आपका भाग्य बडा है कि आपके लडके का भाग्य बडा है? अरे आपके लडकेका भाग्य बडा है। जिसकी सेवा करते हो, पढाते लिखाते हो, खिलाते पिलाते हो, भारी सेवायें करते हो तो उस लडकेका भाग्य अच्छा है कि आपका भाग्य अच्छा है। अरे जिसका भाग्य बडा है उसकी चिंता करते हो और अपने भवितव्यके प्रति चिता नही करते हो। ये सब काम होते है अपने आप होत रहेगे। सबके भाग्य व काम जुदा जुदा है। चितासे पूरा भी नही पडेगा।

ऐसी बाह्य चिताओसे फायदा नही है। अपने आपका चिन्तन करो कि मै शुद्ध, ज्ञानभाव ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। केवल आत्मदृष्टिका ज्ञानके होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय हू, यदि बाह्य विषयोकी स्थितिमे रहे तो आनन्द नही है। आनद है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे है, जिनकी हम पूजा करते है, जिनका आदर करते है, जिनका चरित्र पढते हैं उन्होने अपने आपपर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खत्म की और अपने ही ज्ञानरसका स्वाद लेकर रहे इसलिए उनका आदर करते है, उन्हे पूजते है। जीवनमे

तो आममे क्या काम होगा ? नीला हो जाय, पीला हो जाय, लाल हो जाय। रूप बदलता रहेगा। यही तो आमका काम है। आममे रस है तो रस बदलता रहता है। खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा ही हो जाय। यही तो आमका काम है। इसी प्रकार मेरा गुण ज्ञान व आनन्द है तो मेरा क्या काम होगा ? कभी अपूर्णानन्द रहे, कभी पूर्णानन्द रहे, कभी अल्प ज्ञान रहे, कभी पूर्ण ज्ञान हो, यही तो मेरा काम है। यहापर कोई दूसरा काम नही है। मेरे गुणसे हो ज्ञान और आनन्द बर्तता है। यह मैं आत्मा अपने को सोचूँ कि मैं आनन्दस्वरूप हू, स्वतन्त्र अस्तित्वको लिए हू। हू तो अपने आपमे हू। अपने आपसे ही ज्ञान व आनन्द मिलना है। किसी दूसरे पदार्थसे अपनेको ज्ञान व आनन्द नही मिलता है। यह आत्मा ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है। मेरेमे ज्ञान किसी दूसरे पदार्थोसे नही आता है। मेरेमे जो ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थोके कारण नही है। दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक बन सकते है। हमारे ज्ञान और आनन्दके वे साधक नही बन सकते हैं। परमार्थसे बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक भी नही बनते, क्योकि हम स्वय ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते है। मेरेमे तो आनन्द और ज्ञान है, मैं आत्मा अपने स्वरूप मे हू। यदि किसी बाह्यमे दृष्टि न हो, मोह न हो, विकल्प न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना हो जायगा। जितना आनन्द भगवानमे है उतना हो जायगा। मैं तो सबसे जुदा हू, फिर भी स्वय ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हू। मेरी और भगवानकी जाति तो एक है, पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त हैं और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प हैं। ऐसा क्यो हुआ ? हममे गल्ती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए है। यही गल्ती है और यही कारण है कि दु ख हो रहे है। जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमे दीनता नहीं आती है। दीनता तो केवल अपने मे आशामयी कल्पनाएँ बना लेनेमे आती है। दीनतासे क्लेश आ जाते हैं। यदि आशायें मिट जावें तो दीनता भी मिट जायगी। यदि हमे दीनता मिटानी है तो परकी दृष्टि छोड दें। परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते है। अत॰ यदि परकी दृष्टि छोड दें और अपने आपके महत्वको समझे तो दीनता मिट जाती है। यदि अपनेमे दीनताका भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका उपाय नही है। कितने ही उपाय कर डाले पर अधूरे ही रहेगे। दु ख न हो, अशान्ति न हो, ऐसी अवस्था न हो, ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर मुझे अपने आपपर विश्वास करना चाहिए। विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हू, सत ही स्वरूप हू, अपनेमे हूँ, मेरेमे ज्ञान अपूर्ण नही, ज्ञान और सुखसे लबालब भरा हुआ हू। हालाकि इस समय एक समस्या सामने है कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमे तो दृष्टि देनी ही होती है, पर यह नही कि दृष्टि भोजन ही भोजनमे रहे। उपाय

तो ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनन्द ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पडता नही, तब इतना तो करो कि भोजनमे आसक्ति न रखो। अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वभावमात्रकी प्रतीतिरूप रूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजन की इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सज्ञा खत्म हो जावेगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस ससारके सारे झगडे छूट जावेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगी। यही स्थिति सर्वोत्कृष्ट है। यदि मनमे अन्य कुछ लालसा, लालच इत्यादि करनेकी भावनाएँ बने तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है?

लालसा करो तो इस बातकी करो कि यथार्थ दृष्टिको अपने आपमे लानेकी, अपने आपमे झुकनेकी, विकल्पोसे छूटनेकी और अपने भावकी आत्माकी सेवा करनेकी बात बनो। और ऐसी लालसा करना कि मेरे २ लडके हो जावे, ४ लडके हो जावें, मेरी ऐसी स्थिति बन जाय, धन हो जाय इत्यादि ऐसी लालसा बनने से तो ठीक नही होगा। अरे इससे पूरा नही पडेगा। ऐसा करनेसे तो कोई न कोई काम विपदा सकट खडे रहेगे ही। अब यह है, अब वह है, अब यह चाहिए और अब यह मिले—इस तरहसे अनेक विकल्प खडे ही रहेगे। इस तरह विकल्पोसे आकुलता ही आकुलता आयगी। हे प्रभो, हे निज नाथ! मेरेमे ऐसा बल भरो कि मेरेमे केवल अपने आपकी शक्ति आवे, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बने। बाह्य पदार्थोंको मुझे सोचना ही न पडे। बाह्यको सोचनेसे कुछ लाभ भी नहीं है। सोचते होगे कि हम लडके को पढाते हैं तो पढ़ता है। अरे लडकेका भाग्य है। अपने भाग्यसे ही पढता है। लडकेकी सेवा करते है, खुशामद करते है तो यह बतलाओ कि आपका भाग्य बडा है कि आपके लडके का भाग्य बडा है? अरे आपके लडकेका भाग्य बडा है। जिसकी सेवा करते हो, पढाते लिखाते हो, खिलाते पिलाते हो, भारी सेवायें करते हो तो उस लडकेका भाग्य अच्छा है कि आपका भाग्य अच्छा है। अरे जिसका भाग्य बडा है उसकी चिंता करते हो और अपने भवितव्यके प्रति चिंता नही करते हो। ये सब काम होते है अपने आप होते रहेगे। सबके भाग्य व काम जुदा जुदा हैं। चितासे पूरा भी नही पडेगा।

ऐसी बाह्य चिंताओसे फायदा नही है। अपने आपका चिन्तन करो कि मै शुद्ध, ज्ञानभाव ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। केवल आत्मदृष्टिका ज्ञानके होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय हू, यदि बाह्य विषयोकी स्थितिमे रहे तो आनन्द नही है। आनद है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमे है, जिनकी हम पूजा करते है, जिनका आदर करते है, जिनका चरित्र पढते है उन्होने अपने आपपर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खत्म की और अपने ही ज्ञानरसका स्वाद लेकर रहे इसलिए उनका आदर करते है, उन्हें पूजते है। जीवनमे

एक महान् उद्देश्य यह बनाना चाहिए कि मेरी वह स्थिति आवे जिसमे केवल अपने ज्ञानस्वरूपका ही अनुभव करता रहू और ज्ञानस्वरूपका ही स्वाद लेता रहू। अपने आपमे यह विश्वास हो कि मै सबमे निराला स्वतत्र एक पदार्थ हू। मेरेमे दूसरा कुछ फेर नही कर सकता है। मैं दूसरे लोगोको कुछ फेरफार नही कर सकता हू। सब सत् है और अपने ही सत्के कारण वे निरन्तर परिणमते रहते है। मैं किसीका कारण नही जो किसीको कुछ कर दे सकता हू। मैं किसीका कार्य नही कि दूसरे लोग मुझे कर दिया करते है। सब अपने-अपने सत्के मालिक हैं। ऐसी दृष्टि यदि अपनेमे हो तो निश्चित मुक्तिका मार्ग है। समस्त जगतके जितने पदार्थ है वे सब अपने-अपने सत्मे रहते हैं और कोई भी अपने अपने स्वरूपसे आगे नही जाते है।

हे आत्मन्! ऐसा अपने आपमे विश्वास कर कि जो मैं कर सकता हू वह अपने को ही कर सकता हू। दूसरे को कुछ नही कर सकता हू व भोग सकता हू तो अपने स्वरूपको ही। हाय विषयकषायोके परिणाममे ही पडकर जगतके सब जीव बरबाद हो गए है। मेरा भगवान तो अनन्त आनन्दमय है। इन सब परपदार्थोसे मेरा कुछ सम्बध नही, कुछ लेना देना नही, सब अपने अपने सत्मे है, सब कुछ न्यारा न्यारा है, फिर भी बाह्य पदार्थोके बारेमे ये कल्पनाएँ उठ जाती है कि यह मेरी है, यह उसकी है। यह एक बहुत बडी विपत्ति छायी है। इन बाह्य पदार्थोमे मेरा कुछ नही है। अपने ज्ञानरसका परिचय यदि नही है तो कुछ नही है। यदि बाह्य पदार्थोमे दृष्टि होगी, बाह्यकी आशा होगी तो अनन्त दु ख होगे। सुखका उपाय अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास है। जगतके सभी पदार्थोंको अपनी स्वतत्रताका विश्वास हो तो क्लेश नही है और यदि अपने स्वरूपसे हट गए तो क्लेश ही क्लेश रहेगे। यदि दूसरे पदार्थोमे ही लगे रहे तो आकुलताए आयेंगी। सो यह सुख और दु ख किसका फल है ? अरे दु.ख सुख तो मोहका ही फल है। जगतके जीवोको देखो बाह्यमे मोह करके दुखी और सुखी होते है। देखो इस जगतके जीवोको जो दु:ख होते है वे उनके मोह और मिथ्यात्वके ही परिणाम हैं। मै अपने आपको यह अनुभव करूँ कि मेरा तो मात्र मैं ही हू, मेरेमे ममताका परिणाम नही है। यदि अपने आपमे ऐसी भावना बने तो वही कल्याणका मार्ग है।

भैया! कोई एक शराबी था। तो वह एक शराबकी दूकानपर गया। बोला कि हमे अच्छी शराब दो। उसने बतलाया कि यह बहुत बढिया है इसे ले लो। कहा नही नही हमे बढिया शराब चाहिए। कहा देखो हमारी दूकानपर जो पाँच-सात पडे हुए हैं उनसे तुम अन्दाज लगा सकते हो कि शराब बढिया है या नही। मोहमे क्या हुआ करता है ? तो मोह मे आकुलताएँ होती हैं। मगर देखते है कि ये जगतके सब जीव बाह्य पदार्थोमे ही चिंताएँ किया करते हैं, मोह किया करते हैं, दु.खी होते जाते हैं। यही सब तो मोह मदिराका परि-

णाम है। फिर भी मोहके नशेके दुष्परिणामका विश्वास यह मोही नही करता।

देखो अपने मोहकी बेवकूफी देखना कठिन है तो दूसरे लोगोको देख लो कि यह उसका लडका है, वह भी कहता है कि यह हमारा लडका है। अरे यह बताओ कि उससे तुम्हारा क्या सम्बध है ? वे तो सब जुदा-जुदा हैं। उनसे तुम्हारा कोई सम्बध नही है। जो तुम्हारे घरमे दूसरा कोई पैदा होता तो उससे तुम मोह करने लगते। अरे जो पैदा हुआ उसका तुम कुछ कर लेते हो क्या ? यह मेरा है—यह आशय आना ही दु खका कारण है, दूसरा कोई दुःखका कारण नही है। अपने बारेमे यह विश्वास करो कि मैं अपने आपमे हू, स्वतत्र हू। मैं ही अपना कारण हू, मै ही अपना कार्य हू। मैं जो कुछ कर सकता हू, अपने को ही कर सकता हू। मैं अपने आपको ही भोग सकता हू। जो कर सकता है वह अपने आपको ही कर सकता है। अपने स्वरूपसे बाहर दूसरेको कुछ नही कर सकता है। और दूसरे लोग भी मेरा कुछ नही कर सकते हैं। सब वस्तु अपने-अपने स्वरूपमे है। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतका पान करता है।

जिसने इस अमृतका पान किया उसको आनन्द है। उसका ज्ञान दूसरे पदार्थोसे नही आता। शिष्यको गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्यका निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्यका आत्मासे ही प्रकट होता है, गुरुसे ज्ञान नही प्रकट होता है। अगर गुरु दूसरोको ज्ञान देने लगे तो २०—२५ शिष्योको ज्ञान देनेके बादमे गुरु तो खुद कोरा रह जावेगा। गुरु यदि दूसरोको ज्ञान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जावेगा। शिष्यमे खुद ही ज्ञान भरा हुआ है, सो गुरुका निमित्त पाकर वह ज्ञाता बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान होता, कोई मूर्ख होता। किसीको एक बारमे ही याद हो जाता, किसीको मुश्किलसे याद होता। क्या हो गया कि वह स्वयं ज्ञानमय तो है सो पूर्व जन्म की तपस्याके तारतम्यके अनुसार उसके ज्ञान प्रकट होता है। इसी तरह मेरा स्वरूप आनन्दमय है, मेरेमे मेरे ज्ञानका ही विकास हो रहा है और मेरेमे स्वय आनन्द बर्त रहा है। दूसरे पदार्थोसे मुझे आनन्द नही प्रकट हो रहा है। यदि बाह्य पदार्थोसे आनन्द प्रकट होता हो तो बतलावो। इन बाह्य अजीव पदार्थोमे ज्ञान और आनन्द तो है ही नही, तो फिर वहांसे ज्ञान और आनन्द कैसे आयगा ? किसी दूसरे चेतन पदार्थसे आनन्द कैसे आ सकता है ? उनका ज्ञान व आनन्द उनमे ही परिसमाप्त है। मैं स्वय आनन्दमय हू, मेरा आनन्द मेरेसे ही होता है, दूसरोसे मुझे आनन्द नही होता है।

हे प्रियतम ! बाह्य पदार्थोके विकल्प छोड दो और अपने ज्ञानरसका स्वाद लो। यदि अपनी सहज इस स्वतन्त्रताका विश्वास हो जाय तो यही अनुपम काम है। बाहरी पदार्थोके विकल्पसे दु ख होते है, बाहरी पदार्थोसे नही। कोई लडका २० हाथकी दूरी पर खडा हो और दूसरा भी इतनी दूरी पर खडा है। यदि एक लड़का दूसरेको अगुली दिखाकर चिढाए,

जिस लडकेको चिढाया जा रहा है वह यदि विकल्प वना ले कि अरे यह तो हमे चिढा रहा है, ऐसी कल्पना बनाने से, ऐसा ख्याल करनेसे उसे दु ख होता है, दूसरे लडकेकी अगुलीसे दु ख नही होता । बडे-बडे लोगो को किस कारणसे क्लेश हो रहे है तो क्या विरोधीके कारण से क्लेश हो रहे है । अरे उन्होंने स्वय कल्पना वना ली है कि यह मेरा विरोधी है, यह मेरे खिलाफ है, यदि यह कल्पना वना ली है तो क्लेश होते हैं, दु.ख होते है । देखो इन दुश्मनो से दुःख नही होता है । केवल कल्पनाएँ कर लेने से दु.ख होता है ।

एक राजा था । वह किसी राजापर चढाई करनेके लिए जा रहा था, सो वह सेना सहित जा रहा था । रास्तेमे जगलसे निकला । उसी जंगलमे एक साधु था । जिस राजापर चढाई करने जा रहा था वह साधुके पास बैठा था । साधु उसको कुछ उपदेश दे रहा था । अब राजाके कानमे शत्रुवोके शब्द सुनाई पडे । राजाने समझ लिया कि शत्रु आ रहे है । कहाँ तो वह उपदेश सुननेके लिए विनयासनसे बैठा हुआ था और कहाँ वह वीरासनी होकर बैठ गया । अब राजाने शत्रुवोको देख लिया तो उठ खडा हुआ और उस राजा ने अपनी तलवार निकाल लिया । साधु बोला कि राजन् यह क्या कर रहे हो ? राजा बोला कि महाराज ज्यो ज्यो दुश्मन आ रहे है त्यो-त्यो मेरा दिल भडक रहा है । मैं शत्रुवोको गर्क कर दूँगा । साधु बोला, राजन् तुम ठीक कर रहे हो कि अपने दुश्मनोको गर्क करने जा रहे हो, परन्तु एक शत्रु तो तुम्हारे अन्दर ही पडा हुआ है उसका भी तो दलन करो । राजा बोला, अरे मेरे अन्दर भी कोई दुश्मन है ? बताओ तो वह कौनसा दुश्मन है ? साधु बोला—महाराज तुम्हारा दुश्मन दूसरेको दुश्मन माननेका विकल्प है । तुम्हारा शत्रु तुम्हारा मोह है, विकल्प है । यह विकल्प ही तुम्हे चैन नही लेने देता । दूसरे शत्रु हैं, ऐसा ख्याल छोड दो तो कोई शत्रु नही है । दूसरा कोई तुम्हारा कुछ नही कर सकता है । ऐसा ख्याल छोड दो कि फलाना मेरा दुश्मन है । साधुकी बात समझमे आ गयी । अब राजा शांत होकर, मुनि दीक्षा लेकर मूर्ति की भांति बैठ जाता है । दुश्मन आते है और देखते हैं कि राजा तो शात, मूर्ति स्वरूप बैठा हुआ है । सब उसको प्रणाम करते है । दुश्मन राजाको शात मुद्रामे देखकर प्रणाम करके चले जाते है ।

बतलाओ कि यदि वे राज्य हडप लेते तो विजयी थे या यो ही शात मुद्रामे रहकर सत्य विजयी बने तो विजयी है । अरे राज्य हडप करने से मोह हो जाता और उन्हे दु ख होता । आकुलताएँ व्याकुलताएँ सदा बनी रहती ।

इस कारण अपने आपमे विश्वास करो कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हू, आनन्दमय हू, सबसे निराला हू । बाह्य पदार्थ मेरे हो, ऐसी कोई गुजाइश नही है । मैं मैं हू, जो है वे

अपने आपमे है, किसीका दूसरेसे सम्बन्ध नही है ऐसे स्वतंत्रकी दृष्टि हो जाय तो सुख और शातिका मार्ग मिल सकता है और कितना ही धन सचय हो जाय, कितनी ही इज्जत मिल जाय, पर अन्यकी दृष्टिसे शाति नही मिल सकती। हम रात-दिन दूसरोका ख्याल रखकर, दूसरो का विकल्प बनाकर परेशान रहा करते है। हम सबमे केवल एक यह ही बात नही आ रही है। किन्ही भी परपदार्थोंका ख्याल करना, अटपटी कल्पनाएँ करना और परेशान होना इतना ही काम प्राणियोका अब तक चला आ रहा है। कोई किसी का ख्याल करता, कोई किसीका ख्याल करता, मगर दु खी होनेकी एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जा रही है। दूसरो का ख्याल करते, इष्ट अनिष्टका ख्याल करते और परेशान होते है। योगियोमे और प्राणियोमे इन ही बातोका तो अन्तर है। योगी सम्यग्ज्ञानकी ही पद्धतिसे चीजोको जानते है, इष्ट अनिष्टो को नही जानते है और अपने ही स्वरूपमे मग्न रहते है। इस तरहके वे योगी सदा प्रसन्न रहते है और हम जगतके जीव परवस्तुवोके विकल्पोको लिए हुए रात दिन परेशान रहते है। वस्तुवोका स्वरूप देखो—प्रत्येक पदार्थ केवल अपने स्वरूपमे उत्पाद और व्यय करते है। अगुली चाहे अपने आप टेढी हो, चाहे दूसरे मनुष्य अगुलीको दाब दे, पर अगुलीमे जो टेढ़ापन बना है वह अगुलीकी ही परिणतिसे बना है, वह इन ही स्कन्धोकी परिणतिसे बना है, उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नही है। परपदार्थोंमे जो कुछ भी हो जाता है वह उनके स्वय अपने आपमे होता है, कोई दूसरा उसको नही करता है। एक निमित्तकी बातको देख कर यह प्राणी गर्व करता है कि मैने यह काम किया। जैसे अभी हारमोनियम बज रही थी तो वह कैसे बज रही थी ? ये इन भाईकी आत्माकी बात देखो तो यह आत्मा तो इच्छा, ज्ञान कर रहा था जिससे योग भी कर रहा था। इससे आगे इस आत्माका काम नही। इस शरीरको देखो सो अंगोमे अग हिल रहे थे, इससे आगे शरीरका काम नही। हारमोनियममे पीतलके तार हैं, उसमे हवा दी जाती है तब वह स्वर देती है, इतने पर भी वह स्वर शब्द तारसे नही प्रकट हुआ, भाषावर्गणाके स्कन्धोसे प्रकट हुआ है। जगतके इन प्राणियोको देखो इच्छा और योग अपने आपमे कर रहे है, इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर रहे है। इच्छा हो रही है, ज्ञान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है। उनका निमित्त पाकर उनके आत्मप्रदेश मे कम्पन हो जाता है। इच्छा जिसके होती है उसकी आत्मामे कपन हो जाता है। जैसी अनु-कूल इच्छा इस आत्मामे है उसीके अनुकूल हलन इस शरीरमे है। उस योगका निमित्त पाकर शरीरमे जो बात है सो वायु चली, वातमे कम्पन हुआ, फिर वातका निमित्त पाकर इस शरीर के अग चले, अंगुलियाँ चली। ऐसा स्वय हो गया। इस ही तरह शरीरमें वायु चली और फिर अग भी चल पडे। उसके निमित्तसे स्वरका दबाव हुआ, सो हवा निकलने का अवकाश मिला। देखो ये सब काम सबके अपने आपमें हो रहे हैं। यहाँ हवा पास होना हुआ और यहाँ

आवाजका निकलता हुआ। इस पर भी पीतलसे शब्द प्रकट नही हुआ, किन्तु भाषावर्गणा से शब्द प्रकट हुआ। कोई किसी अन्यको कुछ नही करता सब पदार्थोंके जुदा जुदा काम हो रहे है पर निमित्त उनका एक दूसरोमें है जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुकने यह काम किया, अमुकने यह काम किया। वस्तुवोंके स्वरूपको देखो तो परपदार्थोंमें स्वतन्त्रतासे उनका अपने आपके परिणमनसे खुद काम हो रहा है। ऐसी स्वतन्त्रताकी दृष्टि जब आती है तब ज्ञानी जीव जगतके पदार्थोंके परिणमनको देखकर न हर्ष करते है और न विषाद करते है। अब यह देखिए कि हम परेशान हो रहे है तो किसलिए परेशान हो रहे है ? अरे उनमे परेशान होनेसे क्या कुछ लाभ बना दोगे ?

प्रथम तो ऐसा ही सोचें व यत्न करें कि मेरी दृष्टि बाह्यसे हट जानी चाहिए। इसमे असफलता हो तो फिर आगे सोचें कि मैं किसके पीछे बरबाद हो रहा हू, दुःखी हो रहा हू ? देखो पदार्थ दो तरहके हैं—(१) जीव और (२) अजीव। जीव वह कहलाते हैं जिनमे देखन हो, जानन हो और अजीव वह कहलाते है जिनमे जानन तत्त्व न हो। दो ही प्रकारके तो पदार्थ है। इनमे से जीव तो दिखता ही नही, जो दिखा करते है ये दिखने वाले पुद्गल है अथवा ये जो दिखते है भौतिक है। एक तो भौतिक है और दूसरे चेतन पदार्थ या देखने जानने वाले पदार्थ। इन दोनो प्रकारके पदार्थोमे किस प्रकारके पदार्थोंके पीछे परेशान हो रहे हो ? विचार करो कि जीव जिन जीवोके पीछे परेशान है वे दिखते ही नही है। और जीवोंके स्वरूपमे दृष्टि दो तो उनमे देखन है, जानन है, ज्ञानानन्दमय चेतन पदार्थ है। वे तो वैसे हैं तैसे ही हैं और वैसे ही सब हैं। किसीमे कोई विलक्षणता नही है सब एक रस वाले है। जब कोई विलक्षणता नही है तो उनमे मेरे तेरेका भेद ही नही हो सकता। यदि विलक्षणता हो तो मेरे तेरेका भेद हो। परन्तु जीवोंके स्वरूपको देखो कोई विलक्षणता नही है। ये स्वय ज्ञानमात्र है, ज्ञायकस्वरूप है, कोई विलक्षणता नहीं है। भारतके, विदेशके, गाँवके ये सब ही जीव शुद्ध ज्ञानमात्र है, आत्माके मर्ममे दृष्टि डालकर देखो तो शुद्ध ज्ञानमात्र है, एक स्वरूपमे है। तो यह मेरा तेरा पन कैसे मिल गया कि यह मेरा है, यह उसका है, यह दूसरेका है अथवा यह इष्ट है, यह अनिष्ट है। स्वरूपमे दृष्टि दो सो वहाँ कुछ नही मिलेगा। प्रथम तो इस जीवको पहिचानने वाले भी कोई नही है। और कोई पहिचाननहार मिल जाय तो इसका ज्ञाता दृष्टा हो जायगा तो उसकी दृष्टि भली बुरी नही होती है। सब प्रभु नजर आते हैं, एक चेतन पदार्थ नजर आते हैं। फिर वह कैसे व्यवहार करे, कैसे मेरा तेरा माने ? अपनी बरबादी दूसरोके कारण नही होती है। अपनी बरबादी अपने ही कारण होती है। जो जीव हैं वे दिखनेमे आते नही हैं। जीवके पीछे तो हम बरबाद नही हो रहे हैं, परेशान नही हो रहे हैं, क्योकि जीव तो दिखते ही नही। यदि वह दिखेगा तो ज्ञानीको दिखेगा। सो ज्ञानीकी

वृत्ति ही अलौकिक है वह परेशान होता नही ।

परमार्थकी बात तो यह है कि जो कुछ भी दिखेगा वह अपने स्वरूपमे दिखेगा । सब जीव हैं, एक रस है, इस दृष्टिमे व्यक्तिपन ही खत्म हो जाता है । जीवके देखने वाले ज्ञान-योगी पुरुष व्यक्तियोको नही देखते हैं । वहाँ उसे केवल एक चित्प्रतिभास ही नजर आता है । तो वहां परेशानी कैसी ? जहाँ व्यक्ति नजर नही आते है वहाँ मेरी तेरी नजर कैसे बने ? वहा परेशानी कैसे हो ? सो जीवके विषयमे तो यह बात है कि प्रथम तो जीव दिखते ही नही है, जो समझमे आते ही नही है उनमे परेशानी कैसे हो सकती है और नजर आ जाय तो यह जीव एक रस है, चैतन्यस्वरूप है, जीवके स्वरूपके समझनेपर व्यक्तियां नजर नही आती। व्यक्तियाँ है, भिन्न-भिन्न है, परिपूर्ण है, आनन्दमय है । आनन्दका अनुभव सबके जुदा-जुदा है, स्वरूपचतुष्टय सबका भिन्न-भिन्न है । ये जगतके जीव सुखी दुखी होते है । सब सच है, परन्तु जीवके स्वरूपको देखने वाले लोग, ब्रह्मके स्वरूपको समझने वाले लोग व्यक्तियोको अपने मन मे नही रख सकते है तो उन्हे एक चित्स्वरूप ही नजर आता है । सो मात्र जीवोके पीछे लोग परेशान नही हो रहे है । अब इन पुद्गलोकी बात देखो, ये दृश्य तो हैं, मगर ये जड़ बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी कलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड पुद्गल है, इनसे मुझे कुछ मिलता भी नही है । इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है, उनके पीछे हम क्या बरबाद होते है ?

मानो ये ज्ञानी मनुष्य इस कमरेमे न बैठे हो । चौकी, १०, २० और टेबुल दो-चार तथा बहुतसे अजीव पदार्थ है, पुद्गल रखे हुए हैं । वहाँ कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान देगा और कौन सुनेगा ? अरे उन अजीवोसे लेना-देना कुछ नही है । वे जड है, वे अपने आपमे है, उनसे क्या होगा ? उनसे भी बरबादी नही है । हाँ उनके विषयमे विकल्पचक्रमे पडनेसे बरबादी होती रहती है । मैं बरबाद होता रहता हू तो अपने आप होता रहता हू । दूसरोके द्वारा मैं बरबाद नही होता हू । दूसरोके पीछे विकल्पमे पडनेमे परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमे सुख होता है । जैसे पताका अथवा झडा वायुसे भर जाता है तो फडफडाने लगता है, वायुसे उलझ जाता है तथा सुयोगसे यदि हवा बद हो जाय या अनुकूल वायु हो तो सुधर जाता है अथवा फडफडाना बन्द हो जाता है । उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर याने अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयमे उलझ जाता है और ज्ञानका सुयोगसे निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुलझ जाता है । आपको परेशान करने वाला इस दुनियामे है कौन ? ये खुद बाह्य पदार्थोको निमित्त बनाकर परेशान होते है । यह परेशान एक उर्दूका शब्द है । इसे सस्कृतके शब्दमे ले लो तो इसमे २ शब्द है—पर और ईशान । पर जिसका ईशान बन जाय । ईशान कहते हैं स्वामीको अथवा दूसरा मालिक बन जाय । यदि दूसरेको

हम अपना मालिक समझ बैठे । यही परेशान शब्दका अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नही है । दूसरेको अपना मालिक समझ लेना, खुदको परका मालिक समझ लेना, बस यही परेशानी की जड है ।

धन्य है वह परिस्थिति, धन्य है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञानरसका अनुभव आ रहा है । परमे विकल्प न हो तो वह परिस्थिति धन्य है । उस ही अनुभूतिका नाम दुर्गा है । 'दु खेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा ।' जो बडी कठिनाइयोंसे पूर्ण होता है उसे दुर्गा कहते है । यह स्वानुभव बडी कठिनाइयोसे प्राप्त होता है । अपने आपमे ऐसा अनुभव बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमे नही है । केवल शुद्ध ज्ञानरसका अनुभव होता रहता है, ज्ञानदृष्टि होती रहती है, इसलिए ज्ञानदृष्टिसे भी परिपूर्ण है । तब तो जीवन सफल है । अन्यथा क्या दुष्परिणाम है । उसका प्रमाण यह है कि जो अभी तक इस ससारमे यह डोल रहा है । यदि शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो जाय तो यह शुद्ध आत्मतत्त्व इस शरीरके बधनसे मुक्त हो जाय । यह शरीर जड है, हड्डी और माससे बना है । इससे कोई सार नही नजर आता है । इस शरीरमे फोडा फुसी हो जावें, अनेक परेशानियाँ आवें, इसमे कोई सार नही नजर आता है । जो सुन्दर चुपडे चापडे बैठा है उसको छेद करके देख लो, इसमे कोई सार नही नजर आता है । इसमे कुछ भी नही है । इस शरीरको असार झोपडी समझो और अपने आपको समझो कि मुझमे शुद्ध ज्ञानस्वरूप चैतन्यमय तत्त्व मौजूद है । जैसे किसी गाडी मे गधा और ऊँट जोत दो या हाथी 'और गधा जोत दो तो जैसी स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है । कहाँ तो ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व मैं हू और कहाँ इस असार शरीरका बधन । बधा है फिर भी अलग रहता हू । एकका अनुभव करते हो तो कितने उत्कृष्ट भाव बनते है ? मैं तो पवित्र ज्ञानमात्र शुद्ध चैतन्य पदार्थ केवल ज्ञानमय, केवल ज्ञानानन्दमय हू और ये पुद्गल असार है, अहित है, उनसे सम्बध हो रहा है, फिर भी सम्बध ही नहीं । यह भीतरके अपने आपके स्वरूपको ताकता नही और बाहरमे असारको देखकर सर्वस्व मान रहा है । ऐसी दृष्टि हो रही है । हे नाथ ! धन्य वह क्षण है जब सबको छोडकर अपने आपपर शुद्ध नजर करोगे । यदि बाह्यमे ही फसे रहे तो बरबादी होगी । बाह्यमे ही पडकर नष्ट हो रहे हो । इन जीवोंमे जिसके पीछे पड रहे हो वे अशुद्ध, जीव पदार्थ है । वे अपने आपके स्वार्थके लिए अपनी चेष्टा कर रहे है । इस मायामय जगतके पीछे मोहमे पडकर मोही व्यर्थ बरबाद हो रहे है अर्थात् अपना ख्याल बनाकर, अपनी कल्पनाएँ बनाकर ही दु खी हो रहे हैं । तो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर कष्ट ही क्या है ? जो जैसा है वैसा जानते जायें तो स्वरूपरमण होना सुगम ही है । सो अब मेरी ऐसी ही भावना हो कि अब मैं तो अपने ही स्वरूपकी रुचि करके अपनेमे ही रमकर अपने लिए अपने आप विश्राम पाकर सुखी होऊँ ।

मेरा मात्र मैं ही हूं। मेरा अन्य कोई कुछ नहीं है। किसीके पीछे दुःख होना क्या है ? हठ हो रहा है। जगतमे कौनसे विषय ऐसे है जो मेरी इस आत्माको पूरा पार देंगे ? ज्ञान करके देख लो। ससारके लटोरे घसीटोमे चिंताएँ करना, हठ करना, यह मेरा है, यह उसका है, यह सब क्या है पुण्यके उदयका ऊधम है। बडा सोच करते हैं कि यदि हठ नही करे तो ससारके लोग क्या कहेगे ? भैया, मायाकी हठसे इज्जत नही बढती। हिंसा करे, मान करे, अन्याय करे, द्वेष करे परिग्रही बने तो क्या जीव महान हो गया ? क्या जीवकी इज्जत हो गयी ? अरे पाप किया और मर गए, मरकर कीडे मकौडे हो गये तो फिर क्या इज्जत रह गयी ? अपने धर्मसे न चिगना यह सबसे बडी कमायी है। अपनी नीतिमे, स्वभावसे, आत्मदृष्टि से न चिगना यह सबसे बडी कमायी है। इससे इस लोकमे सुख है और परलोकमे भी सुख रहेगा अन्यथा बाह्यमे दृष्टि दो तो तुच्छ तुच्छ बातोमे भी यह प्रभु फस जाना है।

एक सुना हुआ कथानक है। एक मास्टर और एक मास्टरनी थे। दोनो ही भिन्न भिन्न स्कूलोमे पढाने जाते थे। समझ लो इतवारका दिन हो, मास्टरने मगोडी बनानेका प्रोग्राम बनाया। बहुत अच्छा सामान बाजारसे खरीदकर मास्टरने घरमे रख दिया। अब मास्टरनी मगोडी बनाने लगी। बनाते बनाते २१ मगोडियां बन गयी। अब मास्टर भोजन करने बैठे, १० मगोडियां मास्टरको परोस दिया और ग्यारह मगोडियां अपनेको रख लिया। कभी मजाक भी हो जाती है। जरा जरासी बातोमे जिद हो जाती है। मास्टरने कहा कि हमे दस मगोडियां परोसी और अपने लिए ग्यारह रख लिया। मास्टरनी बोली, मैंने तो परिश्रम किया है इसलिए मैं ग्यारह खाऊँगी और आप दस खावोगे। दोनोका निर्णय हो गया कि दोनो चुप हो जावें। जो पहले बोल देगा उसे दस मिलेंगी और जो बादमे बोलेगा उसे ग्यारह मिलेंगी। अब दोनो चुप हो गए। एक दिन हो गया, २ दिन हो जाए, भूखो मरे जा रहे है। तीन दिन हो गए मरनेको हो गए, मगर जिद्द नही छोडी। स्कूलके बालकोने देखा कि मास्टर ३ दिनसे स्कूल नही आते। वे मास्टरके घर आए। देखा दोनो मरे पडे है। मरे नही थे मरेसे हो गये थे। सब लोग जुड गए। सब लोगोने देखा कि दोनो एक साथ मर गए। चलो इनकी अर्थी बनाकर लिटा लें और ले चले। यद्यपि अभी मरे नही थे। पर वे मरसे हो चुके थे चुप रहने की जिद्दमे। लोगोने अर्थी बना ली और दोनोको लिटा लिया। अर्थी ले गए। आग लगाने ही वाले थे कि स्त्रीने देखा कि [अब हम दोनो नही बचेंगे। तो भाग्य की बात देखो कि अर्थी ले जाने वाले भी इक्कीस लोग थे। स्त्री झट बोली कि आप ग्यारह खा लेना हम दस खा लेगी। लडकोने समझा कि ये मरकर भूत हो गए है। जब लोगो ने स्त्रीके शब्दोको सुना तो डर गए। बोले कि अरे हम सबको ये खा जावेंगे। हम इक्कीसो ही खत्म हो जावेंगे। इसलिए छोडकर सब भाग गए। दोनो ही घर गए, बोले कि

जो पहले बोला वह दस खावे और हम ग्यारह खावेंगे ।

ऐसी कोई कोई घटना अपनी जिन्दगीमे ही घटित हो जाती है । बहुतसी ऐसी बातें हो जाती है जिनमे कुछ ज्ञान नही होती है और जिद्द पूरी हो जाती है । यह अज्ञान ही तो है । मोहकी ही तो बात है । ज्ञानकी शरण लो भैया, यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या ? 'यो परिणम गया तो क्या, न परिणम गया तो क्या है ?

आपने देखा होगा कि उनमे क्षमा कर देनेका माद्दा, दूसरोको माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है जो बडे घरानेके लोग होते है । उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा भी होते हैं तो भी वे धीर रहते है । यह ज्ञानकी ही बात तो है । खराब प्रवृत्तिके लोग जो होते है वे छोटी-छोटी बातोमे अड जाया करते है । जैसे कहते हैं सूत न कपास कोलीसे लट्ठमलट्ठा । दो आदमी चले जा रहे थे । एक किसान था और एक जुलाहा । एक मैदान मार्गमे मिला । किसान बोला कि अगर यह मैदान मिल जाय तो हम कपास बोवेंगे और कपासके कपडे बनवाएँ, व्यापार करेंगे, बेचेंगे । जुलाहा बोला कि अगर यह मैदान मुझे मिल जाय तो मैं भैंसे चराऊगा । किसान बोला कि अरे तो भैंसें कैसे चरावेगा, मैं कपास बोऊँगा । जुलाहा बोला कि अच्छा देखो मेरी भैंसें चरती है या नही । रास्तेमे चले जा रहे हैं । हाथ चलाकर किसान बोला तो मैंने मैदान हलसे जुता लिया, बीज बो दिया । कपास पैदा हो गयी । जुलाहा, दस ककड उठा लेता है और कहता है कि लो हमारी एक भैस आ गयी, २ भैसें आ गयी और बीस भैसें आ गयी । दोनोमे तेज लडाई हो गई ।

ये जगतके प्राणी व्यर्थकी बातोमे ही विवाद खडा कर देते हैं । घरकी ही बात देख लो, घरमे तो गुजारा करना ही पडता है । कई बातोके लिए लडाई लडनी पडती, फिर भी एक लक्ष्य होनेसे शान्ति हो जाती । धर्मसे ही काम हो तो धर्मके प्रसगमे भी विवाद समाप्त हो । धर्मके कामोमे लगें और विवाद रहे यह सब तो आश्चर्यकी बात है ।

अरे ये सब क्या है ? अपने धर्मको छोडकर कहाँ दृष्टि डाल रहे हो ? धर्म अपने आपकी आत्मामे है । अपने आपके स्वरूपमे दृष्टि हो तो धर्म है । धर्म बाह्यदृष्टिसे बाह्यमे मोह करनेसे नही मिलेगा । शुद्ध परिणामसे ताल्लुक रक्खो तो धर्म होगा । अगर क्रोध आदि कषायका बधन होगा तो धर्म नही होगा । अरे मै यह चेतन पदार्थ किन पदार्थोंके पीछे बरबाद हो गया, जिनमे कोई सार नही है । इस जगतमे जो जीव है वे दिखते नही है और जो अजीव है वे दिखते है, किन्तु जड हैं और जो जानने वाले समझने वाले हैं वे दीखते नही और जो समझते नही वे दीखते है । भाई जो रफ्तार चल रही है उसमे फर्क करना चाहिए । अपने को अपने आपमे झुका लो तो शातिका मार्ग मिलेगा अन्यथा शसारमे रुलना ही बना रहेगा ।

जब तक हम अपने आपसे मुडकर विमुख रहेगे तब तक शांति नही आयगी । अपने को शांत रखने के लिए समर्थ स्वाध्याय है, आत्मचिंतन है। यदि अपने ज्ञानमे सही ध्यान बने तो अपने आपको शांति प्राप्त होगी और यदि अपने आपमे सही ज्ञान न बना तो अशाति ही रहेगी। आत्म-कल्याणके बाहर दृष्टि करनेसे भी अपने को दुःख ही है। अतः ज्ञानबलसे अपने आपको मेटकर, मै अपने आपको देखकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ। सुखी होने का उपाय अन्य नही है आत्मदर्शन ही सुखका उपाय है।

अब तक भी जिन जीवोसे सम्बन्ध हुआ उस प्रसगको याद कर लो। क्या उनसे कुछ भला हुआ ? उनसे कोई हित है क्या ? अबसे १० वर्ष पहले, २० वर्ष पहले जो सग था, परिचय था उस प्रसंगमे कितना लाभ पाया था ? इस बातका भी ध्यान कर लो। जो भी सम्बन्ध हुआ उनमे यह जीव पछताता ही रहा है व पछताया करता है। इसे लाभ कुछ नही मिलता है। परिस्थितियाँ सब अलग-अलग है लेकिन तरीका एक ही सबका है। सम्बन्ध हुआ, राग किया, द्वेष किया, घटनाएँ बनायी कार्य किए। जिन-जिनके परिचय हुआ उनसे क्लेश ही मिला, पछतावा ही मिला, अशाति ही मिली और वहाँ भी देखा तो जो जीव मोही है वह तो भूल भूलकर पछताता है। रागमे पडकर यह जीव तडपकर व्याकुल होता और परेशान होता। मगर जो ज्ञानी जीव है वे रागमे नही पडते। समयके अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते है, उन्हे कोई परेशानी नही होती और न दुःख ही सहने पडते। अज्ञानी जीव अपने आत्मतत्त्वको नही समझ पाता है, वह अपना जीवन यो ही गुजार देता है। अज्ञानी दूसरोसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्धका फल पछतावा होता है और इसका कोई निर्णय नहीं। जिनका सम्बन्ध अन्य जीवोसे है वे भले ही मानें कि हम सुखी है, मौजमें है, परन्तु अन्तमे उसका फल अत्यन्त पछतावा ही रहना है। इस कारण कोई भी परपदार्थ मेरा हितरूप नही है। जो मेरा हितरूप है वह मैं ही हू अर्थात् मै अपनेमे यथार्थ हू, मैं स्वतत्र हू, सत् हू, चित्त प्रतिभासमात्र चैतन्यस्वभावमात्र, जिसका काम केवल जानन और देखन है ऐसा मैं हू। हू, अपने आपमे हू। यह मैं आत्मास्वरूप हितरूप हू। यदि इसी तरह मैं अपनी आत्मामे देखू तो यह मैं हितरूप आत्मा हू, सो ऐसा हितरूप मैं मूर्त पदार्थ नही हूं जो आत्माको देखा जाय, पकडनेसे जो पकडा जाय। नाकसे जो सूघा जाय, ऐसा मै मूर्त पदार्थ नहीं हू। जो हितरूप है वे किसीको दिखते नही और जो दिखते है वे हितरूप नही। फिर मैं किसके चिंतनमे, किसके विचारमे अपने आपको नष्ट कर रहा हू ? ये सारे विकल्प अनर्थ है। ये मेरे प्रयोजन को सिद्ध न करेंगे। प्रथम तो जितने विकल्प उठते है वे सब अनर्थ है। मेरे बाहरके सोचनेसे बाहरसे कुछ आता नही। जितने भी लोग काम करते हैं, दुकानका, दफ्तरका, घरका, समाजका वे सब अपने आप होते रहते है। आप तो केवल अपना ज्ञान

और योग करते रहते हैं। इच्छा कर लें और जानकारी कर लें, इसके अलावा कोई काम नही करते। जो कुछ काम होते है वे अपने आप होते है। यदि मैं करता होता तो जो मै करू सो होवे। पर ५ प्रतिशत तो इच्छा माफिक होते नजर आते हैं और ९५ प्रतिशत नही होते या प्रतिकूल होते नजर आते है। यदि सोचा तो ५ प्रतिशत भी मेरी इच्छासे नही होते है, करनेसे नही होते, वहाँ केवल विकल्प करना है। जो अनर्थ है, कार्यकारी नही है। ऐसा सयोग सुयोग जिनका होगा वह होगा। मेरे करनेसे कुछ नही हुआ करता। मेरा करनेसे मेरा मै ही होता हू। दु ख, सुख होते, कषाय होते, अशाति होती। जो कुछ होते हैं वे मेरेमे मेरे ही किएसे होते है, मेरेसे बाहर कुछ नही होते। परपदार्थ भी मेरे कुछ नही है और न होंगे। कितनी ही बातें ऐसी हो जाती है जिनको आप बहुत दिनोसे सोचते आते है पर पूरी नही होती है। किसी कामको १० वर्षसे सोचते आते है पर काम नही होता है। ये तो सब पुण्य पापके उदयके निमित्तकी बातें है। जैसा पुण्य-पापका निमित्त है वैसा बाहरमे सयोग होता है।

ये जगतके जीव अपने आप कर्मोदयवश सर्वत्र विचरते रहते है। इनके जन्ममरण होते रहते है। जन्म होगा फिर मरण होगा। फिर जन्म होगा फिर मरण होगा। एक पचेन्द्रियका शरीर भी प्राप्त हो गया। आँखें देखनेके लिए प्राप्त हो गयी, कान सुननेके लिए प्राप्त हो गए। यह कुछ देखने लगा—यह शहर है, यह मोहल्ला है, यह फलां है इत्यादि। अरे यह सब मोहका आनन्द है। यहा पर पैदा हो गए। यहाँ कुछ समागम हो गया। उस समागममे इतना लीन हो गए कि अपने स्वरूपको भी खो बैठे। यदि अपने स्वरूपकी चर्चा करे, अपने ही स्वरूपके निकट पहुचें तो वहाँ आकुलनाओका नाम नही रहता है। अपना स्वरूप है केवलज्ञान। आत्मा सर्वपदार्थोंसे विलक्षण एक सत् है कि यह ज्ञान ज्ञाता ही बना रहता है। इसका और कोई काम ही नही है। सब अपनी-अपनी धुनमे हैं। सब पदार्थ अपने अपने स्वरूपमे परिणमते हैं। जैसे घडीमे चाभी भर देनेसे चला करती है। तुम चाहे जो कर रहे हो घडी अपना काम कर रही है। वह खुद अपना काम कर रही है। दूसरा कोई उसके लिए नही है। जब काम कर चुकती देखा अरे २ बज गए, १ बज गया अरे ३ घटा हो गया, इत्यादि। घडी अपने ही काम व्यस्त है हम चाहे कुछ भी करें। इस मोटे दृष्टान्तके आधारपर देखो जगतके प्राणी अपने अपने काममे व्यस्त है, अपना अपना काम करते है। ये प्राणी यदि दूसरे पदार्थोंके बारेमे सोचते है तो मानो वे पागलपन की बातें सोचते है।

एक आदमी सडकके पास एक कुवे की जगहपर बैठ गया। सामने से एक मोटर आयी। कुछ लोग मोटरसे उतरकर कुवेपर पानी पीने गए। पानी पीकर मोटरमे बैठकर लोग चले गए। अब वह व्यक्ति जो कुवेंकी जगह पर बैठा था, मोटर चली जाने से दु खी हो गया। हाय मेरी मोटर चली गयी। इसी तरह इस जगतके जीव इस सडकके बीच कैसे

पड़े हुए हैं ? चारों तरफसे इस लोकमे जीव आ रहे है, कोई कहीसे, कोई कहीसे आ रहा है। यह पागल प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उसका है इत्यादि। तो ऐमा सोचनेसे क्या उसका हो गया ? अरे जो आए हैं वे मिट जावेंगे। उनका अस्तित्व भिन्न-भिन्न है, पर इस मोही जीवने मान लिया कि ये मेरे है। सो वे अपने परिणमनसे आये है और अपने परिणमनसे ही जावेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और यह व्यर्थ सोचकर दुखी बनेगा। पर यह मोही प्राणी उनके ही पीछे पागल हो रहा है, दुःखी हो रहा है। यह मेरा था और चला गया। इस तरहसे व्यर्थके विकल्पसे ही मोही दुखी होते है। जरा अन्तरदृष्टि तो दो। हमारा इस जगतमे है क्या ? अरे यह मै तो केवल ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू, सब से जुदा हू। ऐसी दृष्टि यदि बने तो आत्मज्ञान मै पा सकता हू, नही तो आत्माका ज्ञान पा सकना मुश्किल है। इस आत्माको स्व-लक्षणकी दृष्टिसे देखो कि मै आत्मा ज्ञानमय हू, यह आत्मा ही मेरा धन है। यही मेरा निजी घर है। यह आत्मा ही मेरा निजी परिवार है। इस मेरी आत्मामे जाननकी ही व्यवस्था है। जाननके अतिरिक्त मेरा कही कुछ नही है। ऐमा मात्र जाननस्वरूप अपने को निरखें तो वहाँ न तो भोगका पता रहता है और न जगत का पता रहता है। किन्तु ज्ञानमात्रका अनुभव करना व भोगना रहता है यही सिद्ध योगियों की स्थिति रहती है। जिनके विवेक है, ज्ञान है, समझदारी है तो वे ससारके दुःखोसे दूर रहते है और जिनके भ्रम है, अज्ञानता है वे इस ससारमे ही पडे रहते है, दुःख उठाया करते है, उनकी उन्नति नही हो सकती है। हे आत्मन्! इन बाह्योमे कौनसा सार है, कौन शरण है, उनमे पडनेसे तुम्हे क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्यसे कुछ नही मिलेगा। यदि अपने मे ऐसा ज्ञान बनाओ, ऐसी हिम्मत बनाओ जिससे तुम स्वय स्वयमे स्थिर हो सको तो मुक्ति का मार्ग मिल जायगा, नही तो मुक्तिका मार्ग न मिलेगा। हे प्रभो! मुझे मुक्ति मिले या न मिले किन्तु इतना बल होवे कि रागमे पडकर अवा न बनूं, द्वेषकी ज्वालामे न जलू। राग द्वेष करना ठीक नही। केवल इतनी बात हो जावे तो मुक्तिका मार्ग तो मिलेगा ही, रागद्वेषमे पडनेसे कुछ लाभ न हो सकेगा। राग जिनसे करते हो उनको सामने लेकर प्राइवेट बात कर लो। उनके पीछे पड़कर क्यो रात-दिन चितन किया करते हो ?

इतना ही ध्यान रक्खो कि वे क्या मेरे किसी हितमे काम आ सकते है ? मेरे कल्याण मे कैसे साधक हो सकते है ? जब तक हम जानते हैं कि उनमे हमारा कल्याण होता है तब तक हम भूले हुए है। अरे उनसे हमारा भला नही होगा। उनके सम्पर्कसे तो हम जहाके तहाँ ही है और वहाँसे भी कुछ नीचे हैं। कौनसे पदार्थ हितरूप है—निर्णय करो और निर्णय आ जाय तो परपदार्थोसे उपेक्षा भाव कर लो। कोई मेरा हितरूप नहीं, इसलिए किसकी चिंता करके, किसका विचार करके अपने आपको बर्बाद करे ? सब ओरसे हटकर केवल ज्ञान-

मात्र, प्रतिभासमात्र मैं हू—ऐसा दृढ सत्यका आग्रह करके मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ। सुखी होनेका दूसरा उपाय अन्य नही है। मैं ही मान जाऊँ कि मैं सब कुछ हू, परिपूर्ण हू, अधूरापन मेरेमे नही है। मेरा बाहरमे करनेका कोई काम नही है। मैं हू, ज्ञानमय हू, ज्ञानमे ही बर्तता रहता हू, इसके आगे मेरा काम नही है। अन्यको मान लूँ कि मेरा काम है। इसमे गल्ती है। दु.ख होना प्राकृतिक बात है। जिसमे हू मान लू तो दु ख होने की कोई बात ही नही है। हम तो भगवानस्वरूप है। जैसा जानन भगवानका है तैसा ही मेरा है। मगर हम तो बहुतसी बाते बनाकर जानते है, जैसा है वैसा नही जानते हैं।सो देखो उन से भी बढकर बन गए हैं। कोई छोटा आदमी किसी बडे आदमीसे स्पर्धा करे, हिम्मत करे कि मैं इससे बडा बन जाऊँ तो इसका फल पतन है। हम भगवानसे बढकर बनना चाहते है। भगवान नही जानता है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह मेरी चीज है, यह फलाने की चीज है। मगर हम कहते है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह चीज मेरी है इत्यादि। वह भगवान तो शुद्ध है, सीधा सावा सही जानता है, अक्लमद नही बन रहा है। जैसे वह इस मकानको ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणमता है, रूप रस, गंध स्पर्श वाला है पुद्गलोका स्कन्ध है, जैसा है तैसा इसे जानता है प्रभु। यही जानन है। और यह मैं जो नही है उसे भी जाननेका विकल्प करता हू। मोही यह जानता है कि यह अमुक लालका घर है, अमुककी चीज है, अमुक लाल की चीज है। परन्तु वह प्रभु तो जो है उसे ही जानता है और जो नहीं है उसे नही जानता है। यह जगतका प्राणी जो है वह नहो जानता है और जो नही है वह जानता है।

हे आत्मन्! २४ घटेके समयमे कुछ ही समयमे यथार्थ जानकारी कर लो, सम्यग्ज्ञान कर लो। हे आत्मन्! अपनेसे अलग चीजमे लगनेमे कोई फायदा नही है। अगर स्वच्छ उपयोगको जान जावो तो रोज-रोज लाभ ही मिलता रहेगा और जो मोहमे ही रहेगा तो उसे अतमे मिलेगा कुछ नही। जाना पडेगा अतमे अकेला ही। मुट्ठी बाँधे आया है और हाथ पसारे जावेगा, यह कवियोकी एक कल्पना है। जब बच्चा पैदा होता है तब मुट्ठी बँधी ही रहती है। कवियोकी ऐसी कल्पना है कि जो पूर्वजन्ममे पुण्य किया है उस पुण्यको ही वह मुट्ठीमे लिए हुए है। जन्मते समय उस बच्चेके पास सब पुण्य होता है परन्तु ज्यो ज्यो आयु बढती है, विषय कषायके भाव बढते हैं पुण्य खुलता है त्यो-त्यो हाथ खुलता जाता है। वह मरते समय तक सब पुण्य खत्म कर चुकेगा विषय कषायोंमें रत होकर। जिन्होने बचपनमे ज्ञान नही किया, जवानीमे विषयोसे उपेक्षा नही की और चाहे जो कुछ भी जीवनमे धर्मक्रिया की हो, व्यवहार किया वह कुछ नही रहता है, केवल विषयकषायोकी आकुलताए ही रहती है। जन्मते समय बच्चा केहाँ-केहाँ बोलता है। कवियोकी कल्पना है कि बच्चा सोचता है

कि 'मैं कहाँ था और कहा आ गया ? कैसा सुखसे था और अब कहाँ दुःखोमे आ गया ?' बचपनमे माँ बापने खूब लाड-प्यार किया, खूब मौज किया। विवाह हो गया, स्त्री प्रसग किया और एक क्षणको भी अपने आत्मस्वरूपपर ध्यान न दिया तब, जब वृद्धावस्था आयी, दु.खोसे घिरे तब पछतावा करते है। विषयकषायोकी भावनाएँ रखनेका ही कुफल इस वृद्धावस्थामे मिलता रहता है।

अगर बचपनसे ही अपने आपके स्वरूपके अध्ययनपर ध्यान लगता, धर्मके काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्थामे नही आती। ये जगतके प्राणी जन्मते समयसे ही विषय कषायोमे मोहमे रहे, आरम्भ परिग्रहमे रहे और धर्मके कार्योमे न लगे। निजके स्वरूपको न देख सके तो तब अंतिम अवस्थामे बरबाद होते हैं, दुखी होते रहते है। मरनेके समय उनकी वैसी गति हो जाती है जैसी कि मति रहती है। वे जन्ममरणके चक्रमे ही पडे रहते है, ८४ लाख योनियोमे ही वे पडे रहते है। अनेक प्रकारके शरीरोमे जन्म ले करके जो इस मनुष्य शरीरके जन्ममे आते हैं और अपनी जिम्मेदारी नही रखते है, अपनी जिम्मेदारी न रखनेसे ही वे खराब होते रहते है और अपने भविष्यको खराब किया करते है। जिन्होने अपनेको उत्तम बनाकर अपने भविष्यको बनाया, अपनेको अपने आपके उपयोगमे लगाया तो उनकी सद्गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्यको खराब किया, आत्मतत्त्वको न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हमे अपनी जिम्मेदारी अनुभवमे लेनी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार-पाँचसौ कम आते है तो कम आने दो। नष्ट होते है तो नष्ट होने दो, उनसे तुम्हारा कोई सम्बध नही है। मेरा सम्बध तो मेरे परिणामसे है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभावके अनुकूल है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दु ख होगे। भाई अपने पर्यायके गर्वमे आकर अपनेको महान् समझना और दूसरोको तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नही है। यदि ऐसे ही विचार बने रहेगे तो अपने सही स्वरूपका पता नही हो पायगा और यदि यथार्थ विचार बनेंगे तो कोई उपद्रव नही होगा और न दु ख ही होंगे।

सब ज्ञानी है, ऐसी दृष्टि रहे और जिस दृष्टिके प्रतापसे बडा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रहे। अगर ऐसा सत्य व्यवहार रहे तो लाभमे रहे और अगर न रहे तो मोहका स्वप्न है। जो चाहो विकल्प कर लो, मगर फल खराब ही रहेगा, कोई हित नही रहेगा। यह उपयोग सिंहासन ऐसा स्वच्छ स्वभावका है कि जिसपर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही है, चाहे प्रभुका ज्ञान हो, चाहे अलौकिक ज्ञान हो, ऐसे आसनपर मोही जीव मोही जीवोको बैठाकर, जगतमे रुलने वाले अज्ञानी जीवोको बैठाकर गदा कर रहा है ना। मैं अपने आपको गदा न करू तो स्वच्छ ही बना रहू। अपने आपको शुद्ध एव स्वच्छ बनाओ। यही तेरा सर्वस्व है और यही तेरा सिंहासन है।

अपने आपको यह समझो कि मैं सबसे निराला, ज्ञानानन्दघन, भावात्मक, चैतन्यस्वरूप पदार्थ हू, इस प्रकारकी दृष्टि अपने निज प्रभुपर रहे तो यही यथार्थ ज्ञान है। राग, द्वेष विकार इत्यादि की तरगें तेरेमें न हो। ऐसा यह तेरा प्रभु ही याने तेरा स्वरूप ही उत्कृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग अपने प्रभुके प्रति लगाए रहे तो हमारा उपयोग स्वच्छ होता है और सारे उपयोग पाप, अज्ञान और मोह इत्यादिसे ससारमे रुलना ही बना रहता है। अगर इस ससारमे ही भटकते रहे तो सदैव अपवित्र ही बने रहेगे। इस जगतके प्राणीको अपवित्र रहना ही सुहावना लग रहा है। इसमे ही विपत्तिया हैं, दुःख है। यदि यह प्राणी अपने उपयोगसे परलगावको टाल दे तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्तिका मार्ग मिल जायगा।

अरे अपनेको बरबाद किये जा रहे हैं। अपने आपके अन्तरङ्गमे दृष्टि नही लगाता है। यह एक बडा भारी जीवको सकट है। अरे इनको क्या सकट माने? १० हजार रुपयेका नुकसान हो गया, अमुक गुजर गया। इनमे तू सकट मानता है। मेरी आत्मा जाननस्वरूप है, जाननको ही लिए हुए है, स्वच्छ है। जिनका सयोग है, होगा उनका कोई रोकने वाला नही है। अपने स्वरूपको देख, तू सर्वदा पूर्ण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्न चित्त रहेगा, परन्तु यदि अज्ञानी है तो निरन्तर दुःख ही रहेगे। इस तरह अगर बाह्य पदार्थोंमे ज्ञान पाता है कि यह मेरा है, यह उसका है तो यह एक बडा भारी सकट है। इन सकटोका करने वाला मैं ही हू। मेरेमे सकट इन बाह्य पदार्थोके उपयोगसे ही आता है। जो साधु जन हैं, योगी जन हैं, प्रभुके भक्त है वे बाह्यमे अपनेको नही फसाते हैं। यही कारण है कि उनके पास सकट नही आते है। जिन बाह्यको अपने उपयोगमे लाकर सकट सहते हो, मौज मानते हो वे सकटोको बढाने वाले हैं, सकटोके हटाने वाले नही है। अरे सकटोके बढाने वालोसे इतना मोह और हटाने वालोसे इतनी विमुखता। जो सकटोको देते है उनमे इतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिलते है उनसे मोह अधकार मिलता है, राग मिलता है जिसका फल क्लेश ही है सो क्लेश सहते जाते और उसीमे मौज मानते जाते हैं। जैसे मिर्च खाने की आदत हो जाती है। खाते जाते हैं, सी-सी करते जाते है, आँखोसे आँसू गिरते जाते है, दुःखी होते रहते है, फिर भी खाना नही छोडते है। ये सब बाहरी पदार्थ है। इनमे जो बुद्धि करेगा उसे उपद्रव प्राप्त होगे, दुःख होगे, सकट होगे। सकट सहते जाते है और प्रीति करते जाते है। उनसे बच्चोसे, स्त्रीसे, घरके लोगोसे, रागके झगडे चलते रहते है, रिसा जाते हैं, रूठ जाते है और शामको फिर लो अपना लिया। इस तरहसे इन मोहियोका काम चलता रहता है। गृहस्थीमे रहे, और परिवारके लोगोको छोडकर रहे, यह तो नही हो सकता है। रहो, पर भीतरसे ज्ञान साफ होना चाहिए।

मेरा मात्र मै ही हू, मेरा सर्वस्व हितकर मैं ही हू इसलिए अपने आपमे साफ बना रहता हू । अगर मैं अपने आपमे मजबूत हू तो किसीकी ताकत नही कि दुखी करदे । ऐसी ताकत अपने आपसे बना लेनेसे दुःख नही बन सकते है । ये जगतके पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरे नही है । ऐसे भिन्न अगर बन जावें तो दुःख नही हो सकते है । महिमा तो ज्ञानकी है और तो फिजूल है । महिमा तो एक ज्ञानमे ही है । शुद्ध ज्ञान है तो विजय है और नही है तो मलीन है, और मलीन होने से सर्वत्र सकट ही सकट है । ये संकट कोई दूसरा थोडे ही लाता है, खुद अज्ञानी है तो सकटमे फसे । अपनेको सकटोसे बचाना है तो उपाय सही बने और आत्मस्वरूप ही ज्ञानमात्र है आनन्दघन है, अपने आप ही परिणमता रहता है, इसके बाहर मै कुछ नही हू—ऐसा उपयोग बने ।

अरे सेवा करता कौन है ? भीतरसे कषायकी प्रवृत्ति होती है, उससे प्रेरित होकर सेवा करते है, अपने भीतरसे ऐसा ज्ञान जगे कि मैं ज्ञानमय हू ज्ञानानन्दघन हू, मैं अपने परिणमनेके अतिरिक्त कुछ नही करता हू तो वह सदा सुखी रहेगा ।

एक आदमी था । वह अच्छे घरानेका था । किसी कारणसे उसको कैद हो गयी । कैदमे चक्की पिसाई जाती थी । चक्की पीसता रहता था । कभी-कभी यह ख्याल आ जाता कि अरे मै अच्छे घरानेका हू और चक्की पीसना पडता है । वह यह नही सोचता कि यह जेलखाना है चक्की पीसना ही पडेगा । वह यह सोचकर कि मै अच्छे घरानेका हू, चक्की पीसना पड रहा है, दुखी हो जाता है और कषाय भी आ जाती है । यह सोच सोच कर दुःख बढने हो जाते है । उसे यदि यह मालूम हो जाय कि यह जेलखाना है । चक्की पीसना ही पडता है तो उसका दुःख चोथाई रह जायगा और यदि रईसीके ख्यालके परिणाम रहे तो दुःख चौगुने हो जाते है ।

अगर यह परिणाम बने कि मै ज्ञानमात्र हू, मेरा भावात्मक ज्ञान स्वरूप है तो ऐसा ज्ञान करने पर प्रसन्नता ही रहेगी, आकुलताओंका नाम नही रहेगा । जैसा मैं हू वैसा न सोचकर औपाधिक नाना माया रूपो रूप सोचता हू तो दुःख व सकटोके पहाड टूट पडते है । ये दुःख सकट के पहाड भी मायारूप है केवल काल्पनिक है । मैं अपने ज्ञानसे ही यथार्थ ज्ञान को समझू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ ।

लोकमे जितनी भी प्रवृत्ति है वह सब अज्ञानका फल है अर्थात् जितने काम किए जाते है, जितनी चेष्टाएँ की जाती है, जितने व्यवहार किए जाते है सब अज्ञानसे होते है । ज्ञानका फल नही है । यह बोल, सम्बन्ध, रिश्ता मानना है, देशका काम, जातिका काम, धर्मका काम, व्यवहारका काम, चलना, उठना, बोलना, चर्चा करना, गृहस्थ धर्मपालन, साधु धर्मपालन, यावन्मात्र जितनी भी प्रवृत्ति है सब अज्ञानका फल है । ज्ञानका फल तो नि

है। जितना हट गए उतना तो ज्ञान है और जितना लग गए उतना अज्ञान है। जो कुछ हम कर रहे है वह अज्ञानका गध है, अज्ञानका फल है। ज्ञानका फल तो निवृत्ति है। प्रवृत्ति अज्ञानका फल है। यहाँ शक हो सकता है तो धार्मिक प्रवृत्तिमे भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ?

हम मित्रोको जानते है तो यह ज्ञानका फल है या अज्ञानका फल है। तत्त्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञानका फल है। तब सोचो कि हम ज्ञानका फल उत्पन्न करते है कि अज्ञानका। यदि मात्र जानना हो तो ज्ञानका फल है किन्तु इष्टपनेका भाव होना तो अज्ञान है। बहुत भीतरके सूक्ष्मकी बात कह रहा हू। हमारी वह हिंसा न हटे तो ज्ञानका फल है कि अज्ञानका फल है ? अज्ञान का फल है। अच्छा धर्मके कितने काम बताए जाते हैं, कितने व्यवहार धर्मके करते हैं ? आसन लगाते हैं, पचपरमेश्वरकी उपासना करते है, मालाएँ जपते है, यह सब लोकदृष्टिमे भले ही ज्ञान है, पर है अज्ञानका फल। ज्ञान कहते किसे हैं ? ज्ञानका उगना क्या है ? यह हम सूक्ष्म बात बतला रहे है। ज्ञान एक प्रतिभास सही जाननहार है, उसके होनेसे आत्मामे कुछ भी तरग कहाँ रहेगी ? यह तो है ज्ञानका फल और जान करके किसी भी काम को करना क्या चाहिए कि स्वाध्याय होना चाहिए। जानन होना चाहिए, साधु सेवा होनी चाहिए, देशसेवा, समाजसेवाके अन्य कार्य होने चाहियें आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञानका फल और सर्व परभावसे जो निवृत्ति है वह ज्ञानका फल है।

एक उदाहरण लो। एक रस्सी सामने पडी हुयी है, कुछ उजेला अधेरा है। रस्सी को देखकर यह भ्रम हो जाय कि यह साँप है। इस भ्रमके होनेका फल अज्ञान है। वह भ्रम मे पडकर घबडा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आखिर चलकर देखें तो कि कौनसा साँप है। वहाँ गया तो गौरसे देखा। गौरसे देखने पर यह पता चला कि यह तो कोरी रस्सी है। इतना ही जाननेसे उसने घबडाहट छोडी, कुछ चैन मिली। यह चैन भी मानना उसके अज्ञानका फल है। तो ज्ञानका फल क्या है ? अन्यरूप जानना मिट गया, भ्रम व घबडाहट गई यह तो ज्ञानका फल है और जितना लगाव है उसका फल अज्ञान है। अज्ञानको छोडो तो अपना स्वरूप समझमे आ जायगा। हम सत्सगमे बैठे है वो रागमे बैठे है, अज्ञानमे बैठे है। ज्ञानसे नही बैठे है क्योकि ज्ञानका फल तो ज्ञान है। ज्ञानका फल कही बाहर से नही आता है। अपने आत्मस्वरूपसे ही आता है। भगवानकी पूजा करू, साधुजनो की सेवा करू तो वह सब राग है, अज्ञानका फल है। रागका होना यह अज्ञानका फल है अज्ञानसे राग पैदा है। ज्ञान कितने भीतरकी मर्मकी चीज है ? हम इस ज्ञानको जानते हैं या नही इसकी परख कर लो। केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्तिको ही धर्म जान कर सतुष्ट हो जाते हैं लोग या इतना ज्ञान हो चुकनेके बाद सतोष कर लेते हैं, मगर ज्ञान तो और इससे बढ

कर अन्तरमे रहता है । ज्ञानमे केवल ज्ञानानन्दका दर्शन रहता है । ज्ञानदृष्टिका फल निवृत्ति होना चाहिये, यह शुद्ध केवलज्ञान की चर्चा है । यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो भगवान्का यह स्वरूप है विदित हो जायगा । यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो उसके कारण हमपर क्या गुजरेगा ? केवलज्ञान । जानना मात्र ही ज्ञानका फल है । ज्ञानका उपासक प्रभुके इस स्वरूप मे झुकेगा । यदि बाह्य भक्तिमे लगेगा, पूजनमे लगेगा, नाचने लगेगा तो यह ज्ञानका फल है कि रागका ? अरे यह रागका फल है । आज देखो दुनियामे रागसे लोग कितना नाच रहे है । ज्ञान कही मिल नहीं पाता है । सब देखो, परपदार्थोंमे अज्ञानतासे पडकर नाच रहे है ।

इसका यह ज्ञानस्वरूप हम और आपके भीतर तो है उसको यह मोही जीव नही देखता है । परपदार्थोंमे ही पडकर मुसीबतें सह रहा है । यह भी अज्ञानका फल है । इसी तरह उन सबकी प्रवृत्तिमे व्यवहारमे भी अज्ञानता ही है । जैसे गति, इन्द्रिय कषाय, योग विषय इत्यादि को उपेक्षित करके मात्र ज्ञान किया जाय तो वह प्रकाशमय है । ऐसा यदि नही है तो कर्म सचित हो जाते है । उस ज्ञानके होनेसे ही ये कर्म भस्मीभूत हो जाते है । तब तो बतलाओ, कोई पुरुष साधु होकर भी, मुनि होकर भी यह ख्याल करता रहे कि मै मुनि हू, मैं साधु हू, मै ऐसा हू, मैं वैसा हू, यह तो मिथ्यात्व होगा ना । कोई गृहस्थ यह विचार करे कि मैं गृहस्थ हू, मैं बाल-बच्चो वाला हू, मैं दूकानदार हू इत्यादि ये सब मिथ्यात्व है, अज्ञानता है । लो उस साधुने भी अपने आप यह सोच लिया कि मैं साधु हू । जैसे कि गृहस्थ ने अपने आपमे यह सोच लिया कि मैं गृहस्थ हू । पर्यायकी पकड दोनोमे है, सो दोनो आशय परसमयके है । पर वे न तो साधु है और न गृहस्थी हैं । वे तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ है । वे सब अपने आपमे है । अपने आप ही परिणमते रहते हैं । यह कैसे मान लिया कि मैं आफीसर हू, मैं दूकानदार हू, मै फला हू । अरे ये सब तू कुछ नही है । तू तो ज्ञानानदघन, चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ है । प्रतीतिकी बात चल रही है । विश्वासकी बात बोल रहा हू कि तुमको यह विश्वास है कि मै गृहस्थ हू । इसमे तो मोह होगा । गृहस्थका यह विश्वास कि मै गृहस्थ हू, साधुका यह विश्वास कि मैं साधु हू तो मोहमे दोनो दब गए । अरे मै तो एक चेतन पदार्थ हू । अगर गृहस्थ, साधु बन गया तो यह आफत है । अरे अज्ञान और मोहसे कुछ फायदा नही हो सकेगा । जो कुछ कह रहे है वे सब उल्टी बातें मालूम होगी, मगर ये सब विश्वासकी बातें है । इस लोकमे बहुतसी कलाएँ लोगोने सीख ली है—कोई सगीतकी कला, नृत्यकी कला, बोलनेकी कला, भाषण करनेकी कला इत्यादि सीख लेते है । ऐसी कलाकारीको जानने वाले अपने मनमे सतोष रखते है कि मै बहुत बुद्धिमानीका काम कर रहा हू । मै देशकी, समाजकी सेवा कर रहा हू । भाषण देने वाले जानते है कि मै ढगसे बोल

है। मेरेमे यह ज्ञान आना चाहिए कि मैं ज्ञानमय एक तत्त्व हू। मेरा तो ज्ञानदृष्टिमे ही रहने का काम है। गृहस्थका जैसे गृहस्थी धर्मका कार्य आफत है वैसे ही मेरेको सर्व प्रवर्तन आफत है। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि मै गृहस्थ नही हू, मैं तो ज्ञानानन्दमय एक तत्त्व हू, चैतन्यस्वरूप हू। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नही हू। यदि ऐसा विश्वास हो जाय तो वही ज्ञान का मार्ग है।

जितनी लोकमे प्रवृत्ति है, झुकाव है वह सब अज्ञानका फल है। हममे अगर यह बुद्धि आ जाय कि हमने यह कर लिया तो वह अज्ञान है। हमारा यह विश्वास होना चाहिए कि मैं चैतन्यमात्र हू, केवल जानन ही जानन हू।

जैसे कोई आदमी अपराधमे पकडा गया या व्यापारके विरुद्धमे पकडा गया। उस पर १००० रु० का जुर्माना कर दिया गया। अब उसने गिडगिडाना शुरू किया। कोशिश करने पर ५० रु० जुर्मानाके रह गए और ९५० रु० छोड दिए गए। ५० रु० वह हँसी खुशीसे दे रहा है। १००० रु० देने थे और ५० रु० ही रह गए। हायोसे दे रहा है, मगर सकल्पमे यह लग रहा है कि ये भी न देने पडते तो ठीक था। ५० रु० खुश हो करके तो दे रहा है, मगर भीतरसे यह प्रवृत्ति बन गई है कि ये भी न देने पडते तो अच्छा था। इसी तरह ये सब जुर्माना है। अटपट प्रवृत्तियाँ मानो एक हजारका जुर्माना है, गृहस्थ धर्ममे केवल मानो ५०० रु० का जुर्माना है। साधु-धर्म केवल ५० रु० का जुर्माना है। तो वह गृहस्थी यह सोचेगा कि यह जुर्माना रागप्रवृत्तिसे हुआ। अगर ज्ञाता दृष्टामात्र मैं रहता तो ठीक था। यह ज्ञानका फल है। ज्ञानका फल है निवृत्ति। यावन्मात्र प्रवृत्ति है वह रागका फल है। साधु पुरुष भी आहार करने जाते, चर्चा करने जाते, उसमे राग है या नही। वे रागके काम है। ये रागसे होते है। ज्ञानसे आनन्द और रागसे बू आती है। गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करता है और साधु अपनेको साधु पर्यायरूप अनुभव करता है तो मोह तो दोनोमे हुआ। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मतत्त्वका तो जाननका काम है वह मोक्षमार्ग है। मोक्ष-मार्ग इस आत्मस्वरूपके भीतर भरा हुआ है, पुरुषके हाथ और पैरोमे नही भरा हुआ है।
रहा हू, समाजको देशको रास्तेमे लगा रहा हू। इतने कामसे उसे सतोष होता है। ऐसी दृष्टि द्रव्यलिङ्गी साधुपुरुषकी भी हो रही है। देखो भाई उन साधुवोमे मोह कितना अन्तरमे होता है ? जैसे कहते है कि साधु मुनि शत्रुसे भी विरोध नही करते है, उनमे क्षमा रहती है, दया रहती है। इसी क्षमा और दयाकी वजहसे ही वे मोक्षमार्गको कहते है। वे ससारके सुखोको नही चाहते है। वे रहते हैं, तपस्या करते है, स्वाध्याय करते हैं, धर्म करते हैं, आराधना करते है और मोक्षमार्गमे लगू—ऐसी चाह लिये हुए होते हैं। कुछ याने द्रव्यलिङ्गी साधु ऐसे भी होते हैं जो यह समझते है कि मैं तो साधु हू, मेरा यही काम है। अरे यह मिथ्यात्व

एक दृष्टान्त है कि एक सेठ था। वह चावल बेचनेका काम करता था। वह ठेलों धान खरीदता था और उन धानोसे चावल निकालकर दो चार ठेला चावल बेचता था। एक आदमी उसके पीछे लग गया। सोचा कि जैसा सेठ करता है जिससे कि यह धनी हो गया है वैसा मैं भी करूँगा। वैसा करने से मैं भी सेठका जैसा धनी बन जाऊँगा। देखा कि सेठने कुछ सामान खरीदा। चावलके ऊपरके छिलके तो मटमैले ही थे। सो पिछलगे व्यक्ति ने देखा और उसने भी मटमैले ही खरीदना चाहा, वैसी मटमैली चीजका मोटर भर लिया। वह लेकर बेचने गया। ठीक जैसे सेठ करता था वैसे ही वह व्यक्ति भी करता था।

उस सेठको तो नफा हुआ, मगर उस व्यक्तिको टोटा आ गया। अरे धानके अन्दर जो चावल होता है उसकी महिमा होती है, धानके छिलके की महिमा नही होती है। इस बातका उस पिछलगे व्यक्तिको पता ही नही था।

इस ही प्रकार शुद्ध धर्मकी जानन परिणति है। इस धर्मके सगसे धर्मक्रियावोकी महत्ता है। उसकी महिमा ज्ञानदृष्टिके कारण है और इस ज्ञानदृष्टिकी ऐसी प्रवृत्ति न हो तो उसकी महिमा कुछ नहीं रहा करती। ज्ञानदृष्टिके कारण ही इस धर्मप्रवृत्तिकी महिमा हो जाती है। वह ज्ञान ज्ञान है, उसका फल निवृत्ति है। ज्ञानका साम्राज्य निवृत्ति है। यह सब ज्ञानका फल है।

अब हम इतने बडे महिमा-निधानके बीचमे रहते है, बाहरसे देखो तो नाना प्रकार की विषयोकी बाते चारो तरफ घूम रही है। जब ज्ञान जगता है और बाहरी फैली हुई दृष्टिका सकोच करता हैं तो स्थूल पापोका त्याग करता है, जिस प्रवृत्तिके बीच इतना गृहस्थधर्म बन गया है। सो उसमे जो रागके अश रहा करते है वे तो पाप ही कहलाए। इसका जितना निवृत्तिका अश है वह धर्म है। जितना वहाँ प्रवृत्तिका अश है वह अधर्म है वही अज्ञान कहलाया। जैसे विवाह कर लिया। एक स्त्रीसे सतोष हुआ तो हजार स्त्रीसे छूटे। क्या आपका धर्म है कि एक स्त्रीमे लगे रहे। नही, अनेक स्त्रियोके विकल्पसे छूटनेके लिये वह उपक्रम है। जितना हटाव है वह ज्ञान है। उस एक की ही ओर झुकाव और लगाव तो अधर्मका काम है। अनेक स्त्रियोके विकल्पसे छूटे वह हटाव धर्मका काम है, व्यवहारधर्मका काम रागका काम, कहीं जुटनेका काम, जितने भी है, जितनी भी प्रवृत्तियाँ है वे सब अज्ञानसे है।

अच्छा अब गृहस्थधर्म भी छोडा, आरम्भ छोडे, परिग्रह छोडे शुद्ध मार्ग की दीक्षा ले ली, शुद्ध चर्यामे रहने लगे। इस साधुप्रवृत्तिमे भी गृहस्थका परिग्रह हट गया, इतना धर्मका काम है, शुद्ध चलने लगे शुद्ध उठने लगे, शुद्ध खाने लगे तो वे अब रागके काम है। जितनी निवृत्तिका अश है वह ज्ञान है और जितनी प्रवृत्तिका अंश है वह अज्ञान है। और भी देखिये भैया! जैसे गृहस्थके योग्य शुद्ध व्यवहार, शुद्ध चर्यामे रहते हुए भी वह गृहस्थ उस व्यवहार

से विरक्त रहा करता है, इसी तरह साधु भी शुद्ध सम्यग्ज्ञानके अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहारसे विरक्त रहा करता है।

एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब, परिवारमे रहते हुए भी अपनेको भिन्न समझता है, न्यारा समझता है। अहितरूप है, ऐसा जानकर परिवारसे विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहते हुए भी उस प्रसगसे विरक्त है। शुद्ध ज्ञानके काम की यह बात चल गयी और लम्बी खिच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धर्म है और जितना लगे उतना अधर्म है। ज्ञानका काम मात्र निवृत्ति है। इतना ही ध्यानमे लाना है। तो यह निवृत्ति ज्ञानका साम्राज्य है। यदि मैं अपने साम्राज्यकी ओर अर्थात् निवृत्ति का उपयोग कर मैं प्रवृत्तिसे हट जाऊँ तो मै सुखी होऊँ।

देखो जितने भी सुख मिलते हैं वे हटनेसे मिलते है, लगनेसे नही मिलते हैं। गृहस्थी मे रहते हुए भी उससे हटकर रहनेमे जो आनन्द मिलता है वह आनन्द उसमे लगनेसे नही मिलता है। गृहस्थीमे लगनेसे रचमात्र भी आनन्द नही मिलेगा। आनन्द इच्छाके अभावसे मिलता। इच्छाकी पूर्ति व इच्छाका अभाव कहो बात एक ही है। हटना ज्ञानका काम है और लगना अज्ञानका काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटनेसे होता है, लगनेसे नही होता है। जैसे एक मित्रका पत्र आए कि १० बजे हम गाडीसे आ रहे है। बस पत्र पाते ही सब तैयारीमे लग गए। वह इसलिए कि मेरा मित्र आ रहा है, मैं अपने मित्रसे मिलूंगा। वह मिलनेके कारण ही जल्दी जल्दी काम करता है। रसोई जल्दी जल्दी बनवा ली और भी जितने काम है जल्दी-जल्दी कर लिये। देखो ये सब व्याकुलतायें क्यो की जा रही है, इसलिये कि मित्र मिलनके कामोमे अपना लगाव रक्खा। १० बजे स्टेशन पहुचे, पूछते हैं कि गाडी लेट तो नही है। यदि कोई कह दे कि अभी १० मिनट लेट है तो दुखी हो गए। गाडी आते ही झट इस डिब्बेमे देखा उस डिब्बेमे देखा। मित्र मिल जाता है तो वह आनन्दमय हो जाता है। अच्छा अब यह बताओ कि उसे आनन्द मित्रके मिलनेसे आया है कि मित्रके मिलनेका काम हट गया इससे आया है, इसका उत्तर दो। अरे उसे मित्र के मिलनेसे आनन्द नही। उसके मिलनेका विकल्प हट गया उसका आनन्द। क्योकि अगर मित्रमे मिलनेका आनद है तो मित्रमे डिब्बेके अदर मिलता ही रहे। इधर-उधर डिब्बेसे बाहर न झांके। गाडी चलने वाली है तो वह बाहरको झाकता है। अरे बाहर क्यो झांके ? यदि मिलता है तो मिलता ही रहे। मित्रसे मिलनेका काम समाप्त हो गया, इससे तो आनद आया, किन्तु अब उसे घर जानेका लगाव हो गया लो दुखी हो गया, उस लगावसे दुःख होगा। उसका जितना भी दुःख है, लगावका है।

मित्रसे मिलनेकी इच्छा हो गयी। इच्छासे ही दुःख मिला है। इस दुःखसे दूर होनेके

लिये ही वह मित्रसे मिलने जाता है, क्योंकि उसको विकल्प सता रहा था। अरे यह विकल्प स्वय ही पहिलेसे न रहे तो क्या आनन्द न आवे ? आनन्द अवश्य आयगा। यदि ऐसी भावना हो कि भाई विकल्प न करो, वहाँ क्या रक्खा है ? उनसे इच्छा न करो। इस तरह मिलनकी इच्छा ही न हो तो वहाँ भी अनाकुलता है। जो इच्छाएँ हो उन्हें समाप्त कर दो, इन्द्रियोंके विषयोमे बरबादी है। यह एक अन्तरके मर्मको देखकर कह रहा हू। अरे विषयोमे अगर लग गए तो समझो विषयोमे ही जल गए और मिट गए तो इच्छाओका अभाव कैसे हो जायगा ? विषयबुद्धि के होनेसे इच्छाओका अभाव नही हो सकता है। विषय प्रवृत्ति अधर्म है। अगर विषय प्रवृत्ति नही हटेगी तो लगाव भी नही हटेगा और आनन्द भी नही आयगा। अपने ज्ञानको अन्यके लगावमे लगाना ही अज्ञानका फल है। निवृत्तिका तो फल ज्ञानका है और प्रवृत्ति फल अज्ञानका है।

अपने आपके भीतरमे निवृत्ति स्वरूप शब्द निरपेक्ष केवलज्ञान जिसका काम है, ऐसा ज्ञानमय मेरा स्वरूप है। मेरा काम क्या है ? देखना नही, बोलना चालना नही, हाथ जोडना नही और और करके अपनी बातोमे लपेट लेना नही। जितने काम लगावके है, व्यहारके है वे सब अज्ञानसे होते है। ज्ञानसे केवल एक प्रवृत्तिका अभाव होता है, नथिङ्ग, कुछ नही करता है, कुछ नही सोचता है, कुछ नही बोलता है या कुछ काम नही करता है। ऐसी जो निवृत्ति है, जिसमे काम तो बराबर स्वभावविकासका लगा रहता है। जानन, जानन, जानन, केवल जानन ज्ञानका काम है। ऐसा साम्राज्य हो और स्वयकी पहिचान हो तो उसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होगा, नही तो नही प्राप्त हो सकेगा।

मैं आत्मा जो हू वह हू, जैसा स्वरूप है उस ही स्वरूपमे हू। मैं अन्य सब पदार्थोंसे विलक्षण, जानने, देखनेकी स्वभावकलामे तन्मय हू। यह एक भावात्मक पदार्थ है, जिसमे रूप नही, रस नही, गध नही, स्पर्श नही। केवल चितानन्दघन, चैतन्यस्वरूपमात्र एक ऐसा विलक्षण सत् हू। इस ही को ब्रह्म कहते है क्योकि ब्रह्म नाम उसका है जो ज्ञानसे बढता हुआ रहे, वही ब्रह्म है। अपने ज्ञानको बढ़ाने की कला इस आत्मामें है। पुद्गल तो रूप है, पुद्गल बाह्य है। पुद्गलके गुणका ऊँचेसे ऊचा विकास हो तो क्या होगा, रूपका क्या होगा ? परतु आत्माके ज्ञानगुणका विकास ऊचा क्या होता वह कहा जा सकता। आत्माके ज्ञानका विकास हो तो सभी कुछ ज्ञानमे आयगा। इसका स्वभाव बढनेका है। जैसे कोई स्प्रिग होती है उसे दबाएँ तो दबी रह जायगी और छोड दें तो स्वत. उठी रहेगी। इसी प्रकार यदि ज्ञानको विषय कषाय परिणामोके द्वारा दबावें तो दब जायगी और यदि दबाएँ नही तो ज्ञान फैलता ही जायगा। ज्ञानके फैलनेका तो स्वभाव ही है। ये विषय कषायोके परिणाम, रागद्वेषादिक भाव ज्ञानको दबानेके कारण हैं। जब तक ये विकार रहेगे तब तक ज्ञान दवता

ही रहता है । विरोधीपन हटे, आत्मतत्त्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाता है । क्योकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढता हुए ही रहे । इसलिए आत्माका नाम ब्रह्म है । इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है । यह आत्मा विष्णु कहलाता है, क्योकि विष्णु उसे कहते है जो व्यापक है । जिसका स्वभाव ही ऐसा है कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है । ज्ञान वह कहलाता है जिसमे बीचका कोई हिस्सा न छूटे । जैसे किसी टकीमे पानी भर दिया जाय तो पानी लबालब भरा हुआ है । उस पानीमे ऐसा नही है कि कही एक इच पानी न रहे । जो पानी भरा हुआ है वह पानी पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है । उसका कोई भी स्थान खाली नही रह सकता है । इसी तरह इस ज्ञानका फैलावा है कि यह ज्ञान सर्वत्र फैल जाता है । किसी जगह खाली नही रह सकता है कि लो मैं अमुक कोू नही जानता । जैसे टकीके बीच कोई चीज उठी हुई आ जाय या कोई चीज पानीमे ऐसी पड जाय जिसमे कुछ टीला सा हो तो वहाँ पानी नही पहुच सकेगा । पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुच सका, ऐसी बात नही है, किन्तु वहाँ कोई चीज ऐसी आ गयी है जिससे रुकावट आ जाती है । इसी प्रकारसे ज्ञानमे विषयकषायोकी आड आ जाती है जिससे ज्ञानके विकसित होनेमे रुकावट पैदा हो जाती है ।

यदि कही ज्ञान न पहुचा तो वहाँ पर ज्ञानके स्वभावके कारण नही पहुच सका ऐसी बात नही है । ज्ञानके विकसित होने मे जो रागादि भाव रुकावट पैदा करते है उसीसे ज्ञान वहाँ नही पहुच पाता है । ज्ञानका स्वभाव सर्वत्र फैल जाने का है, सब जगह व्याप जानेका है । ऐसे ज्ञानका स्वभाव व्याप्त होना ही है इसलिए ज्ञान ही विष्णु है । यह ज्ञान ही जिन है अथवा जिनेन्द्र है । जिन कहते उसे हैं जो समस्त बाह्य पदार्थोंको जीत ले, खत्म कर दे और स्वय शुद्ध स्वच्छ बना रहे । उसे ही जिन कहते है । जिन ज्ञान ही है, सो यह भावात्मक तत्त्व है कि ज्ञान ज्ञान ही है, जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमे दूसरेका प्रवेश नही है । यह अपन ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा हू । ज्ञान का काम सुन्दर शुद्ध प्रतिभासको बार-बार पैदा करते चला जाना है । कब तक ? अनन्तकाल तक । इसलिए इस ज्ञानकी शुद्ध, स्वच्छ, सुन्दर एक सृष्टि करता रहे वह ज्ञान है । जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाहे वह बिगड जाय, रूठ जाय, गुस्सा हो जाय, मलीन हो जाय, आपेसे बाहर हो जाय तो भी यह पूर्ण ही रहता है, पूर्ण ही परिणमता है । यह जगत जितना दिखता है उस रूपमे रचना हो जाय यह भी ज्ञानमय आत्मदेवकी सृष्टि है । ऐसा यह ज्ञान तत्त्व भीतरका है । यह ज्ञानतत्त्व मलीन हो जाय, काबूमे न रहे, सयत न रहे तो बिगडा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियो को कर डाले, ऐसी ज्ञानकी महिमा है । यही ज्ञान पदार्थ, जीव तथा वृक्षके रूपमे आ जाता है । मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव जन्तु जितने भी हैं उन सबके रूपमे यह

ज्ञान आता है। यह ज्ञान हीं ब्रह्म है। इसका ऐश्वर्य स्वलक्षण है। शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध सृष्टि करे सब ज्ञान की महिमा है। उसके ऐश्वर्यका पता लगा लेना बिरले ही सूक्ष्मदृष्टि ज्ञानी योग्यका काम है। कैसा है यह ? कुछ नही हैं और सब कुछ है। ज्ञान तत्त्व है। जिसके अन्तरणमे कुछ नही है और सब कुछ है, कुछ बचा नहीं है और है कुछ पिण्ड ऐसा नही है। ऐसा जाननहार यह आत्मतत्त्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है। इसका काम जानन हैं सो अपनी ही कलासे, अपनी ही लीलासे अपना काम कर रहा है। इसका काम केवल जानन है, जान लेना। इस ज्ञानमे सुख दुःख नही, जाननका काम केवल जानन ही है। जान लो फिर उसके बाद महान् आनन्द आता रहता है। जैसे प्रयोजन अशुद्ध है तो वहाँ सकट है और जहाँ प्रयोजन अशुद्ध नही वहाँ सकटोको तो जान लिया। किसलिए जान लिया ? जाननके लिए जान लिया। मिला हुआ दूध और पानी एक क्षेत्रमे है पर दूध अलग है और पानी अलग हैं। दूधके कण दूधमे है और पानीके कण पानीमे है। दूधमे पानी मिला होने पर भी दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। यह सारा विश्व ज्ञानमे आवे फिर भी विश्व व ज्ञान अलग-अलग है। और हम और आप लोगोको तो इतनी चीजें जाननेमे आ ही रही है इनमे ही देख लो हम अलग है और ये सब अलग है। देखनेमे यह सारा लोक, सारा जगत आ रहा है फिर भी जो यह है वह मैं नही हू। जाननमे जानन है, पदार्थोंमे जानन नही। जानन की ओर ही जानन है और जाननमे ही जानन बना रहता है। किन्ही बाह्य पदार्थोंमे जानन नही रहता है।

जाननमे ही जानन बना रहता है। ऐसी विचित्रताओ और ऐसे ऐश्वर्यका पता योगी और ज्ञानी पुरुषोको ही हुआ करता है। विलक्षण ऐश्वर्यको जानकर ही उन योगियो और ज्ञानियोका मन प्रसन्नचित्त रहता है। जंगलमे योगी जन एकान्तमे रहते है। गृहस्थो को ऐसा लगता है कि जंगलमे रहने वाले लोग कैसे रहते है ? उनको कोई पूछने वाला भी नही है, उनके पास कोई नौकर नही है, कोई साधन नही है, खाने-पीनेका कैसे इनका काम चलता होगा, परन्तु उनका काम अद्भुत रूपसे चलता रहता है। वे अपने ज्ञानरस का स्वाद लेकर ही आनन्दमग्न हो जाया करते हैं। यही उनका ऐश्वर्य है। वे अपने ज्ञानअमृतमे ही छके हुए रहते हैं, इसलिए वे सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। अतः इस ज्ञानका नाम ही ईश्वर है। आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सारकी चीज दुनियाके अन्दर क्या है ? मोही जीव अपने सारसे अलग होकर बाहर को निरखा करते हैं। सारभूत चीज क्या है ? मकान हो गया, बालबच्चे हो गए, मित्र लोग हो गए, लोकके और जन ही सारभूत हो गए। ऐसी कल्पनामे इस तरहसे वे मोही बाहर ही घूमा करते है। सारको ढूढ़नेके लिए और जगह-जगह मारे मारे फिरा करते हैं। योगियोको अपने ज्ञानका पता है, ज्ञानी गृहस्थियोको भी अपने

ज्ञानका पता होता है। उन ज्ञानियोको पता है कि दुनियामे सारकी चीज कोई मिलती नही है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, कल्याणमय है। सारको, कल्याणको, उत्कृष्टको शिव कहा करते है। यह ज्ञान तत्त्व ही शिव है।

राम किसे कहते है ? राम उसे कहते है, जिसमे योगी पुरुष रमण किया करते है। जिसमे योगी जन, ज्ञानी जन, रमण किया करते है उसे राम कहते हैं। वह राम मेरा कौन है मैं जिसमे रमण किया करता हू ? वह मेरा राम है। मैं अनादिसे अनन्तकाल तक सदा अपने आपमे रमण किया करता हू। यह तो लोगोको भ्रम है कि मैं घरमे रमता हू, इन्द्रिय विषयोंमे रमता हू, दुनियावी कार्योंमे रमता हू। अरे कोई किसी बाहरी चीजोमें नही रमता है। यह खुद ज्ञानमय है, चरित्रमय है। स्वय ही स्वयके स्वरूपमे रमा करता हू, खुदमे ही रमा करता हू। कोई अपनी दुकानमे ही रमा करता है, कोई विकल्पोमे रमा करता है तो कोई जानकार विद्वान विकल्प करता है, कल्पनाएँ करता है वह उनमे रमता है और ज्ञानी योगी साधु पुरुष अपने ज्ञानस्वरूपमे रमते है और प्रसन्न होते है। मैं अपने ज्ञानमे रमा करता हू। तात्पर्य यह है कि सभी जीव अपने आपके जाननमे रमा करते है। विशेषता यह है कि कोई कैसे रमा करता है, कोई कैसे, मगर सभी अपने आपमे रमते है। बाह्यपदार्थोंमे कोई रम नही सकता है, कोई बाह्यमे लग नही सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मैं बाह्यमे रमता हू तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्यमे रम सकता है और न बाह्यमे लग सकता है। तो मैं रमता हू और अपनेमे ही रमता हू। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है, ज्ञानतत्त्वकी आत्माराम है। यह प्राणी अपनी शरण बाह्यमे ढूंढता है, बाह्यमे ही हित और अहित ढूंढनेका प्रयास कर रहा है, परन्तु बाहर कही शरण नही है। यह प्राणी इधर उधर भटकता है परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नही करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है, रक्षक है, अपने आपके लिए स्वय सर्वस्व है। जिस प्रकार हम सर्वस्व है उसही प्रकार की बाते करें तब तो ठीक है। परन्तु हे आत्मन ! यह प्राणी शुद्ध प्रगति नही करता है। यह तो उल्टी अटपटी बातें करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चैतन्यस्वरूप है वैसी बातें नही करता है।

हे आत्मन् ! अपने आपपर दृष्टि दो तो अपना प्रभु अपनेको ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापोंको हर सकता है। पाप क्या है ? विकल्प और कल्पनाएँ ही पाप हैं। ये बाहरके जो पाप है। झूठ बोल दिया, जान ले लिया, परिग्रह किया, यही बाहरी बातें पाप हैं। ये पाप होते भी कैसे हैं ? यों ही कल्पनाएँ उठती है तब यह इन पापोको करता है। इन पापोके कारण ही उसे दुःख मिला करते है। तो इन पापोको हरेगा कौन ? इन पापोको मेरा प्रभु ही हरेगा, इन पापोसे उत्पन्न दुःखोको मेरा प्रभु ही मिटायेगा। जो पापोको हरे वही

हरि कहलाता है । हम अपना प्रभु कैसे ढूढे ? हमारी शरण, हमारा रक्षक, हमारा हितू यह प्रभु ही है ।

इस एक अपने स्वरूपपर ही ध्यान हो तो सर्व सफलता है । मैं तो यथार्थ हू, कृत-कृत्य हू, स्वभावमात्र हू । यह लोकका धन कुछ महत्व नही रखता है । यह धन पिंडरूप है धन पुद्गल है, इन पुद्गलोमे कोई सार नही दिखता है । ऊँचे–ऊँचे महल, बडे-बडे धन वैभव आदि इनमे कोई महत्वकी चीज नही दिखती है । यह ज्ञानी जब ज्ञानदृष्टिसे देखता है कि मैं सबसे निराला हू, ज्ञानमय वस्तु हू तो अनुभवरसका स्वाद मिलता है । अन्यथा जिस के बारेमे जैसे विचार किये वैसा ही उसको समझ लिया और वैसा ही उसका वर्णन कर दिया । सो इसी अदर्शनके फलमे बौद्ध, भट्ट, नैयायिक, मीमासक, साख्य इत्यादि नाना प्रकार के दर्शन बन गए । पर जिसपर समस्याएँ खडी हुई है वह दर्शनका मूल आधार यह स्वयं ज्ञानतत्त्व है ।

ऐसा यह मैं ज्ञानतत्त्व हू, मेरा काम केवल जाननही जानन है । बाह्य पदार्थोंको करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मा पदार्थका काम नही है । किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले है, मैं अमुक करने वाला हू, मैं दुकान करने वाला हू, इत्यादि यह मिथ्यात्व है । ये विचार धर्ममे ले जाने वाले नही है । ये सब मिथ्यात्व है । तू है और परिणमता रहता है । इतना ही तेरा काम है । तू पूराका पूरा है । पाप बनें तो पूरा है चाहे न बनें तो पूरा है । तू तो परिपूर्ण है । जैसे लोग कहते है कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी हे, अरे तेरी आत्मा अधूरी नही है । तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नही होता है । अधूरापन तो दुनियामे होता ही नही है । यह ऐसी मानी हुयी चीज है कि जैसे अनेक चीजें मिली होती हैं । कुछ यहाँ हटा दिया, कुछ वहाँ हटा दिया तो लोग कहते है कि आधा आधा कर दिया । अरे कुछ नही कर दिया । जो चीज है वह पूरी की पूरी है ।

ये स्कन्ध हैं, ये दिखते है, ये सब चौकी, पुस्तक, कमंडल इत्यादि एक एक चीजें नही है । ये अनेक पुद्गल परमाणुवोसे मिलकर बने है । लकडी फाडी गई, हथोडेसे पीटे गए पुस्तक मशीनसे छापी गई इत्यादि अनेक पुद्गल परमाणु मिलकर बने है । इनमे आधी-आधी चीजें कुछ नही है, उनमे जो एक-एक चीज है वे सब पूरेके पूरे है इसी तरह जगतके जितने जीव हैं सब पूरेके पूरे है । अगर बिगड गए तो पूरेके पूरे बिगड गए और अगर बन गए तो पूरेके पूरे बन गए । आधा न तो बिगडेगा और न बनेगा । प्रत्येक जीव परिणमता है । अगर कोई परिणमता है तो अपने ही परिणमनसे परिणमता है, दूसरेके परिणमनसे नही परिणमता है । अगर मै विकल्प कर रहा हू तो अपना ही विकल्प कर रहा हू, दूसरेका विकल्प मैं नहीं कर रहा हू । अपनी परिणतिके अतिरिक्त मै और कुछ नही कर रहा हू । मैं परिण-

मता हू, अपने आपमे ही परिणमता हू—ऐसा अगर ज्ञान हो तो यही अमृतका पान है। जिसने अपने स्वरूपको लक्षमे न लिया, अपने को ही कर्ता धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरी दुनियामे चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो दु खोकी परम्परा उसके ऊपर आ गयी। क्योकि अपने स्वरूपको भूलकर कही भी लगो सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है।

हे आत्मन् ! अपने स्वरूपसे विमुख होना विकल्पकी परम्परा बढाना है। मैं इसको करता हू—ऐसा सोचना रागोका बढाना है और यह अज्ञानका काम है। मैं इसको नही करता हू, मेरा यह करनेका काम नही है—ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इसका न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। करनेमे क्लेश है और मना करनेमे क्लेश है। क्लेश दोनो मे ही है। अहकारको देख लो उससे ही दु ख आते है। अहकार करना या न करना, बल्कि उसके प्रति विकल्प करना ही दु ख है। इससे अपनेको पूरा नही पडेगा। मै तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखू जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है। जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अरे इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुक्सान है। भगवान सारे विश्वको जान गया, पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए, पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान फायदेमे है। अगर जाननसे आगे आ जाय तो लटोरो सटोरोकी तरह दु ख होगे। भगवान अपने स्वरूपको भूलकर अन्य कुछ नही करते। इस जो जाननके आगे कुछ फायदा सोचता है तो उसीको ससारमे रुलना पडता है। केवल जाननमात्र का फायदा रह जाय और कर्मचेतना व कर्मफलचेतनासे जुदा रहे, ऐसी दृष्टिसे आनन्द होता है। वह सब सहज पारमार्थिक आनन्द है। भक्ति वाले कहते है कि ऐसे ही क्षण मेरे व्यतीत हो। सो हे आत्मन ! तुम बाह्यमे कुछ न करो, तुम हो और परिणमते रहते हो, इतना ही तेरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नहीं है। अपने आपको देखो तो तेरेसे दु ख दूर हटेंगे और फिर समाधिका अनुभव करोगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञानविकासमे जब बढता जायगा, बढ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभावसे हटकर, बाह्यको कुछ निरखकर, बाह्यसे लाभ देखकर बाह्यमे जा पडे रहते हैं तो उनका टोटा पडता है, नुक्सान होता है। ये भोग पुण्य उदयसे प्राप्त हैं, निकट है, जरा मुडे और भोग लिये ऐसे सुगम है, सो ये भोग बडे सस्ते लग रहे है, किन्तु ये बडे महगे पडेंगे। जैसे खेतोसे कोई चला जा रहा है। खेतमे एक बेरका पेड मिले। किसी तरहसे बेर तोड लिया। इतना काम तो बडा सस्ता लगा, पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महगा पडेगा ? इसी तरह ये मोह रागादि भाव सस्ते लगते हैं, पर यह नही जानते है कि वे कितने महगे पड़ते हैं ? जरा-सी देरमे जो कुछ कर लो। सस्ते है, मगर स्वभावदृष्टिसे हटा हुआ

रहती है ना। कर्मोंके तीक्ष्ण बन्धन होते रहते हैं, जिनके उदयमे महा क्लेश हो जाता है। यह ज्ञानकी बात, सयमकी बात, साधनाकी बात, स्वरूप निरखनेकी बात इत्यादि महगी पड रही है। अरे जरासा दिमाग लगाना पडेगा कि वह सस्ता ही पडेगा। जब चाहे अपने स्वरूपको देखा। ऐसा ज्ञानस्वरूप देखो तो सुखी होगे। मेरी शरण यह मैं स्वय ही हूं। जैसा मैं हू उसी रूपमे अपने को देखू तो मेरा कल्याण हो जायगा। यह आत्मा तो जिन, शिव, ईश्वर ब्रह्मा, राम, विष्णु आदि रूप है। सब ज्ञान इसीके अन्दर है। ऐसा महिमा-निधान, आनन्दनिधान यह मैं स्वय हू, अपने आपको समझता हू और जाननभाव लिए हुए हू। मेरेमे विपदाएँ नही है। विपदाएँ तो मात्र भ्रममे विकल्पमे हैं। हम और आप सभी आत्मा परिपूर्ण है, सब प्रकारसे ज्ञान और आनन्दमय हैं। सब बाते इस आत्मामे ठीक है केवल एक गडबडी इसके आत्माके अन्दर है जिससे सारा बिगाड हो गया। वह गडबडी क्या है ? वह गडबडी यह है कि इस आत्मामे इच्छाए भरी हुई हैं। सारी बातें करते रहो, हम किसी की मान नही करते। क्रोध आता हो करो, मान आता हो करो, लोभ आता हो करो, मगर एक इच्छाओको हो निकाल दो तो सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इच्छाओके समाप्त होने पर कषाय भी किसपर नखरे करेंगे ? इच्छाएँ ही एक बन्धन है जो जीवोको बाँधे हुए है। इन पुरुषोको कौन बाँधे हुए है ? इनमे कैसे गाँठ लगी हुई है ? अरे ये सब न्यारे-न्यारे है, मगर अपनी-अपनी इच्छाएँ बनाए है और बन्धनमे पडे हुए है। कोई किसीसे बधा हुआ नही पडा है, इच्छाओने ही बाँध रक्खा है।

कौशलकुमार विरक्त हुए। लोगोने बहुत समझाया। अरे राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था है, अभी कुछ वर्ष हुए तुम्हारी शादी हुई है, तुम्हारी स्त्रीके गर्भ है। उत्पन्न होने वाले पुत्रके लिए राजतिलक कर जावो, फिर चाहे घर द्वार छोड देना। कौशल कहते है पिंड बचानेके लिए कि अच्छा जो गर्भमे है उसे मैं राज्यतिलक दिए देता हू। कौशलको बधनमे बधनेकी इच्छा नही थी तो उनके कोई बधन न था। इच्छाए हैं तो बधन है। गृहस्थी मे क्या बन्धन है ? अरे नही, गृहस्थीमे बन्धन कहाँ है, केवल इच्छाओके कारण ही वे फसे हुए हैं। हमे तो बाल-बच्चोकी फिक्र है, घर द्वार कुटुम्ब परिवारकी फिक्र है, इसीसे हम फसे हुए है। हम तो स्वतत्र हैं परन्तु बाल-बच्चोमे मोह होनेसे अपने मोहसे ही फस गए है। क्या उम्मीद है कि हम इन बधनोसे निकल पायेंगे ? जो-जो व्यवस्था हम सोचे हुए हैं क्या इनको पूरा करके विश्राम कर लेंगे ? देखो मेढको को कोई तोल सकता है ? नहीं। अरे वे तो उछल जावेंगे। कोई इधर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा। वे तोले नही जा सकते है। इसी तरह क्या अपने परिग्रहमे रहकर अपनी व्यवस्था बना सकते हो ? कितनी ही

बन जायगी तो फिर कोई नई बात खडी हो जायगी । क्योकि बात बाहर खडी नही होती, अदरमे खड़ी होती है । सो अन्तर उपादान अयोग्य है ही । जब तक इच्छाए समाप्त नही होती तब तक बन्धन नही मिटता अर्थात् जब तक इच्छाए रहेगी तक तक बधन रहेगे । बगीचेमे एक चिडीमार जाल फैलाए है । जालके नीचे थोडेसे चावल या गेहूके दाने डाल दिए है । अब चिडिया आती है, उस जालमे फस जाती है । देखने वाले दो-चार लोग आपसमे चर्चा करते हैं कि देखो चिडीमारने चिडियाको फांस लिया । दूसरा बोला--नही, चिडीमारने चिडियाको नही फांसा, जालने चिडियाको फाँसा है । तीसरा बोला—नही-नही, जालने चिडियाको नही फांसा है, चावल और गेहूके दानोने चिडियाको फास लिया है । चौथा बोला--नही, नही, चिडियाने स्वय दाने चुगनेकी इच्छा की, इसलिए स्वय ही वह बधनमे बध गयी है । प्रभुमे और आत्मामे भेद कहा ? सब लोग चिल्लाते है कि प्रभु और आत्मामे भेद नही है । कहते हैं ना कि "आत्मा सो परमात्मा" भेद कुछ नही है । आत्मा है हम और आप और परमात्मा है कोई निर्दोष सर्वज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा । उसमे और इसमे कोई भेद नही है । सारा मामला तैयार है, केवल इच्छाओको निकाल दो । यह एक इच्छाएँ जो कि उत्पन्न होती है जिनसे बाह्य पदार्थोंसे कोई मतलब नही है, जो जैसा है वैसा ही है । किसीके करनेसे कुछ होता नही है । मेरा सोचनेसे बाहर कुछ नही होता है, सब अपने-अपने स्वरूपके धनी है, अपने-अपने सत्के स्वामी है, केवल ये व्यर्थकी इच्छाएँ उत्पन्न करते हैं और दुखी होते है । रात दिनके कार्योंके अन्दर अपने को देखते जाओ कि मेरे लिए लोग बन्धन हैं या काम बन्धन है या इच्छाए बन्धन है । अरे अपने लिए तो केवल इच्छाए ही बन्धन है । इच्छाए न करो तो सुखी हो । अच्छा देखो शुद्ध किसे कहते है ? शुद्ध कहते उसे है जो इच्छाओ का सयम लिए है अथवा इच्छाए रचमात्र भी नही है । इच्छाओके होने न होने पर ही सुख दुःख निर्भर है । अन्य पदार्थोंके सयोगमे सुख नही है, दु ख ही हैं । ससारमे दृष्टि पसारकर देखो तो सब दु खी ही नजर आ रहे है, सबको कष्ट है । और किसीको यहां कितना ही आराम मिले फिर भी कष्ट है । जितने एक दीनको कष्ट हैं उतने एक धनीको भी कष्ट है । यद्यपि जितनी असुविधाएँ दीन को है धनीको नही है, फिर भी धनीको भी उतने ही कष्ट होते है ।

अरे सुविधाओसे सुख नही होते हैं और न सम्पदाओसे ही सुख होते है । इज्जतसे भी सुख नही होता । इच्छाएँ यदि न रहे तो सुख होता है । तो कैसी भी परिस्थिति आ जाय, इच्छाएँ अगर कर ली तो दु ख हो गया । इच्छाएँ ही एक बधन है । इन शिशु, बालको को देखो, कैसे आजादसे फिरते हैं, कोई फिक्र नही है । कैसा सुखी रहते है ? पर भाई जैसे-जैसे अवस्था बढती जाती है वैसे-वैसे इच्छाएँ भी बढ़ती जाती है और इच्छाओके नातेसे ही

दु ख भी बढते जाते है । तो भाई दु खोका कारण इच्छाएं ही है । पर बड़ा कठिन प्रश्न है कि इन इच्छाओंको कैसे दूर किया जाय ? अरे जिसका तुम्हारा प्रसग है तथा कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे सम्बध होनेकी जो इच्छाएँ है वह न हो तो तुम्हारा काम न बने, यह नही हो सकता है । इच्छाएँ न हो यह नही हो सकता है, इच्छाएँ तो होगी ही । पर गृहस्थीमे भी इस बारेमे दो काम तो किए जा सकते है । एक तो यह कि मै आत्मा इच्छारहित हू, ज्ञान स्वभाव वाला हू, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहनेका है, मैं आत्मा ज्ञानमय हू, आनन्दको लिए हुए हू, मै इच्छाएँ नही करता । इच्छाएँ न रखनेसे मेरा कुछ मिट नही जायगा, कुछ नष्ट नही हो जायगा, मेरा तो ज्ञानस्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मैं हू । एक तो यह काम गृहस्थीमे भी किया जा सकता है । पर इसे ज्ञानी गृहस्थ ही कर सकता है । यह केवल कहनेकी बात नही है, सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जानेमे कुछ अभ्यास चाहिए, कुछ ज्ञानभावना चाहिए, ज्ञानदृष्टि चाहिए, ससारसे मुक्तिकी भावना चाहिए, आत्मकल्याणकी भीतरमे भावना होनी चाहिए । यदि ये बातें हो सकती है तो गृहस्थ यह काम कर सकता है कि मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है । जानन अगर मिट गया तो मैं मिट जाऊँगा । इच्छाएँ अगर हो गयी तो मैं मिट जाऊँगा । इच्छाओके मिट जानेसे मैं मिट जाऊँगा, ऐसी बात नही है । इच्छाओंके मिटनेसे मै नही मिटता, बल्कि इच्छाओके मिट जानेसे मुझे आनन्द है । ये इच्छाएँ मेरा स्वभाव नही, मै तो ज्ञानस्वभाव हू, भीतरमे एक ऐसा विश्वास बना लेवो । एक तो गृहस्थी यह कर सकता है । दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा माफिक यदि काम नही है तो इससे नष्ट हो जाऊँगा, ऐसी बात नही है । इच्छाएँ होती है और इच्छाओके अनुसार ही काम किया जाता है, फिर भी इच्छाओके अनुसार काम नही होता है । यदि इच्छाओंके अनुसार काम नही होता है तो मै नष्ट नही हो जाऊँगा । अरे मैं तो वही तत्का सत् हू । यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या ? ऐसी भावना बाहरी तत्त्वोसे उपेक्षा धारण करे । यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है । बाह्यकी यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है । ये इच्छाएँ ही बन्धन है । यदि मै इच्छाएँ न रक्खू, ज्ञाता-दृष्टा रहू, ज्ञानमात्र रहू तो मेरी हानि नही है । इच्छाओंमे ही हानि है । मेरा पूरा इच्छाओ से नही पडेगा । इच्छाओसे तो मुझे दु ख ही मिलेंगे । मेरा पूरा तो ज्ञानमात्र भावोसे ही पडेगा । मै जितना हू, स्वय हू, इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था बनेगी । इसलिए इच्छाओको दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मे अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ ।

देखो हाथी, मछली, भवरा, ये प्रत्येक जीव बधनमे पड़ जाते है, जालमे बँध जाते हैं, शिकारियोके चगुलमे फस जाते है । उनकी इच्छा नही होती तो वे बधनमे नही पडते । अभी मनुष्य भी रग-ढगसे चलते है दूसरोमे मनमानी अन्यायकी प्रवृत्ति नही कर पाते एक

मनुष्य दूसरे मनुष्यके बधनमे पड जाते है। तो एक दूसरेके बन्धनोमे पडना भी इच्छाओके ही कारण है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहूं। मेरा बढिया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने। ऐसे इच्छाओके कारण ही वह पिताके साथमे रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढापेमे काम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इन इच्छाओके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएँ अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएँ अपनी स्त्रीके प्रति होती हैं, इस तरहसे वे सब एक दूसरेके बन्धनमे बन जाते हैं। नौकर अपने मालिकके बन्धन मे है। मालिक अपने नौकरके बन्धनमे है, बडा अपने छोटेके बन्धनमे है और छोटा बडेके बन्धनमे है। यह सब इच्छाके कारण ही तो होता है, इसलिए इच्छाएँ ही बन्धन है।

सीता जी अग्नि परीक्षामे सफल हो गयी तो रामचद्र जी हाथ जोडकर खडे हुए। बोले—देवी क्षमा करो। आपको बहुत कष्ट पहुंचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोडे और भी सब लोगोंने हाथ जोडे। भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट कराने वाली अग्निपरीक्षाके बाद क्या अपने मनमे इच्छाके भाव बनाये होंगे? क्या सीता जी के मोह की प्रवृत्ति हो सकेगी? नही ऐसा नही है। इसीमे तो सीता जी के वैराग्य उमडा, सीता जी के लिए कुछ बन्धन नही हुआ, विरक्त हो गयी। तपस्यामे लग गयी। जब तक इच्छाएँ थी तब तक बन्धन था। जब इच्छाए खत्म हो गयीं तब उनका बन्धन भी खत्म हो गया।

अब घरमे ही देखो लोगोकी इच्छा नही रहती है, इसलिए जुदा हो जाते है, अलग हो जाते है, वे तलाक दे देते हैं। जब इच्छाए नही है तब मोहके बन्धन भी हट जाते है। मोह बन्धन खत्म हो जाता है। हमको बांधने वाले कोई पदार्थ नही है। जब हम बाह्य पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं तब अपने आपको ही बेडियोमे जकडते हैं, दुःखी होते है। बडे-बडे रईस लोग आजकल भी अपने स्त्री, धन वैभव इत्यादिको छोडकर अलग हो जाते है, विरक्त हो जाते है। यह क्यो, यो कि इच्छाका बन्धन उनके नही रहा। इच्छा तक साम्राज्योसे लगाव था। इच्छावोंके समाप्त होते ही वे बडे-बडे साम्राज्य छोड देते हैं। कहते हैं ना कि फलां आदमी मोहप्रसगसे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपनेको बधनमे बांधनेकी इच्छा नही की, इसलिए अलग हो गया। बन्धन तो इच्छाको कहते हैं। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलानेका है इत्यादिसे विपदाएँ है। भीतरमे अगर जरा भी ज्ञान आ गया है कि यह मेरा है तो बस दुःख उत्पन्न हो गए। देखो दूसरेमे लात-घूंसे मिला करते है, पर कहते है कि यह मेरा है। परको अगीकार करनेसे ही सुख दुःख हो जाते है। परको अङ्गीकार करना ही इच्छा है, मोह है। यह मोह इस जीवके ऐसा फैला हुआ है कि उसे चैन नही आती है। यह जीव किसी-किसी बातसे मौज मनाता है और किसी-किसी बातसे दुःखी होता है। जिन चीजोमे मौज मनाता है उन चीजोमे-मौज

के साथ-साथ दुःख ज्यादा आते हैं। रात-दिनके २४ घंटेके अंदर यह बताओ कि बहुत बढिया मौज आपको कितने मिनट रहती है ? रात-दिनमे २-३ मिनटके लिए शायद मौज आ जाती हो ी, बाकी समयमें कष्ट ही रहते है। कभी कोई बच्चा आ गया, उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो-एक मिनटके लिए मौज हो गयी, बाकी समयमे दुःख ही रहते है। दूकानपर बैठे है, कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटनेपर दो-एक मिनटके लिए मौज आ गया। सौदा न पटा ग्राहक चला गया तो फिर दुःखी हो गये। और ग्राहककी अपेक्षामे तो पहिलेसे भी दुःखी बैठे थे। मौज और दुःखमे अन्तर देखो कि मौज तो राईके समान है और दुःख पहाडके बराबर है। मौज और दुःखोको फिर देख लो। दुःख तो सारे साचे है, मगर मौज जो दो मिनटको आता है वह भी झूठ है। मौज झूठा हो गया और दुःख साँचे हो गए। अरे भाई कोई बात हो तो बताओ। इन सबका क्या कारण है ? देखो भाई क्षणिक मौज माननेसे ही कारण इच्छाएँ ही है। इन इच्छाओसे ही दुःख हो जाते हैं, दुःखोसे दब जाता है। इस मौज माननेका कारण इच्छायें ही है। इन इच्छाओसे ही दुःख हो जाते है।

जैसे कोई कहे कि साहब अपनी कहानी सुनाओ। अच्छा, सुनो। ५ मिनट तक सुनाया। तो उसमे यही पावोगे कि इसकी इन विषयोमे इच्छा है, इसकी इन विषयोमे इच्छा है। निर्णय कर लो कि इसमे अमुककी इच्छा है, इन सबसे दुःख होते हैं। इन सब इच्छाओसे ही दुःख होते हैं, क्लेश होते है। सारी बातें ठीक है ना। सारी बाते समझमे आयी है ना। सारी बात समझमे क्या, सिरपर ही तो आ रही है। अब समझते यह है कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएँ समाप्त हो जावें। हम कहते है कि जिनमे मोह है, जिनमे इच्छाए है उनको कभी सुख नही हो सकता है। इतना तो निश्चय कर ही लो। जिनके क्रोध हो, मान हो, चाहे कुछ भी हो पर एक ये इच्छा न हो तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पडा है ? तो ये इच्छाए मिटें कैसे ? अरे इन इच्छाओके मिटने की तरकीब तो हो। जो शास्त्र पूजे जा रहे है उनमे इच्छाए मिटाने की तरकीब लिखी होती । इसीसे हम पन्ने पन्ने शास्त्रके आदरसे पलटते है, पूजते हैं, उनका मनन करते हैं और यह भगवान की मूर्ति मदिरमे विराजमान है, परमात्मा अरहत, जिनेन्द्र की मूर्ति विराजमान है, उसकी उपासना उन्हे आदर्श मानकर ही तो करते है। इच्छा प्रभु के समाप्त है। सो निरीहको पूज करके हम अपनी इच्छाओको नष्ट करें। हम गुरुवोके सत्सग करते है, गुरुवोकी उपासना करते है, क्योकि इच्छाओके मिटानेकी तरकीब उनके सत्सगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसी बनाकर मैं प्रसन्न रहूं। जिसके पास इच्छायें होती है और बाह्यसे ही मौज किया करते हैं, उन्हे क्लेश ही रहते है। देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नही जाते है और जिसके पास जानेसे अपनेको क्लेश है उनके पास जाते

है। जिसके पास जो है उसके पास जाकर उसे पाना चाहिये। दरिद्रतामे दुःख है—यह सोचकर जिनके दरिद्रता नही ऐसे धनीके पास जाते है। लोग जिनसे उन्हे कुछ मौज मिलता है उनके पास जाते है। इसी तरह इच्छाओंसे दुःख है। जिसके यह दुःख न हो उनके पास ही ज्ञानी जाते है और परन्तु मोही दुखियोसे चिपटते है और जिनके पास दुःख नही है उनके पास हम नही जाते है। देखो मिल चल रहे हैं खटपट, खटपट। यह चीज वहाँ बन रही है, वह चीज वहाँ बन रही है, खूब काम चल रहा है। वैसे ही हमारी भावनाओकी मिल चल रहे हैं। एक इच्छा यह हुई, दूसरी इच्छा यह हुई, इस तरहसे इच्छाओकी मशीन चला करती है। जितने दुःख आते है वे सब इन इच्छाओके द्वारा ही आते है। अरे इन अटपट इच्छाओ मे पडनेसे क्लेश ही क्लेश रहेगे। अरे इन इच्छाओको हटा दो, इनसे कोई मतलब नही निकलता। कोई इच्छा करो, पर उससे लाभ नही मिलने का है। जैसे ऊटका पता ही नही रहता है कि वह किस करवट बैठ जाय? जैसे ऊटका पता नही रहता है कि किस करवट बैठेगा। बैठतेमे भी यह भी नही पता रहता है कि किस तरफको बैठ रहा है? पहले तो वह जरा सा झुकेगा, फिर पैर लचाकर बैठ जाता है। जब वह बैठ जाता है किसी तरफसे तो फिर पता लगता है कि ऊट इस करवटसे बैठा है। पुद्गलोके चाहे लट्ठ चले, चाहे तलवार, अटपट वहाँ कुछ नही होगा। और इस मनुष्यकी तरफ जरा देखो। इस मनुष्यका पता नही कि एक मिनटमे ही क्या दिमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या उसका बदले, उसका कोई पता नही चलता है। वह अपनी भूलमे आकर ही गल्तियाँ कर डालता है। इन गल्तियो के कारण ही इच्छाए हो जाती है। इन गल्तियोको अगर अपनेसे निकाल दें तो दुःखके बधन छूट जावेंगे। दुःख तो इच्छाओ से ही होते है। इच्छाए न हो, केवल ज्ञाता द्रष्टा मात्र मैं होऊ तो उस ज्ञानसे ही मेरा पूरा पडेगा। इच्छाओसे मेरा पूरा नही पडेगा। देख लो केवल एक इच्छा हो गयी तो बैठे-बैठे ही इच्छाओसे दब गए।

जब बच्चे थे तब भी इच्छा इज्जत की थी, नीचे नही बैठते थे, गोद मे ही बैठते थे। जब थोडा बडे हुए तो यह खा लें, वह खा लें, और तनिक बडे हुए तो अनेक इच्छाए आ गयी। स्कूल जावेंगे, परीक्षा देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे और अगर मूर्खराज हो गये तो, हाय मैं तो स्कूल नही जाऊगा, यह सोचकर इधर खेल रहे उधर खेल रहे। तनिक और बडे हुए, शादी किया विवाह किया, पुत्र हुए, देखो अन्य अन्य ढगकी बातें हो रही है। तो इच्छाओने आराम नही लिया। इच्छाए मेरे मनमे बहुत सवार हुयी। इन इच्छाओने हमे बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करते जा रहे है। अरे ये इच्छाए बेकारकी हैं, व्यर्थकी हैं, इनमे कुछ मतलब नही, कुछ प्रयोजन नही। भला सोचो तो सही, इस शरीरका तो मरण होगा ही। इस शरीरकी क्या दशा होगी, खाक कर दिया

जायगा, भस्म कर दिया जायगा। वह जाननस्वरूप ज्ञानस्वरूप कहाँ जायगा? ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमे पता नही कि वह किस जगह जायगा? फिर उनके लिए कानपुर नही होगा। उनका हिन्दुस्तान नही होगा। उनका घर द्वार इत्यादि भी नही होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपमें अगर विश्वास कर ले तो सुखी हो जावें। तो ऐसा ही अब जान लो कि मेरा कही कुछ नही है। जो कुछ भी हो धर्म कर लो तो उसका फल है। शरण कोई नही होगा। अपना आत्मबल ही शरण होगा, दूसरा कोई शरण नही होगा। इस लिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्माको देखू और अपनेमे अपने लिए अपने आप रमकर आनन्द पाऊ।

कुछ भी चेष्टायें करनेपर भी फिर जैसेके तैसे ही खाली हाथ रहते हो। किसी भी प्रकारकी चेष्टायें करो—दूकानकी, घरकी, सत्सगकी, रहनेकी, पढनेकी, सोसाइटीकी समाजकी सेवाकी, देशकी सेवाकी तो वैसेके वैसे ही खाली हाथ रहते हो। इस आत्मामे कुछ भर जाता है, बन जाती है, बडा हो जाता है तो यह भी कुछ नही होता, बल्कि उन चेष्टाओसे कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकारकी चेष्टायें करो, मगर कुछ लाभ नही मिलेगा।

अगर मै कोई चेष्टायें न करूँ तो स्वच्छ बना रहू। चेष्टायें न करनेसे कोई हानि नही। मेरी तो वास्तविक चेष्टा ज्ञानमय ही है। भीतरके स्वरूपको देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है अपने आपके स्वरूपमे घुला-मिला है। मुझ आत्माका काम केवल जाननस्वरूप है, केवल जाननका काम है, इसके आगे और कोई काम नही है। इसके अतिरिक्त और कुछ करनेका अगर स्वभाव माना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा ज्ञानमात्र मैं अपनेको देखूं। भीतरमे यह प्रवृत्ति बन जाय कि मैं तो सबसे निराला, भिन्न तत्त्व हू। इसका किसीसे सम्बध नही है। कहीसे कुछ होता हो या कुछ हो जाय, ऐसी बात नही है। सब है, पूरेके पूरे है, परिणमनशील है, अपने आपमे परिणमते रहते है। परिणमना ही तो इसका काम है। इसको कहते है कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् जो बन जाय, बिगड जाय और बना रहे वही तो सत् है। यह प्रत्येक पदार्थोंका स्वभाव है। मैं किसीको बना दू सो बात नही है। मैं किसीसे बन जाऊँ, यह भी बात नही है। सो न तो मेरा स्वभाव है परका बनाना और न स्वभाव है परका बिगाडना। यह कला पदार्थोंमे अपने आप भरी होती है। प्रत्येक पदार्थोंमे यह उत्पादव्ययध्रौव्यकी कला स्वय है। दुनियाके लोग यह नही समझते हैं सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि ये चीजें बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है। उस बनाने वालेका नाम ब्रह्मा है। देखो कोई चीज बिगडी, खतम हो गयी, गुजर गयी तो ऐसा करने वाले महेश हैं। ऐसा उत्पाद व्यय हो जानेपर भी कुछ रहा करता है उसका नाम विष्णु है। भैया! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। पदार्थके स्वभावको तो देखता नही, अपने रूपको तो समझता नही, केवल बाहरमे ही देखकर कल्पनायें बनाकर यह

कहता है कि मैं अमुकको बना दू, अमुकको बिगाड दूं, अमुकको कुछ कर दू। कोई दूसरा-हमे बिगाड दे—इस शंकामे भी सदैव दुःख रहता है। अरे मै तो स्वच्छ हू, मेरा कोई कुछ नही कर सकता। उत्पादव्ययध्रौव्य मेरेमे पडा होता है सो मै स्वयं अपने स्वरूपको जानता देखता हू। मेरी जाननमात्र ही चेष्टा है, बाकी काम नही है। सो मै अपने ज्ञानस्वरूप आत्मामे रहकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

यह अन्तरकी बात, तत्त्वकी बात, इसको जो जानता है वह मूक हो जाता है, बोल नही सकता, मौन हो जाता है। जैसे कोई किसीको कोई चीज समझावे और समझाता है, समझने वालेकी समझमे नही आता है। अब समझाने वाला भी यद्यपि जानता है सब पर यह ऐसा नही समझता है तो समझाने वाला बार-बार समझाता है, पर एक्सप्लेनेशन नही कर पाता है। जब सुनने वाला समझ नही पाता है तो बोलने वाला टेबुलमे हाथ मारकर यो ही रह जाता है। क्या समझाया जाय बताया नही जा सकता है। अच्छा मिश्री तो सबने खायी होगी। कोई भाई खडे होकर मिश्रीके स्वादका एक्सप्लेनेशन कर देवें। अरे भाई आप जान रहे है मिश्रीके स्वभावको, पर बताता कोई नही है। जानते सब है, पर बता कोई नही सकता। जानते सब है, पर वर्णन कोई नही कर सकता है। ज्ञानस्वरूप कैसा है ? कोई बतावेगा। जो तत्त्वका जानने वाला है वह मूक हो जाता है। सो मूक जीवने एक छल पकड लिया कि जिसके जाननेमे गूंगा हो जाता है। उस तत्त्वसे हमे क्या प्रयोजन ? २०-२५ वर्ष बाद धर्म पढनेका रिवाज था। संस्कृत पढनेका रिवाज था। लडके विद्यालय संस्कृत पढनेके लिए जाते थे। घरके मां-बाप कहते कि अरे देखो संस्कृत पढनेमे कोई पंडित हो गया, तो कोई-कोई तो घर छोडकर चल दिया। तो ऐसे पढानेसे कोई फायदा नही है। ऐसा मां-बाप लडकोंके प्रति सोचते थे। अरे मर्मके तत्त्वको जिसने समझ लिया, जिसको ज्ञान हो गया वह अगर घरसे चला जाय तो उसे आसानीसे चला जाने दो। उसका उत्सव मानो। ऐसा जो ज्ञानी ध्यानी निर्णय कर रहा है कि यह तो अपने आपका कल्याण करता है और दूसरोका भी कल्याण करता है तो उसका गौरव होना चाहिए। मान लिया आपने दूकान कर ली, बहुतसा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा ? बतलाओ। अरे ये तो सर्वसाधारणके है ही। अगर जीवोका उद्धार हो जाय तो खुशी होनी चाहिए। यह मूर्ख पुरुष छल करता है कि मेरेको उस तत्त्वमे क्या लाभ होगा ? अरे भाई ऐसे तत्त्वमे, उपयोगमे ही शांति है बाहरमे शांति नही है। बाहरी कामोमे तो अशांति ही अशांति है। अपने उपयोगमे लगने से शांति ही रहेगी, अशांतिका कोई काम नही है। क्या आप बतला सकते है कि किससे शांति है ? शांति क्या सर्विसमे है, क्या दूकानमे है, क्या दुनियाके कोई कामोंमे है ? अरे शांति कही नही है। केवल अपने आपके स्वरूपको देखो तो वहाँपर शांति ही शांति मिलेगी। वहाँ अशांतिका नाम नही है। अशांति कितने प्रकारकी होती है ? एक-एक आदमीमे कमसे कम

एक-एक हजार अशाति होगी । फिर एक आदमीमे इतनी प्रकारकी अशांतियाँ है तो दूसरोमे भी ऐसी ही नाना अशान्ति है । ये अशान्तिया भी एक दूसरेसे मिलती नही । इसको और तरहकी अशाति, इनको और तरहकी अशाति । कितनी तरहकी अशातियाँ है, कोई हद नही है । मगर शातिका जो रूप होता है वह केवल एक है और अशातिके रूप करोडो है । शाति अगर मिली तो उसका केवल एक ढग है । अगर मान लिया इन लौकिक मौजोमे कि हमे शान्ति मिले तो वह शाति नही हुई । शाति तो केवल एक प्रकारकी है । तो यह तत्त्व जो अपने आपमे विराजमान है उस ओर दृष्टि दो तो उसे शान्ति है । तो ऐसे तत्त्वको जानकर मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

ओह एक मनुष्य बोल रहा है कि उस तत्वके जाननेसे क्या फायदा ? जिस तत्त्वके जाननेसे ज्ञानी आलसी हो जाता है । तत्त्वको जानने वाला आलसी होता है । ऐसा आलसी होता है कि आँखे खोलता है तो पलक गिरानेमे आलस्य आता है । आखोके पलक अगर गिरे तो उठानेमे आलस्य आता है । और की बात तो दूर रही, जिनको योगी कहते है उनको भी, पलक अगर गिर गयी है तो पलकें उठानेमे आलस्य है और अगर नजर उठी तो पलके बन्द करनेमे आलस्य है (याने बाह्यमे दृष्टि नही करता) ऐसे तत्त्वको जाननेका हमे क्या प्रयोजन है ? और ज्यादा पढे तो ऐसे प्रश्न हो जाते है कि हम भी मुक्त हो गये तो दुनिया कैसे चलेगी ? दुनियाके क्या हाल होगे ? अरे ऐसे सब कहा बन जायेंगे ? सब तो नही बनेंगे, मगर अनन्ते बन जावेगे । अनन्ते बनने पर भी अनन्तानन्त ही रहेगे । अगर इस ही प्रकारसे रहे तो खुदको शाँति कैसे मिल जावेगी ? अगर बाहरमे ही दृष्टि गयी तो वहाँ शांति नही मिलेगी । शाँति तो वहाँ है जहाँ बाहरमे दृष्टि न हो । कुछ मत सोचो, कुछ मत बोलो, कुछ मत करो । देखिए, कल्पना, जल्पना, चलना क्या है ? कल्पनाओका सम्बन्ध मनसे होता है । जल्पनाका सम्बन्ध वचनोसे होता है । जिससे जल्प व गल्प गप्प बने और चलपना उठकर चल दे, उठाकर धर दे वह चलपना हुई । न कोई कल्पना हो, न कोई जल्पना हो और न कोई चलपना हो, केवल स्वरूपका ही परिग्रह हो तो तत्वज्ञानकी प्रवृत्ति बढे । शान्ति तो वहाँ है । लोग कहते है कि उस तत्त्वके जाननेसे क्या फायदा जिसको जानकर आलसी हो जाते हैं । भैया ! शान्ति तो उस निर्विकल्प तत्त्वमे है । मैं अपने ही तत्त्वको निरखकर, उसमे ही उपयोग देकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

मन मेरा स्वभाव नही जो दौडा करता है । मनका कार्य मेरा कोई कार्य नहीं । मन मेरी वस्तु नही । मैं तो मैं ही हू । मेरे स्वरूपका पता मुझे न हो—यह कैसी अनहोनी बात है ? एक राजा था । घोडे पर चढे हुए जा रहा था । दीवानके घर परसे निकला । दीवान बुद्धिमान था । राजा बोला, दीवान ! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और

परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रसन्न होता है वह बड़ी बातें करता है। राजा भी प्रसन्न थे। घोड़े पर बैठे हुए दीवानसे बातें कर रहे थे। बड़े आदमी प्रायः जब प्रसन्न होते हैं तो बहुत बोलते हैं। राजा बोला, जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? दीवान बोला, अच्छा समझा दूंगा। राजा बोला—समझा दूंगा नहीं, ५ मिनटमें ही समझा दो। दीवान बोला—राजा माफ करो, मैं ५ मिनटमें नहीं आधा मिनटमें समझा दूंगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? राजाका घोड़ा छुड़ाया और चार छः कोड़े राजाके जमा दिये। राजा बोला—अरे भगवान, अरे भगवान। दीवान बोला—जिसको तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान कहते हो वह है परमात्मा। हे आत्मन् अपने से बाहर न जानो, अपने से बाहर दुःख हैं। खुदके जाननेसे ही सुख है। सबको मानो कि भगवान सबमें है। अत्यन्त यथार्थ रूपमें आत्मा है। यदि उस अपने यथार्थरूपको देखो तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे सामने है। जहां यह रागादिक प्रतिभासित हो वह तो मैं हूं किन्तु रागादिक मैं नहीं हूं। मैं तो एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूं। इस ज्ञानमय आत्मतत्त्वका जब नयोंसे हल न हो सका तो एक एक एकान्त दर्शन बन गया। सब प्रकारसे देखनेपर आत्मतत्त्वका सही ज्ञान हो सकता है कि मैं आत्मतत्त्व यह हूं, मैं आत्मा सुखी हूं, निज उपादान वाला हूं, किन्तु माने यह कि मैं अमुकके कारण सुखी हूं तो इसीको कहते हैं निमित्तदृष्टि। और जो दृष्टि अपने आपके लिए अपनी जुम्मेदार होती है इसीको कहते हैं उपादानकी दृष्टि। एक पुस्तक है, उसमें एक गधे की कहानी लिखी है। मैंने बचपनमें भी उसे पढ़ा था। अब चाहे दूसरा एडीशन तैयार हुआ हो या नहीं, उस कहानी की पुस्तकमें बहुत सी शिक्षाएं थीं। एक उपकहानी यह है कि एक धोबीके पास गधा और एक कुतिया थी। कुतियाके बच्चे २० – २५ दिनके हो गए। धोबी कुतियाके बच्चोंको उठा भी लेता था। प्यार भी करता था। कुतिया अपने पंजे मारकर धोबीको प्रसन्न करती थी। कुतिया पंजोंसे ही तो मारती है। कभी मुंहसे धोबीके हाथ पैरोंमें भरकर काटती। इसी तरहसे तो कुतिया खेलती ही है। इसी तरहसे धोबी उस कुतियाके बच्चोंसे प्रेम करता था। गधे ने यह देखा कि धोबी कुतियासे तो प्यार करता है जो बिल्कुल काम नहीं करती है और हम तो बहुत काम करते हैं फिर भी हमसे प्यार नहीं करता है।

उसने इस बातको सोचा कि आखिर हमसे प्यार क्यों नहीं करता है। सोचा तो समझमें आ गया। गधेने समझ लिया कि कुतिया धोबीको लातोंसे मारती है और दांतोंसे काटती है इस वजहसे वह प्यार करता है। चलो ऐसा ही हम करें तो हमसे भी यह मालिक प्यार करेगा। गधा अपने स्थानसे चला और धोबीके पास पहुंच गया। सोचा कि लातें मारे तो शायद खुश हो जायगा। खूब लातें मारने लगा, काटने लगा। अब धोबीने डंडा उठाया

और उसे पीटने लगा। उस गधेने सोचा कि अरे कुतियासे तो वह प्यार करता है और हमे मारता है। तो भाई बातें सबकी न्यारी न्यारी है, उपादान न्यारे न्यारे है। कोई जीव किसी तरह पीडाओमे रहकर शात रह सकते है, कोई अशान्त रह सकते है, कोई किसी भी स्थितिमे धर्मात्मा रह सकते है। इसकी परख बाहरी बातोमे नही होती, भीतर तत्वमे होती है।

ऐसा उपादान तत्त्व अगर समझमे आ गया तो सब कुछ ठीक होगा और जिसकी समझमे न आया तो यह ठीक नही होगा। जैसे कोई नावसे नदीमे जावे, कभी इस दिशामे, कभी उस दिशामे तो लक्ष्य बिना भटकता ही रहता है उसी तरहसे इस जगतमे वे जीव जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नही वे भटकते ही रहेगे। इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए, बाल-बच्चे चाहियें। अरे ये सब क्या है ? वे भी बूढे होगे और मरेंगे। क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहाँसे निकलकर नही जायगा ? यहाँ कौनसी चीज सारभूत हैं जिनमे हम गडे हुए है ? सारी चीजे छोदकर जाना पडेगा। यहाँ कुछ रहता नही है।

एक सेठ था। उसके चार लडके थे। अपनी चाबी किसीको भी वह सेठ नही देता था। अपनी फेंटमे वह बाँधकर रखता था, किसी बच्चेपर वह विश्वास नही करता था। सेठ जब खतम होने लगा, गुजरने लगा तो बच्चोसे बोला, बच्चो लो, चाबी ले लो। बच्चे कहते है कि नही पिताजी, चाभी हमे नही चाहिए, आप अपने साथमे लेते जाइए। शातिका मार्ग प्राप्त कर लें, ऐसी कोई चीज दुनियामे है क्या ? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो असतोष न करो। अरे भोजन करते है तो देहातोमे पूछते है कि किस चीजकी दाल बना दें, क्या बना दे तब पुरुष उत्तर देता है कि कुछ भी बना दो। उडदकी बनाओ, चाहे मसूरकी बनाओ, चाहे चनेकी बनाओ, चाहे मूँगकी बनाओ, चाहे अरहरकी बनाओ, जो होगा सो खा लेंगे। तो भाई जैसे खानेमे सतोष है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाओसे सतोष हो तब तो ठीक होगा। सतोष तो अतमे करते ही है। कोई गुजर जाता है तो कहते है कि इतनी ही अवस्था थी, यदि भेदज्ञानसे सतोष करें तो लाभ है। ४-६ हजारका टोटा पड जाय तो वहाँ यो सतोष करते है कि वह तो किसीसे कर्ज लिया था सो चुक गया। अरे धन आए तो क्या, न आए तो क्या ? वह सब तो सर्वथा भिन्न है। इस भेदज्ञानसे ही सतोष करें तो ठीक है। उसमे भेद तो रहता ही है, जबरदस्तीमे क्या है ? भैया बात तो भेदविज्ञानकी ही एक पक्की है और यही रोज-रोज चल रही है। अब कुछ भाइयोकी मर्जी है कि भक्तामर स्तोत्रका अर्थ हफ्ताभर चले। ठीक है चलेगा, किन्तु भैया ! बात पक्की भेदज्ञानकी ही है। एक कथा याद आ गयी। एक रगरेज था, वह आसमानी नीले रगकी पगडी रगना बहुत बढिया जानता था। कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगडी हरी रग दो, कोई बोलता सुनहरी रग दो आदि।

रगरेज सब पगडी रखवा लेता था, वह कहता था कि अच्छा रग तो देंगे। किन्तु रग आसमानी ही ठीक खिलेगा। सो भाई कुछ पढा लो, आनन्द तो भेदविज्ञानसे ही मिलेगा। चमत्कार तो तभी बनेगा जब ज्ञानस्वभावके विकासकी पूजी हो। सो मै अपने आपमे स्वय निधि रूप, ज्ञानानदघन हू अथवा शरण हू। अगर यह समझमे आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है।

एक ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय ऐसा आयगा जब कि यह मै आत्मा इस जड शरीरसे न्यारा होकर चला जाऊँगा। और उस समय शरीरकी क्या स्थिति होगी? मिलजुलकर यह मित्रमडल इसे खाक कर देगा। इस शरीरसे जब जीव निकलेगा उस समय क्या स्थिति होगी? ज्ञानज्योतिमात्र यह आत्मा होगा, यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नही तो जो बीचके क्षण है वे क्षण किस प्रकारके होवेंगे एक। ज्ञानानन्दघनका पिंड जैसा है उस समय मै परिणमता हू वैसा ही परिणमता हुआ होऊगा। एक भावस्वरूप पदार्थ होऊँगा। ऐसा भावस्वरूप पदार्थ मैं शरीरमे हूँ, अब भी हू। दूसरे शरीरमे जब जाऊगा तब भी मैं भावस्वरूप पदार्थ ही रहूगा। शरीरमे रहकर भी मैं शरीरसे न्यारा हू। मुझमे जो परिणमन तत्त्व है वह भी चित्स्वभावमात्र मुझसे न्यारा ही रहेगा। और उन परिणमन तत्त्वोके मायने रागद्वेष की छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सबसे न्यारा मैं होऊ। ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए है? मुझमे स्वभावसे तो ये रागादिक नही है। मेरा स्वभाव तो रागादिक करनेका नहीं, केवल जाननका है। जैसे पानीका स्वभाव बहनेका है याने द्रवता का है। पर ठडा होने व गर्म होनेका नही है। ठडा करनेसे पानी ठडा हो जाता है और गर्म करनेसे गर्म हो जाता है, पर पानी सर्वत्र द्रव ही है, गीला ही है, बहने वाला ही है। पानी अपने स्वभावसे न तो गर्म ही होगा और न ठडा ही होगा। पानी तो कूलर या ठडा करने वाली मशीनसे ठडा होगा और अग्निके द्वारा गर्म होगा। ऐसी स्थितिमे भी पानी द्रव है, बहने वाला है। इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रोधरूप परिणमन रहे, चाहे लोभरूप परिणमन रहे, चाहे विषयकषायरूप परिणमन रहे, पर अपने ज्ञानस्वभावको नही छोडता, केवल जाननके स्वभावमे रहता है। इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जाते है तो भी जानन रहता है। जो जानने वाला नही है उसमे विषयकषायके परिणमन नहीं आते। ये विषयकषाय मेरे स्वभावसे नही आ रहे हैं, बल्कि उपाधि पाकर आ रहे हैं। जो क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि हो जाते है उनका करने वाला मैं नही हू।

जैसे एक दर्पण सामने है। दर्पणके स्वभावका काम केवल स्वच्छता है, केवल झलक है, झिलमिलाते रहनेका स्वभाव है। अपनी चमक बनी रहे यही उसका काम है। जो चीज सामने लेकर रखो तो उसकी छाया दर्पणमे सही-सही पड़ती है, दर्पणमे ही प्रतिबिम्ब पड जाता है। अगर मुक्का बनाओ तो मुक्का दर्पणमे दिखाई देगा। इसी प्रकार ओठ अगर बनाओ तो ओठोका प्रतिबिम्ब सामने आ जायगा, आँखें अगर तिरछी

बनाओ तो आँखोका तिरछा प्रतिबिम्ब आयगा । दर्पण क्या करे ? इसी तरह तेरी आधीनता की बात है कि क्रोध कर ले, मद कर ले, मैं अपनी आधीनतासे यह कुछ नही कर पाता हूं किन्तु जैसी उपाधि सामने आती है वैसा कर डालते है । इसी तरह दर्पणका परिणमन केवल शुद्ध, स्वच्छ है । आत्माके परिणमनमे रागद्वेष नही, विषयकषाय नही, वह केवल शुद्ध, स्वच्छ एव ज्ञायकस्वरूप है । ऐ आत्मा ! मलीन बननेका तेरा काम है क्या ? आत्माका उत्तर यह है कि मेरा काम नही । मेरा काम तो प्रभुकी तरह शुद्ध ज्ञानमे परिणमते रहनेका है । पर क्या करूँ ? जब यह उपाधिका उदय होता है तब खुदकी अशुद्ध योग्यतामे यह परिणमन आता है, अशुद्ध, विकारमय, रागादिक, क्रोधादिक, तो मैं इनको करता नही हू इनके करने वाले तो कोई दूसरे ही है । इस बुद्धिमे अपनेको ज्ञानस्वरूपकी ओर ले जाया जाता है । इसका कर्ता तो कर्म है । मैं तो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप ही हू, मैं तो जाननस्वरूप हू । मेरेमे रागात्मक भाव नही । विपरीत परिणमनमे बडी विचित्रताएँ है, उनका कर्ता कर्म है । प्रकृति कहो या कर्म कहो । जैनसिद्धान्तमे प्रकृति भी कहते है और कर्म भी कहते हैं । अपनेको शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाने वाली इस दृष्टिमे कितना आराम मिलता है ? विषयकषाय होते हैं वे कर्मके उदयसे होते है । यह मेरा काम नहीं है । मेरा काम तो ज्ञानमात्र होनेका है, जाननका है । जिनमे मेरा अधिकार नही उन्हे मैं अङ्गीकार नही करता । ये रागादिक होते है, होने दो, होकर मिटने दो । इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही । उन बाहरी वस्तुओके विषयमे ज्ञान होता है । सो ज्ञान तो मेरा काम है, विकल्प मेरा काम नही । जब अपनेको ज्ञानमात्रका अनुभव होगा तो ये रागादिक कर्म नष्ट हो जावेंगे । सो मै ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

कहते है कि मेरा काम तो जानन है, मेरी क्रिया तो जानन है । मै कितना क्या हू ? अपनेको ही देखनेमे पता पडेगा । मेरा काम तो जानन है ये विकल्पकी तरगें उपाधिके कारण आती है । मेरा काम विकल्प करना नही है । जगतके जीव तो विकल्पोके कारण बिगडे रहते हैं और वे आजीवन इस जगतमे सोचते रहते है । ये रागादिक उठते है तो उठें, उनसे मेरा क्या ताल्लुक है ? मै तो ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमात्र ही मेरा काम है, जानन ही मेरा काम है । मुझ आत्मामे न जागरण है, न सोना है, न वचन बोलना है, न खाना है, न पीना है । मेरा काम तो मेरा काम तो यह है कि मै जाननमात्र हू, ज्ञाताद्रष्टा हू । कर्ता भोक्तापनकी ख्याति तो दडके लिये है, उसका चाव करना तो विपत्ति है । जैसे कभी स्कूलमे बच्चोसे कोई काम बिगड जाय, या कोई बच्चा किसी काम को बिगाड दे तो मास्टर उसकी प्रशसा करता है । मास्टर यदि यह कहे कि वाह यह तो बडा ही अच्छा काम किया है, बडी बुद्धिमानीका काम किया है । इतना सुनते ही जिस बच्चेने काम बिगाड दिया है वह झट क

मास्टर साहब मैने यह काम किया है । मास्टर केवल यह जानना चाहता था कि किस लडके ने काम बिगाडा, इसलिए प्रशसा करता था । इसी तरहसे ये जगतके जीव मास्टर बने रहते है, प्रशसा दूसरोकी विनय करते है । वाह यह तो बडी बुद्धिमानीका काम है, बडा ही सुन्दर काम है आदि । यह पता नही कि इस प्रशसाके फलमे मेरे को विपदा ही आवेगी । बाल बच्चोको पढा दिया । अरे उन बच्चोके जीवन भर दास बने रहे, उनकी सेवा की, उनको खिलाया पिलाया । उनका क्या किया ? अरे वे तो स्वय ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व है । केवल जानन ही उनका काम है । जगतके १०—२० हजार आदमियोके बीचमे जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ गई । यदि यहाँ न रहते, अन्यत्र कही रहते तो यह समागम मेरेको क्या था ? अगर कही कीडे मकोडे होते, पेड वनस्पति होते, या अन्य किसी पर्यायोमे होते तो इस रग ढगका ख्याल आता । अरे मनुष्य हो गये हो तो यह अपनेको समझो कि हम यहाँकी मौजके लिये पैदा ही नही हुए है । हम ऐसा ही समझें कि अन्य भवमे होते तो वहाँ क्या था ? हम निश्चय करे कि हम अपने ही कार्यके लिए पैदा है, हम दूसरोकी दिखावटके लिए, बनावटके लिए, तथा सजावटके लिए नही । हम कही अन्यत्र पैदा हो गए हो यह तो है नही । यह मै किसी भी क्षण अपने विकल्पोको छोडकर अगर काम करूँ तो अपने आपमे आनन्दमग्न हो सकता हू । यदि मै विकल्परहित होकर कार्य करता हू तो ठीक है, नही तो सब दुर्दशा हो जायगी । इस जगतमे कोई किसीका मोह करता, कोई किसीका मोह करता, पर मोही प्राय. सभी है । इसी कारण दुखी भी सभी है ।

देखो थोडा ही ज्ञान हो, पर मेरी आत्मामे विवेक हो तो ठीक है । पर बहुत ज्ञान हो और आत्मामे विवेक न हो तो ठीक नही है । उल्टा ज्ञानसे तो विकार है । थोडा ज्ञान हो पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमे समझ रहती है । बहुतसे शास्त्रोका ज्ञान हो, तीन लोककी रचनाओका ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो, पर विचार उल्टा हो, विवेक साथ न हो तो सही ज्ञान नही है ।

एक बुढियाके दो लडके थे । दुर्भाग्यसे उन दोनो लडकोके आँखका रोग था । एकको कुछ कम दिखता था और एकको ज्यादा दिखता था, पर पीला दिखता था । दोनो बच्चोको बुढिया वैद्यके पास ले गयी । वैद्यने दोनोकी एक ही दवा दी । कोई सफेद-सफेद भस्मसी थी । कहा कि चाँदीके गिलासमे गायके दूधमे इस पुडियाको इतनी-इतनी खुराक मिलाकर देना, आँखें ठीक हो जावेंगी । बुढिया दवा लेकर गयी । दोनोको चाँदीके गिलासमे गायके दूधमे भस्म डालकर देने लगी । पहले उस लडकेको दिया जिसको पीला दिखता था । लडकेने कहा—माँ, क्या हमी तुम्हारे दुश्मन मिले ? इस पीतलके गिलासमे मूत डालकर हमे दे रही हो, हम तो इसे नही पीवेंगे । अब उस लडकेको दिया, जिसे कम दिखता था । उसने देखा कि

चाँदीका गिलास है, दूध है, भस्म पडी हुई है। उसने उस दवाको पी लिया। उस दवाके पी लेनेसे आँखोका रोग दूर हो गया। जो ज्यादा देखता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक देखता था, उसकी उल्टी दृष्टि थी, इसलिए दवा नही पी और उसे भला नही हुआ। जिसका ज्ञान ज्यादा है, मगर प्रयोग या उपयोग उल्टा है तो भला नही होगा। मेरा भला तो निजी आत्माके अनुभवसे होता है जो कि सही ज्ञान है। यदि ज्ञान ज्यादा है पर सही नही है तो उससे भला नही हो सकेगा। जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्रकी दृष्टि होती है, अपने चरित्ररूप परिणमनकी दृष्टि होती है वह ही दृष्टि सही मानी जाती है। ज्ञानी पुरुष यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है। सोने, उठने, बोल-चाल इत्यादिका मेरा काम नही है। ये होते है उपाधिका निमित्त पाकर, अपने आप होते है। अरे होते है तो होने दो। मेरा यह काम नही है। मेरा काम सर्वत्र जानन ही जानन है। केवल जानन ही इस मुझ आत्माका काम है। मै करूँगा क्या ? अरे इस आत्मस्वरूपको उपयोगसे खोल लो, इसको देख लो। देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जाननका ही काम कर रही है। जानन सबमे रहता है। केवल जानन ही मेरा काम करता रहता है। यह काम कठिन हो रहा है। मैं सब ओरसे जानता हू, सर्वत्र ऐसी ही पद्धति जाननस्वरूपकी है। ससुराल जाने वाली बहुत-सी लडकियाँ हँसी खुशीसे जाती हैं, मगर रोना पडता है। भीतरसे तो यह होता है कि चूल्हा ठीक करना है, शृगार करना है, यह करना है वह करना है कुछ हँसी खुशी होती है, मगर यह जानती है कि रोना चाहिए, यही ठीक है। इसी तरह दूकानपर मुनीम ग्राहकोंसे ये बात करते है कि तुमपर मेरा इतना दाम गया है, मेरा तुम्हारा मेरे पास इतना आया है। इस तरह मेरा भी कह रहा है, परन्तु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नही, यह तो सेठका है। अरे मेरा तो यह काम नही, मेरी यह ड्यूटी नही। यह तो सेठका काम है। और भी देखो विवाह इत्यादिमे पडौस की स्त्रियां बाजा बजानेके लिए आ जाती है, गाने गाती है—"मेरे बना सरदार, राम जैसी जोडी" आदि सो तो ठीक है। अगर कही दूल्हाकी घोडीसे गिरकर टाग टूट जाय तो उनको कोई दर्द नही होता। और अगर दूल्हाकी माँ को इसका पता लग जाता है तो वह कितना दुःख करती है ? उसके दुःखका ठिकाना नही रहता है। सो भैया ! अगर परपदार्थोको मान लें कि ये मेरे है तो दुःख होगा और अगर यह समझमे आ जाय कि ये मेरे नही हैं तो दुःख न होगा। मेरा काम केवल जाननमात्र है। ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्माका काम ही केवल जानन है। हे प्रभो ! मै जाननके काममे ही सतोष पाऊ और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

अहा हा ! यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा ससार केवल मेरे सकल्पमे ही उत्पन्न हो गया व कल्पना मिटते ही नष्ट हो गया। यह मेरा है क्या ? ससार केवल कल्पनाओ—

ही बना हुआ है। कल्पनासे यह उत्पन्न हुआ और यहाँसे मरकर अकेले ही चला जायगा। जब तक मैं इस शरीरमे हू तब तक यह मेरा है, यह उसका है, इस सकल्पमे ही मै बन गया हू। केवल सकल्प ही हो गए है, यह मेरा काम है, यह मेरा परिवार है आदि। जब ये जुदा हो जावेंगे तो फिर दुनियाभरका पता चल जाय। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस देहसे निकल जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस यह करता है कि यह मेरा ही है। यही तो सकल्प है। यह सारा ससार सकल्पोमे ही बैठा हुआ है और सारे सस्कार ज्ञान होनेसे ही नष्ट हो जावेंगे।

एक बुढियाका छोटा बेटा मर गया। उसी छोटे बेटेको ही वह सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढिया उसे जलाने नही देती। उसको अपनी छातीसे लगाए रही। उस बुढियाको एक जगह साधु मिला। साधुसे बुढियाने बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला कि जिन्दा हो जायगा, मगर एक काम यह करो कि जिस घरसे कभी कोई मरा न हो, उस घरसे पावभर सरसोके दाने ले आवो। बुढिया जल्दी-जल्दीसे दूसरेके घर गयी, बोली कि हमे एक पाव सरसोके दाने दे दो। घर वाले बोले—हा, हाँ एक पाव नही, ५ सेर ले लो। बुढियाने पूछा—मगर यह तो बतलाओ कि इस घरमे कोई मरा तो नही है। घर वाले बोले—माँ, इस घरमे तो बहुत लोग मर गए—दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढिया बोली—तो हमे ये सरसो नही चाहिए। अब बुढिया तीसरे घर गयी। बोली—पाव सरसो चाहिए, बोले—हां हाँ १० सेर ले लो। मगर यह तो बताओ कोई घरमे मरा तो नही है, वे बोले अरे यहां तो बहुत मर गए है। इसी तरहसे बुढियाने १०-११-१२ घर ढूंढ लिए, सभी जगह यही एक उत्तर मिला। इतना पूछनेके बाद उसके ज्ञान जगा कि अरे सारी दुनियामे यही हाल है। इतना ज्ञान जब बुढियाके जग गया तो प्रसन्न हो गयी। बोली—अरे ये तो सब न्यारे-न्यारे पदार्थ है। अब तो उसके ज्ञान जग गया। बुढिया प्रसन्न चित्त साधुके पास गयी, साधुसे नमस्कार किया। साधुने पूछा—माँ तुम पसन्न दिखती हो, क्या तुम्हारा बच्चा जिन्दा हो गया। बुढियाने उत्तर दिया कि हाँ हमारा बच्चा जिन्दा हो गया। आपने सुनाया था कि सारी बातोमे ३ प्रकार हुआ करते हैं—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र। अगर शब्द पुत्र हो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र वह है जो दो हाथ-पैर वाला है और ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमे ज्ञान होता है।

बुढिया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्रकी ही मृत्यु हो गयी थी, वह अब तक जिन्दा है। वह अपने आपमे है. वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सारे विश्वमे मेरा कुछ है नही। यह बात पक्की मानो, नही तो धोखा ही धोखा रहेगा। जगतकी व्यवस्था यह है कि कोई किसीकी चीज छुडाता नही, पर सोच लो कि अरे ये कुछ मेरी नही हैं। इतना सोच

लेने से क्या बिगाड़ हो जायगा ? जैसे बुढियाको ज्ञान जग गया कि यह मेरा पुत्र ज्ञानपुत्र है, बोली महाराज मेरा ज्ञानपुत्र जिन्दा हो गया है। अरे मैं तो ठीक हू। मेरा ठीक करने वाला कोई इस जगतमे नही है। यह ध्यान अपने आपमे रमना चाहिए कि मेरा मात्र मैं ही हू, ये जगतके सारे पदार्थ हमसे छूट जावेंगे। यह विश्वास बनना चाहिए कि मेरा कोई इस जगतमे नही है। यह मैं सदा ज्ञानमात्र स्वतः परिपूर्ण हू, मैं जैसा हू तैसा ही हू।

अपने आपको छोडकर बाकी जगतके जितने भी पदार्थ है वे पदार्थ क्या आपके आधीन है ? वे आपके आधीन नही है। वे तो स्वय सत् है। उनके चतुष्टयमे उनका परिणमन होता रहता है। वे तो आपके आधीन हो ही नही सकते है। यदि कुछ आपकी इच्छाके अनुकूल हो गया तो वह काकतालीय न्याय है। जैसे कोई नारियलका पेड है, नारियल लगे हुए हैं, एक कौवा नारियलके पेड पर उडता है, उसके उडते समय ही अगर एक नारियल नीचे गिर पडे तो ऐसा लोग सोचते है कि कौवे ने नारियलको गिराया। अरे वह तो अपने आपसे ही गिर गया है, कौवेके गिरानेसे नही गिरा है। एक बार अगर ऐसा समय आ गया तो आ गया, बार बार नही आता है। कोई कभी आपके मनके माफिक काम बन जाय, आपके मित्र जन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवारके लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नही तो सर्वथा आपके अनुकूल कुछ नही होता। देखो भाई उस नारियलके गिर जानेमे क्या कौवेकी करतूत थी ? नही, वह तो स्वय ही गिरा था। मगर लोग कहते है कि कौवेके चले जानेसे नारियल गिरा। सो भाई परपदार्थ स्वय परिणमते है, जितने भी परपदार्थ हैं, वे किसी दूसरेके आधीन नही है, बल्कि स्वय ही अपने आधीन हैं। बडो बडोंके भी ऐसा नही हो पाता कि जैसा वे चाहे वैसा अन्यत्र परिणमन हो जावे।

राम और सीताका कितना बडा भारी स्नेह था, कोई प्रमाण दे सकता है ? राम जानते थे कि सीता निर्दोष है। धोबीके द्वारा कही बात फैल गयी थी। जब रामने वह बात सुनी तो फिर लोकमर्यादा को बचानेके लिए सीता जी को जगल छुडवा दिया। राम यद्यपि जानते थे कि सीता निर्दोष है फिर भी कहते है कि लोकधर्मकी मर्यादा रखनी चाहिए। लोग कुछ अनीति न ग्रहण करें—यह सोचकर ही उन्हे जगल भेज दिया था। तो भाई देखो सीता के आधीन राम भी नही हुए। सीताका इतना स्नेह था, फिर भी सीताके मनमाफिक कुछ न हुआ।

जिन लडको बच्चोंसे तुम प्रेम करते हो, वे आज्ञाकारी भी है, फिर भी वे अपने विषय कषायो को लिए रहते है। वे अपने स्वार्थके लिए ही आज्ञाकारी बने हुए है। वे मेरे आधीन नही है। भाई कोई किसीके आधीन नही है। वे स्वय ही परिणमते रहते है। व मेरे

अनुकूल नही परिणमते, वे मेरे आधीन नही है। मेरे आधीन तो मेरा ज्ञानस्वरूप है। मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानू तो मेरी रुकावट करने वाला कोई नही है। हम ही स्वय विषय कषायोमे पडकर अपने ज्ञानमे रुकावट पैदा करते है, अन्य कोई दूसरे पदार्थ मेरे ज्ञानमे रुकावट नही पैदा करते। बाहरी पदार्थोंमे पडने से ज्ञानकी रुकावट होती है। कभी किसी चीजकी इच्छा हो जावे कि अमुक चीज खा लें, अमुक चीज पी लें। न जाने कौनसा विघ्न आ जाय वह चीज कही न मिले।

भाई परपदार्थोंके सयोगमे तथा अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे नाना विघ्न नही होते हैं। अपने आपके स्वरूपका अनुभव करें तो करें और अगर न करें तो न करें। पर बाह्य-पदार्थोंके ख्यालको भुला देवें, विश्रामसे बैठें तो अपने ज्ञानका अनुभव सुगम हो जायगा। मेरे काममे दूसरे पदार्थ कोई बाधा नही डाल सकते हैं। हम स्वयं अपने कार्योंमे बाधा डाल लेते है। जैसे बाय वाला पुरुष खुद ही खटियासे उठकर बाहरको भागता है, इसी तरह विषय कषायोकी वेदना से हटकर बाह्यमे भागते हैं। बाह्यके उपयोगसे ही ये विषय कषाय बन गए हैं और दूसरी कोई बात नही है।

अरे तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव तो कर। लोकके व्यवहारकी सारी बातें पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, सुगम बात है, निर्विकल्प बात है उसकी ओर तो दृष्टि ही नही जाती। जो पराधीन है, दुर्गम है जिनमे विघ्न ही भरे होते हैं, ऐसे बाह्य पदार्थोंके सयोगके लिए कमर कसे है। भैया अपनेको ज्ञानानन्दमय स्वय सर्ववैभवसम्पन्न समभकर, बाह्यपदार्थोको अपने उपयोगमे न लेकर, अपने आपमे ही विश्राम पाकर, अपनेमे अपने लिए अपने लिए स्वय सुखी होओ।

देखो राज्यमे महान क्लेश हैं। राज्यका मतलब केवल राज्यसे न लो। राज्यका मतलब दुकानसे, व्यापारसे, आजीविका इत्यादि से है। ये सब बाहरी बाते है, इनमे पडनेसे क्लेश ही क्लेश है। भाई करोडो रुपयोका धन एकत्रित कर लें तो उसमे भी क्लेश ही क्लेश हैं। धन कमाने मे, रोजिगार करनेमे, राज्य करनेमे, हुकूमत करनेमे देखो कितने क्लेश है? अनन्ते क्लेश उन्हें हो जाया करते हैं। अब योगी सन्यासियोकी भिक्षावृत्ति देखो—कोई पुरुष ज्ञान उत्पन्न करके अतरगमे विरक्त हो जाय, अपने ध्यानमे लीन हो जाय वह योगी सन्यासी है। उसे कभी क्षुधा लगे तो उसे क्लेश नहीं होते। क्योकि जब भूख लगे तब वह बच्चेकी भाँति ऐषणाको निकलता है। वह किसी गाँवमे निकल जाय। यदि कोई आदरसे बुलाये, कुछ खानेको मिल जाए तो खा ले, नही तो सतोष करे, यही भिक्षावृत्ति कहलाती है। भिक्षा-वृत्तिमे केवल क्षुधामात्रका यत्न है। इन दोनोमे अन्तर देखो तो बरबादी दोनो ने की।

बडे-बडे महाराजा २४ घटे क्लेश ही उठाया करते है, पर एक सन्यासी मुश्किलसे पौन घटामे ही अपना काम कर लेता है, उसे कोई क्लेश नही होते है। ऐसा काम तो वे ही कर सकते है जिनके पास हिम्मत है। आहार न मिले तो ठीक है और मिले तो ठीक है। दोनोमे राजी होवे तो काम चलेगा, नही तो नही चलेगा। भाई भिक्षावृत्तिसे तो क्लेश नही होगे, पर बडे-बडे धन वैभवके होनेमे तो क्लेश ही रहेगे। परन्तु परमार्थसे शान्ति न तो भिक्षावृत्तिमे है और न धन वैभवसे है वरन् अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनसे है। भाई जब ज्ञान का अनुभव हो तभी स्वाधीनता है। जब इच्छा हो तब ज्ञानका अनुभव कर लो—ये प्रत्येक पदार्थ अगर तुम्हारे सयोगमे है तो यह पराधीनता है। मैं किसी भी धन-वैभव, परिवार इत्यादिके साथ न रहूगा, क्योकि ये सब मिट जावेंगे। आज न तो राम ही दिखते है, न तीर्थङ्कर ही दिखते है और न कृष्ण दिखते है। ऐसी ही जगतकी स्थिति है। जो इस समागम मे रहते है, समागममे ही मस्त है, उन्हे यह खबर नहीं रहती कि इससे क्लेश होगे। इन समागमोसे अचानक वियोग होता है। इन समागमोसे ही बडे-बडे क्लेश उत्पन्न कर लेते है। अरे हमे यह सोचना है कि सब पदार्थ जुदा जुदा है, उनसे मेरा कोई सम्बध नही है। कुछ भी तो गुँजाइश नही कि कोई परपदार्थ मेरा हो जावे। मैं तो जाननस्वरूप हू। जितनी भी चीजें है वे सब अपने आपमे है। मेरा किसी भी पदार्थसे सम्बन्ध नही है। यदि मेरा उपयोग बाह्यसे होगा तो मुझे सुख नही होगा। देखो भैया! यदि इन समागमोके बारेमे यह विश्वास हो जाय कि इनका वियोग होगा ही तो उनके वियोगसे दुःख न होगा। जैसे कोई मित्र ऐसा हो कि जिसके प्रति यह ख्याल आ जाय कि यह तो धोखा देने वाला है ऐसा ख्याल उसका पहले से ही बन गया है। यदि वह मित्र उसे धोखा दे देवे तो उसके प्रति ज्यादा दुःख नही होगे क्योकि पहले ही मालूम था कि इससे हमे धोखा मिलेगा और अगर जिसके प्रति कोई शका न हो और वह अचानक ही धोखा देवे तो उससे बहुत क्लेश होगा। बाहरी पदार्थोका जो समागम है वह भिन्न है, अहित है, विनाशीक है, ऐसा जानू तो क्लेश न होगा। वस्तुत. मैं तो केवल अपने आत्माके अन्दर रिक्त तत्वको जानता हू। सो मैं ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव करके स्वयं सुखी होऊ। देखो यह आत्मा स्वरूप बडा महान् है, ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानसे ही इसकी रक्षा होती है, सहजस्वरूप आनन्द ही इसमे भरा हुआ है। इसमे कोई अधूरापन नही है। ज्ञानका नाम ही आत्मा है, आनन्दमय ही यह आत्मा है, परमात्मा है। कोई पिंड रूप चीज तो मै नही हू। जो पकडकर दिखाया जा सके। भैया! जो मेरा ज्ञानस्वरूप है वह जानन है, इसीके माने आत्मा है। ज्ञानमात्र भावोको छोडकर अगर हम बाह्यमे झुके तो दुःख ही मिलेंगे। हम तो बिल्कुल ठीक हैं, हमारेमे कोई कमी नही है। मामला बिल्कुल तैयार है। खाना बिल्कुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ यह तुम्हारे विवेककी बात है।

सारा मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूपको नही देखते हो। अरे ये बाह्य पदार्थ जो मेरे कुछ नही हैं, जिनसे मेरा कोई ताल्लुक नही है। अरे अपने स्वरूपको न देखकर जिन बाह्यमे ही दृष्टि लगानेसे बरबादी ही बरबादी है उन्हीकी ओर झुकना यह अपने प्रभुपर अन्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहो तो देखो, यह तुम्हारे विवेककी बात है। अधूरापन तो कुछ है नही। मामला तो पूर्ण अनादिसे ही है। जिस पदार्थमे यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बैठे-बैठे अनुभव किया होगा कि कोई नीबू बडा हो, मानो आनेका एक वाला। उसकी छोटी-छोटी फाँकें करो, ऐसा उपयोगमे सोचो और उसके स्वादकी कल्पना करो तो नीबूका खटास गलेमे उतरता है। जिसे कहते हैं कि मुँहमे पानी आ जाता है। तो क्या आपने नीबूके रस का स्वाद लिया इसलिए गलेमे खटास आई ? नही, नीबूके प्रति ज्ञान किया गया, ध्यान किया गया तो उससे गलेमे खटास आयी।

बाहरमे से इस आत्माको कुछ नही मिलता, स्वयमे ही कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा जो सोचेगे वह मिलेगा। वह अपने ज्ञानकी चीज है, पदार्थोमे लोग मान लेते हैं। परपदार्थोके उपयोगसे कुछ नही मिलता है, केवल अपना ज्ञान परपदार्थोके जाननेमे लगना है सो उसके लगानेसे स्वयमे ही कुछ मिलता है। मेरी आत्मामे किसी चीजका प्रवेश नही है। परपदार्थोके उपयोगसे तो पर स्थान ही प्राप्त होता है और निजके उपयोगसे परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थोको सोच लिया कि मेरे है। अरे अगर बाह्यको सोच लिया तो खुदका उपयोग नही रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहाँ उपयोग लगाना चाहिये ? मुझे इज्जत नही चाहिए। अगर इज्जत चाहोगे तो मोहमे फसे रहोगे। मोहमे फसनेसे पराधीन रहना पडेगा। परमे लगनेसे देख लो लाभ है क्या ? भैया ! परपदार्थोसे कोई लाभ नही है। अरे अगर उन समागमोमे फंसा रहा तो पराधीन होना पडेगा। सब अपनी-अपनी भावनाओसे परकी आधीनताका विकल्प करके रहनेसे अपने-अपने आधीन हैं। ये सब एक ही जगहपर न जाने किस-किस गतिसे आकर इकट्ठा हो गए हैं ? किसी दिन ये सब यहाँसे चले जावेंगे। इस भवमे जिसने जन्म लिया है, क्या यहाँ कोई रह जावेगा ? नही, इस जगतके प्राणी अपने-अपने सतसे हैं, अपने आपमे ही परिणमते रहते है, उनसे किसीका रच भी सम्बन्ध नही है। वे सब इस जगतमे स्वय ही आए है और स्वय ही मिट जावेंगे। देखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतमे कोई किस गतिमे आया है, कोई किस गतिसे आया है। कितना समय इन प्राणियोका यहाँपर गुजर गया ? इस ससारमे प्राणियोने अपने विवेक को भुला दिया है, इस ससारके समागमोको इसने अपना लिया है। अपने को

समागममे ले जानेमे कोई विवेक नही है। इन सब समागमोसे हटकर मै अपने उपयोगको अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायकस्वरूपमे लाऊंगा—यही विवेक है। मैं निज जाननमे ही रमूं, यही प्रभुका दर्शन है। अपने सत्यका आग्रह हो तो सत्यका दर्शन होगा ही।

एक कथानक है कि एक पडित जी थे। उनके पास कुछ गायें, भैसे भी थी। पडित जी ने उन गाय भैसोको चरानेके लिए एक ग्वाला रख लिया। ग्वाला भगवानका भक्त था। एक दिन उसने एकादशीका व्रत किया, भगवानका भोग लगानेके लिए अपने मालिकसे कुछ आटा मांगा। पडित जी ने उसे आधा सेर आटा दे दिया। ग्वाला सोचता है कि इतनेमे हम खावेंगे और भगवान खावेंगे तो दोनो ही भूखे रह जावेंगे। उसने सोचा कि क्या करे पडित ने इतना ही दिया। अच्छा आधा मैं खा लूंगा और आधा भगवानको खिला दूंगा। अब उसने उस आधे आटेकी चार बाटियां बना ली। अब भगवानको वह देखता कि आते ही नही। देखो भाई उसने सोच लिया था कि जब तक भगवान नही खावेंगे तब तक मैं नही खाऊँगा। बोला कि भगवान जल्दी आवो हमे तो भूख लगी है। सो भैया! व्यन्तर देव कौतूहल करते फिरा ही करते है, सो कोई व्यन्तर पूर्वचारित्रकी चर्याके भेपमे आ गया। बोला, भगवान यह तो खाना इतना ही है आधा ही तुम्हे मै दूगा। अपना आधा हिस्सा मै ले लूगा, मैं भूखा कैसे रहूगा? खाकर जाते समय भगवानवेशी बोले कि अब हम दो जने आवेंगे। अब दूसरी एकादशीको भी पंडित जी ने वही आधा सेर आटा दिया। उसने तीन बाटिया बनाईं। वे दोनो आ गये। ग्वालेने कहा कि आज तो इतना ही है, सो जो हिस्सा बैठे सो खा लो। मैं अपना तिहाई हिस्सा ले लूंगा और दो तिहाई तुम दोनोके लिए रहेगा। खाया, जाते समय भगवानवेशी कह गये कि अबकी बार २० जने आवेंगे। ग्वाला बोला, कितने ही आवो जो हिस्सा बैठे सो ही मिलेगा। तीसरी एकादशीको ग्वाला बोला कि अब २० जने आवेंगे सो काफी भोजन रख दो। पडित जी ने कि हम तो रोज भोग लगाते कोई नही आता। देखें इसके पास कैसे आते? पडित जी ने २५ सेर मिठाई दे दी। ग्वाला जगलमे आग्रह करके बैठ गया। लगभग २०—२५ सेर का सामान ग्वालेने तैयार कराया था। सो बोला भगवान जल्दी आकर खाओ खूब चकाचक काम है। वहाँ तो २० आदमी आ गये। ग्वालेने कह दिया कि आज तो भरपेट खावो, हम भी सब खा लेंगे। पडित जी छुपकर देखते रहे। सब लोगो ने खा लिया और अन्तर्ध्यान हो गए।

देखो भाई ग्वाला सत्यका आग्रह ले करके बैठा था, इसीलिए भगवान ने न सही तो किसीने भी उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए।

मैं अगर सत्यका आग्रह करके रहू कि मैं ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ हू, मै ज्ञानमय हू, मेरा प्रभु मैं ही हू, मेरा अन्यसे कोई वास्ता नही है, मै यथार्थरूप हूं, नाना रूपोमे मै

नही हू, मेरा तो काम केवल जाननका है। मैं अपने ज्ञानतत्त्वमे रहता हू, ऐसा यदि सत्यका आग्रह होगा तो यही बैठे ही अपने प्रभुका दर्शन होगा अन्यथा अपने प्रभुके दर्शन होना असम्भव है। मै अपनेमे यह विश्वास न करू कि मै बाल-बच्चो वाला हू, परिवार वाला हू, नष्ट हो जाने वाला हू, पराधीन हू। ऐसे विचार यदि होंगे तो ये तो खोटे विचार है, खोटे परिणाम है, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकारका असत्यका आग्रह करनेसे अपने निज प्रभु का दर्शन नही हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेंगे। इस प्रकारके विचार यदि रहे तो ससारमे रुलना ही बना रहेगा।

भाई! अपना शुद्ध आग्रह करो तो भला होगा, नही तो भला नही होगा। परपदार्थो का आग्रह करने पर अशाति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूपका अनुभव नही हो पायेगा। अपने उपयोगमे लगने से ही भलाई है। मै अपने ही आपके स्वरूपमे ही अपना उपयोग ठहराने की कोशिश करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा कल्याण नही होगा। जैसे कहते हैं ना कि वहाँ न जाओ, वहाँ पर क्लेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्थोंमे न जावो वहाँ विपदा ही विपदा है तो मैं आत्मा अपने आपके सत्यके आग्रहको ठहराने की कोशिश करूं और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मैं केवल सकल्प विकल्पोको दूर करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नही। जैसे कहते हैं ना कि कौवे के कोसने से ढोर नही मरते। जैसे कौवा मास खाना चाहता है तो कौवेके कोसनेसे क्या गाय मर जायगी? इसी प्रकार मेरे सोचनेसे क्या परका वैसा परिणमन होगा? नही। सो मैं अपनेको अपने उपयोगमे लगानेकी कोशिश करू तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मामे किसी बाह्य चीजका प्रवेश न हो, मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टिमे रहे और मैं अपनेमे अपने लिए अपने आपमे स्वय सुखी होऊ।

प० दौलतराम जी कहते है कि मैं "भ्रम्यौ अपनको विसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्य पाप॥" मैं अपने आपको भूलकर पुण्य और पापको अपनाता फिरा। मैं क्या हू, इसका कुछ ज्ञान नही किया। किन्तु जो पुण्य और पापका उदय है उसको ही अपनाता फिरा। यह शरीर धन वैभव आदि पुण्य और पापका फल है। इसके कारण भी सुगमतासे पुण्य और पापका हुआ करते है। इस शरीरादिकके ही कारण सक्लेश हुआ करते है और इसके ही द्वारा हर्ष हुआ करता है, ये धन वैभव पापके भी फल हो जाते है, इसीकी वजहसे जान चली जाती है और इसीकी वजहसे चैन आती है तो यही वैभव पुण्यके फल हो जाते है। इस अपनेको छोडकर बाकी जितने परपदार्थ है उनको मानो वह सब पुण्य और पापका फल है। जब केवल कल्पना से पुण्य पाप बनते है तो पुण्य और पापके फलको बनाना अपने हाथ ही तो हुआ है। जो शुद्धस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, केवल ज्ञातादृष्टा है, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप है उसको न

अपना पाता । फिर क्या अपनाया, कुछ नही । जैसे कहते है कि अपने बच्चेको अपनाओ तो कुछ मिलेगा और गैरको अपनाओगे तो कुछ नही मिलेगा । गैर तो गैर ही है । ऐसा लोक मे कहते हैं । इसी तरह यह जो तेरा स्वरूप है उसको अपनाओ, इसीसे लाभ मिलेगा । पर जो गैर है, पुण्य पापके उदयके फल है उनको अपनानेसे हे आत्मन् तू क्या लाभ पायगा ? इस आत्माका यथार्थ ज्ञान न होनेसे इस जगतका प्राणी यह जानना है कि पर ही सब कुछ हैं, शरीरादि ही सारी सारभूत चीज है । वह बढवाई अपने शरीरकी चाहता है, परको ही सर्वस्व समझता है जिसका फल बुरा होता है । देखो जीवका नाम ब्रह्म है । ब्रह्म उसे कहते हैं जो उत्कर्षसे रहे । अब जिसने शरीरको मान लिया कि यह मैं हू तो वह शरीरको बढ़ायेगा, जिसने इज्जत को मान लिया कि यहां मे वह इज्जतको बढाएगा, जिसने आत्मतत्त्व को ज्ञान दर्शनको मान लिया कि मैं यह प्रभु हू तो वह अपना ज्ञानदर्शन बढ़ाएगा । इस अज्ञानी जीव ने इस पुण्य पापके फलको अपना मान रक्खा है इसीलिए उनको ही अपनाता, इससे दुःखी ही होता । यह नही पता कि मै तो केवल एक ज्ञानमात्र, जो पकड़ा नही जा सकता, छेदा नही जा सकता, घेरा नही जा सकता, आंखोसे देखा नही जा सकता ऐसा ही मै एक चैतन्य वस्तु हू । मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नही है । मैं पृथक् हू, सबसे न्यारा हू । जिसकी इस प्रकारकी दृष्टि नही होगी उसको शांति नही प्राप्त हो सकती है, क्योकि एकमात्र हितका मार्ग नही मिला । तू नाना प्रकारके अहितके मार्गोमे अपने आपको रुलाता फिरता है । यहाँ शाति मिलेगी, वहाँ शाति मिलेगी । जगह जगह तू ढूढता फिरता है परन्तु फल कुछ नही मिलता है । फलकी जगहमे ठोकर खाता है । अपने आपमे जान, अपने आपको जान । दुनियामे कुछ भी हो उससे मेरा क्या बनता बिगडता है ? बिगडता तो केवल अपनेमे कल्पनाए बनानें से है । कल्पनाओ पर ही तो यह सारा खेल जमा है । इसका फल क्या मिला ? क्लेश ही क्लेश । भावात्मक यत्न किए तो भावात्मक ही फल पाया । और हुआ क्या कल्पनाओंके द्वारा ही क्लेश उठाया । देखो कल्पनायें भी भावात्मक है और क्लेश भी भावात्मक हैं ? इनमे अन्तर देखो क्या है, कुछ नही । क्या पाया, कुछ नही । कल्पनायें की यानी भाव बनाया । भाव किया फल भी भाव हो गया । बात कुछ नही मिली । और यदि शुद्ध भाव कर लिए जायें अर्थात् ज्ञानमात्र अपने अनुभवको अनुभवा जाय तो कोई विकल्प न आए । केवलज्ञानका अनुभव हो । कही बाहर ख्याल न जाए । ज्ञानमे एक रस हो ऐसे भाव भर जाए तब शुद्ध आनन्दका भाव प्राप्त कर जावोगे । मै भाव ही करता हू और भाव ही भोगता हू । जैसा भाव करोगे तैसा भाव होगा और कुछ करतूत नही । बाकी और करतूत माना तो वहां सब अंधेरा है, माया है । ऐसी इस आत्माका जिसे पता नही, जो स्थूल है उन्हे वे समझते हैं कि यह मैं हू । जरा और बुद्धि चली, कुछ गहरायी तक पहुच गयी तो मै रागद्वेष,

मोह, माया हू और इस तरहसे कुछ पहिचानने चला तो जो रागद्वेषकी सतान है वह मैं हू। ये व्यक्तिगत रागद्वेष तो मिट जाते है उसे आपा नही कह रहा। इस रागद्वेषकी जो सतान है उसे मान गया कि यह मैं हू। इस तरह अनात्मस्वरूपको तो यह पहिचान गया कि सबसे निराला, ज्ञानमात्र, सारभूत जो आत्मवस्तु है उसका स्पर्श नही होता, जिससे सतोष प्राप्त होता। संतोष बाहर कही नही प्राप्त होता है, पर संतोष कही न कही तो लेगा ही। यदि यहा सतोष नही मिलता है तो बाहर सतोष लेगा। ऐसा अनुभव कर कि जगतमे मेरा कुछ नही है, मैं अकिंचन हू। तो तुझे शाति मिलेगी और जो माना कि मै कुछ हू वहाँ दुःख मिलेगे।

देखो भगवान अकिंचन है। उसके पास न स्त्री है, न पुत्र है, केवल एक आत्मा स्वरूप ही सामने है। उसके साथ शरीर भी नही होता, कर्म भी नही होते, क्लेश भी नही होते, बोलता भी नही, दृष्टि भी नही करता है। जानता तो है सब पर वह मेरी रक्षा नही करता है। वह केवल निराला अकिचन है। ऐसे अकिंचन प्रभुकी उपासनासे तो बडी-बडी आशायें सिद्ध होती हैं परन्तु जो सकिंचन बन गया, जिसके बाग-बगीचे, जमीदारी भी हुए, जिनमे भी वह आनन्दमग्न हुआ, परिवार, मित्रजन, इज्जतका बढावा इत्यादि भी उसके पास हुआ, ऐसा यह सकिंचन है। उनकी सिद्धिसे, उनकी भक्तिसे, उनके लगावसे उन्हे कुछ नही मिलेगा। मैं अकिंचन हूँ प्रभु। फिर भी उन बाह्यपदार्थोकी भक्तिसे हमें पाप और पुण्य प्राप्त हो गया।

देखो पहाड निर्जल है, उनपर पानीकी बूंद नही दिखती है, पर बडी-बडी नदिया पहाडोसे निकलती है पर देखनेमे एक बूद नहीं है। और जिनमे बूंद क्या, बहुत पानी भरा हुआ दीखता है, ऐसे जो समुद्र है उनसे कही भी एक नदी भी नहीं निकलती। हे प्रभो तू गजबका अकिंचन है, ऐसा मेरा स्वरूप भी अकिचन है। उस अकिंचन स्वरूपकी भावनासे ही राग, द्वेष, लगाव, मोह इत्यादि मिटते है, क्योकि ऐसी आकिंचन्य भावनासे भाव निर्मल होते है। ऐसी निर्मलताके होते हुए कर्म बधता है तो पुण्यकर्म बधता है। जो सकिंचन है जिसका परिवार विशाल है उसकी उपासनासे पापकर्म बधता है। क्योकि जो सकिंचन भाव लिए है, जिसने राज्य, धन वैभवसे लाभ समझ लिया है उसकी दृष्टि मलीन हो जाती है और दृष्टि मलीन होनेसे परिणाम भी मलीन हो जाते हैं। ऐसी यह जो जगतकी दृष्टि हो गई उससे ही कर्म बनते हैं। जब भावसे ही पाप और पुण्य कर्म बनते हैं तब निर्णय कर लो कि ऐसा क्यो है? अरे अपना स्वरूप तो अकिंचन है। मैं अकिंचन स्वरूपकी भावना करूं तो शुद्ध दृष्टि है और यदि सकिंचन स्वरूपकी भावना करूं अर्थात् जगतके बाह्य पदार्थोको मानता फिरूं तो अशुद्ध दृष्टि है। जिन सारी बातोमे हम गरवाये होते है अर्थात् घमड करते है वे मेरी कुछ नही हैं। वे सब मुझे भ्रममे डालने वाली बातें हैं। जिनमे हम इतराते हैं वे ही हमे धोखा

देती है ।

एक नगरमें एक सेठ जी थे । उन्होने ७ खंड की सुन्दर नई डिजाइनकी एक हवेली बनवाई । उद्घाटन करानेके लिए उन्होने बहुतसे निमन्त्रण भेजे । लोग आए । उद्घाटन हुआ । सेठ जी के यहाँ पर बहुत बडा जल्सा था । यह जल्सा सेठ जी के ही निमित्तसे हुआ था । सेठ जी खडे हो गए, बोले कि भाई यह हवेली जो हमने बनवायी है, जो आप लोगोके सामने है उसमे जो गल्ती हुई हो बताओ, गल्ती सुधरवाऊँगा । चाहे आधी हवेली गिरवानी पडे तो भी कौनसी बात है, उसे बनवाऊंगा अवश्य । एक व्यक्ति खडा होकर बोला, मानो कोई जैनी हो । कहा कि सेठजी इसमे दो गल्तियाँ हैं । यह सुनकर सेठ जी चौकन्ना हो गए । अपने इजीनियरो को बुलाया । इजीनियरोसे कहा कि देखो यह जो गल्तियाँ बतावें उनको अवश्य सुधारना । रुपयोकी परवाह नही । इजीनियर लोग बोले कि क्या गल्ती है यह तो बताओ । वह ज्ञानी बोला कि एक गल्ती तो यह दीखती है कि यह हवेली सदा बनी नही रहेगी । सेठ जी सुनकर दग हो गए । इस गल्तीको कैसे सुधारा जाय । और बोला कि दूसरी गल्ती यह है कि इसके बनवाने वाला भी सदा नही रहेगा । सेठजी फिर सुनकर दग हो गए । बोले कि यह दो गल्तिया कैसे सुधारी जावे कि न तो यह हवेली ही सदा रहेगी और इसके बनवाने वाला भी सदा रहेगा । सच है, अरे कुछ नही रहेगा । जिनमे तुम इतराते हो वे तुम्हें धोखा देंगे । हजार वर्ष पहले की बनवाई हुई हवेलिया तुम्हे क्या दिखाई पडती हैं ? क्या वे उस समय मजबूत नही बनवाई गई होगी ? उनमे खूब ममाले भर भरकर बनवाया गया होगा तब भी वे हवेलियाँ नही रही । सो ये भी हवेलियाँ अवश्य बरबाद हो जावेंगी, मिट जावेंगी । इन हवेलियोके बनवाने वाले लोग भी मिट गए होगे । तब फिर इन हवेलियोमे क्यो इतराएँ ? मेरा कोई शरण नही है । कोई कुछ नही है । केवल मोहके कारण जो कुछ मान रक्खा है वह सब सही दीखता है कि ये मेरे रक्षक है, वह मेरा रक्षक है । जिस प्रकारसे स्वप्नमे देखी जाने वाली बातें सही लगती है उसी प्रकारसे ये मायावी बाते भी सही मालूम होती है । यदि हम स्वप्न देखते है तो सब सच लगता है उसी प्रकार मोहका देखा आनन्द सच लगता है । अरे मेरा कही कुछ नही है । सब मिट जावेंगे । अरे जो सत्य दीखता है उसका नामो निशान भी नही है । उनमे विकल्पोको छोडकर कही कुछ नही है । राग, द्वेष मोह इत्यादिमे तो विश्वास न करो । वे सब मिट जावेंगे । ये बाह्य पदार्थ मेरे कैसे हो सकते है ? आगे का वियोग किया जाने पर बीते हुए समयको देखा जाय तो क्या इच्छाओ की पूर्ति दिखाई पडती है ? नही । जो काम हमने कल, परसो आजके लिए सोचा था क्या उसकी पूर्ति हुई है ? नही । जो इच्छाएँ होती है क्या उनकी पूर्ति होती है ? नही ।

जैसा सयोग होगा वैसा ही होगा । जो कुछ हम विचार करते है वह नही हो पाता

है। बाह्य पदार्थों को देखना यह सब कर्मके उदयका काम है। फिर क्या चाहिए कि आनन्द हो जाय ? अरे आनन्द नही होगा यदि तू बाह्यमे दृष्टि लगाए रहा। हे जगतके प्राणी ! यदि तुझे आनद प्राप्त करना है तो तू अपनी जिदको छोड दे। जिद करना तो अच्छा नही होता है।

एक बडी जिद करने वाली स्त्री थी और अपनी जिदके कारण अपने पतिको बसमे किए हुए थी। जो चाहती थी सो करवाती थी। एक दिन उस स्त्री का मन ऐसा आया कि पतिकी मूंछ मुंडवाऊगी। पति साहब तो मूंछ मुडवाना नही चाहते थे। इसलिए वह पेट दर्द का बहाना करके बीमार बन गई। बहुतसे डाक्टर पतिने बुलाये, डाक्टरने दवा की, फिर भी दर्द नही मिटा। तब पति बोला कि कैसे मिटेगा दर्द ? स्त्री बोली कि एक देवता आया है वह कहता है कि कल सुबह तक मृत्यु हो जायगी। मृत्युसे बचनेका सिर्फ एक उपाय है। जो तुम्हे प्यार करे वह यदि मूँछ मुँडाकर देखने आए तो ठीक हो जायगी। पतिने मूंछ मुड-वाली। अब वह स्त्री रोज चक्की पीसते समय गावे कि अपनी टेक रखाई, पतिकी मूंछ मुंडाई। पति बडा दुखी हुआ कि इसने मेरी मूँछ मुंडवाई और अब ताना मारती है। उसने अपने ससुरालको जल्दी ही पत्र भेज दिया कि तुम्हारी लडकी सख्त बीमार है देखना हो तो देख जावो, वह बच नही सकती। एक देवताने बचनेका उपाय बताया है कि इसको जो प्यार करते हो यदि वे मूंछ मुडवा करके आवेंगे तो ठीक होगी वरना ठीक नही होगी। अब क्या था ? पत्र पाते ही उस स्त्रीका पिता, भाई, चाची, बाबा सभी अपने-अपने बाल तथा मूंछ जिसके पास जो था मुडवा करके रातको ही वहांसे चल दिये। लगभग ४ बजे के करीब जब कि वह स्त्री पीस रही थी, अपना नित्यका गीत गा रही थी कि अपनी टेक रखाई पतिकी मूंछ मुडाई तभी वह सब लोग वहाँ पहुंच गए। वह स्त्री बार-बार वही गीत गा रही थी—अपनी टेक रखाई, पतिकी मूंछ मुडाई। अब उस पतिने पीछे से आकर कहा कि पीछे देख लुगाई, मुण्डोकी पल्टन आई। अरे जिद करना क्या है ? जिद किया तो क्या, न किया तो क्या ? उससे तुझे लाभ नही प्राप्त होनेका है। बताओ जिद करने से क्या मिलता है ?

भाई अपने परिणामोको शुद्ध रखना चाहिए। शुद्ध परिणामोके रखनेका उपाय यह है कि अपनेको आकिंचन मानो। यह समझ लो कि मेरा जगतमे कुछ नही है। जो कुछ भी जगतमे दीखता है सब जजाल है। अरे तू अपने विषयकषायोको भूल जा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा। नही तो आजीवन क्लेश ही रहेगे। यदि तू इन मायामयी मूर्तियोमे ही फसा रहा, इन बाह्य पदार्थोंको ही अपनाता रहा तो तेरे परिणाम बुरे हो जावेंगे और जीवनमे कभी सुख नही प्राप्त होगा और यदि तू इन बाह्य पदार्थोंमे न फंसकर अपने आत्मचिंतनमे समय व्यतीत किया तो तुझे सुख सदाको प्राप्त होगा।

आप कहोगे वाह क्या करे जब भूख लगती है तब भोजनका ख्याल तो आता ही है। अरे भाई जब भूख है तब भोजनका ख्याल कर लो, किन्तु जब भरपेट है तब तो कुछ अपनी भी सोचो। बाह्यमे दृष्टि करनेसे बाह्यकी ही ख्याल हो जाती है, और जहाँ उन बाह्य वस्तुओ मे फसा तहाँ क्लेश उत्पन्न हो जाते है। अरे उन बाह्य पदार्थोका ख्याल करनेसे आत्माका हित नही होगा। कभी-कभी तो तू अपने निजस्वरूपका चिंतन कर। ५ मिनटका समय तो कमसे कम आत्मचितनमे दो। तू बाह्य पदार्थोंको अपना सर्वस्व न मान, क्योकि उनसे तेरा हित नही होगा। तू अपने आत्मस्वरूपका ख्याल कर, सारे विकल्प जो बने हुए है उनको भुला तो तेरा हित होगा। तू उन विकल्पोका स्मरण कर जिनको पहिले किया उनके फलमे क्या कुछ अब रहा है? नही तो विकल्प कहाँ है? विकल्प कही दिखते नही है और यदि दिखते हो तो दिखा दो। इनका रग कैसा होता है, किस रूपके होते है? अरे विकल्पोकी शक्ल-सूरत नही होती। केवल कल्पनाएँ बना लेनेसे विकल्प हो जाते है। एक समय जब कि बूँदे पड रही थी, झोपडीमे पानी चू रहा था, झोपडीके पास शेर खडा था। झोपडीमे एक व्यक्ति बोला कि इतना तो शेरका भी डर नही जितना टपकेका डर है। जितना टपका परेशान करता है उतना तो यह शेर नही परेशान करता है। पासके शेरने समझा कि टपका कोई मुझसे भी बहादुर है। उसी समय एक कुम्हारका गधा खो गया था। वह रास्तेमे ढूँढ रहा था। जाते-जाते जहाँपर शेर खडा था वहाँपर पहुचा। वह शेरको गधा समझ गया था। झट उसे गधा समझकर उसका कान पकड लिया। अब शेर यह समझता है कि टपका आ गया। उसने उस शेरके ऊपर डडे भी चलाए। शेरने सब सह लिया। उसने शेरको बाडीमे बाँध दिया था। जब सवेरा हुआ तो देखा कि यहा तो टपका वपका कुछ नही है। तब शेरने छलाग मारी और चल दिया। उस शेरने विकल्प बनाकर ऐसा भाव बनाया कि अरे यह तो टपका आ गया, डर गया। इसी तरह यह विकल्प कुछ नही है। ये विकल्प पकडमे नही आते। कुछ क्लेश नही करते, फिर भी विकल्पोके आधीन होकर यह विकल्पोका दास हो गया और वैसे ही परिणाम हो गए। और जब विकल्पोके द्वारा इस प्रकारके परिणाम हो जाते हैं तो शाति नही रहती है, चैन नही आती है। इस प्रकार यह जीव अपने आपमे विकल्प बनाकर, कर्मोके फलोको अपनाकर व्यर्थ ही दुःखी होता है। तो अच्छा यह है कि जितना अधिक ज्ञानका उपयोग मिले, आत्मचरित्रको शिक्षण मिले उतना ही अच्छा फल है। हे आत्मन्! तू अपनी वर्तमान अवस्थाको मायारूप मानकर, अपनी आत्माको पहिचानकर सदा स्वाधीन हो और सत्य सुखी हो।

एक राजा और रानी थे। राजाका मन धर्म करनेमे कम था। रानी बहुत सम-

भाया करती थी कि राजा धर्म करो, ससारके वैभवमे गर्व न करो । तब राजा कहते कि हम क्या करें ? धर्मका फल हमको मिल चुका, हमे अब धर्मकी क्या जरूरत ? रानीने एक दिन कह दिया कि तुमने राजाजी सकल सुख किए पर धर्म नही किया, इसलिए जब मरोगे तब ऊट बनोगे । कुछ दिन बाद राजा मरे और ऊट बन गए । वह एक बादशाहके घरमे ऊट पैदा हुए । थोडे दिन बादमे रानी भी गुजर गई और वह उसी बादशाहकी लडकी हुई । अब जब लडकी विवाह योग्य हुई । थोडे दिन बादमे विवाह भी हुआ । अब उस लडकीकी मा ने यह सोचा कि इसके दहेजमे कोई अच्छी चीज दूं, ऊट बडा सुन्दर है उसे मैं दहेजमे दे दूं । बादशाहका भी विचार ऊट दहेजमे देनेका हो गया । दहेजमे ऊट दे दिया । अब ऊट भी बारातके साथ जा रहा था । बारात वालोने सोचा कि ऊटमे कुछ सामान लाद ले जावें । लडकीका लहगा, साडी तथा अन्य कपडे इत्यादि मूल्यवान चीज समझकर लाद दिये, जो कुछ थे वे सब ऊटपर लाद लिये । अब रास्तेमे ऊटको अपने पिछले जन्मका स्मरण होता है और दुखी होता है । हाय ! अपनी स्त्रीका लहगा, साडी इत्यादि अपने ऊपर लादा है । इस प्रकारसे वह मनमे विचारकर दुखी होता है उससे चला नही जा रहा है । नौकर डडे भी लगाता है पर दुखी होनेके कारण उससे चला नही जाता है । अब लडकीको भी स्मरण हो गया कि यह ऊट तो मेरा पूर्व जन्ममे पति था, परन्तु अब धर्म न करनेके कारण ऊट बन गया है । यही कारण है कि दुखके कारण इनसे चला नही जा रहा है । लडकीने नौकरसे कहा कि भाई मारो मत । हम इसे समझा देंगी तब चलेगा । ऊट भी पहचान गया । लडकी भी पहचान गई । स्त्री कहती है ऊटसे कि देखो पूर्व जन्मोमे तुम हमारे पति थे और धर्म न करनेके कारण तुम ऊट बन गये हो । परन्तु यह मेरे पति है ऐसा कहनेमे तो मुझे शर्म लगती है सो मैं तो कहूगी नही । अब तो चलनेमे ही कुशल है । चलना तो पडेगा ही अन्यथा डडे लगेंगे । यही हाल यहाँके समस्त प्राणियोका है कि वे धर्म नही करते ससारमे कही ऊट कही कीडे मकोडे, कही कुछ, कहीं कुछ नाना प्रकार जीव हो जाते है । देखो ना, राजाने धर्म नही किया था इसलिए ऊट बन गया था । तो ऊटकी ही बात नही, कुछ भी अटसट बन जावें ।

हे आत्मन्, जो धर्म नही करता वह मरकर दुर्गतिका पात्र होगा । इस जीवमे दुनियाका बाह्य कुछ नही है । सब भिन्न-भिन्न पदार्थ है । वे एक दूसरेका कुछ नही कर सकते है । इस कारण यह मनुष्य भव पाया है । इस मनुष्य भवमे सब तरफके रास्ते खुले हैं । यदि ये मनुष्य चाहे तो कीडे मकोडे बन सकते हैं, पशु पक्षी बन सकते हैं, देव बन सकते हैं, मनुष्य बन सकते है । सारे रास्ते इस मनुष्यभवमे खुले है । नारकी मरकर नारकी व देव नही हो सकता, देव मरकर देव व नारकी नही हो सकता । पर इस मनुष्यभवमे जो चाहे

वैसा ही बन सकता है। तो धर्मके लिए करना क्या है ? धर्मके लिए दान करना है क्या, श्रम करना है क्या ? अरे भीतरसे यह ज्ञान बनाना है कि यह तन धन मेरा नही है। मै तो सबसे निराला हू, ज्ञानमात्र हू, ज्ञायकस्वरूप हू। अन्य मै कुछ नही हू। मेरा किसी अन्य से सम्बन्ध नहीं है। मै अपने आपको सबसे निराला ज्ञानमात्र देखूँ। यही धर्म है और धर्म वह नही है कि मेरे मित्र भी मिल जावें, मेरे कुटुम्बके लोग भी मिल जावे, मेरा धन भी मिल जावे। इसी उद्देश्यसे वे धर्म करते है तो धर्म नही कहा जाता है। देखो अपने आपमे यही धर्मका पालन है, यही तप और सयम है। धर्म पालनेके लिए बाह्य तप और सयम दोनो करने पडते है जिससे कि हमारा उपयोग स्वच्छन्द न हो जाय, हमारा उपयोग विषय कषायोमे न हो जाय।

आज देखो बहुतसे लोग उपवास किए हैं। शरीरको कष्ट दे रहे हैं। बडी तकलीफ सह रहे है, किसलिये कि धर्म हो। धर्म है विषय कषायसे छूटना। सो यह उपवासादिक उसमे सहायक है। अरे धर्म करलो। धर्म केवल धर्ममे है, निज स्वभावमे है, शुद्ध ज्ञानमे है। बाह्य की केवल जानकारी कर लो। परपदार्थ पूरे है। वे अपनी सत्तामे है। मेरा गुण पर्याय मेरेमे है, उनका गुणपर्याय उनमे है। एक का दूसरेसे रच भी सबध नही है। एक दूसरेका कुछ नही करेगा। हाँ दूसरेका निमित्त पाकर अपना विभाव कर लेवे। मगर किसी को कुछ नही करता है। ऐसा स्वय आजादस्वरूप मैं इन पदार्थोंको देखू। ऐसा अपने आप-को देखो तो वहाँ क्या घट जाता है। ऐसा मनमे भाव न रहना चाहिए कि यह मेरा है, यह उसका है। यथार्थ स्वतन्त्र वस्तु स्वरूपका ज्ञान कर लेना ही परमार्थसे त्याग है।

जैसे दो आदमी है। अपनी-अपनी चादर धोबीको धोनेके लिए देते है। दो तीन दिन बाद एक आदमी धोबीके घर चादर लेने चला गया तो धोबी ने दूसरे व्यक्तिकी भूलमे बदल करके चादर दे दी। उस व्यक्तिने तो सोचा कि हाँ यह मेरी चादर है। वह अपने घर गया और चादर तान कर सो गया। अब वह दूसरा व्यक्ति जो अपनी चादर लेने गया तो वह जब धोबीके पास आया तो धोबी ने जो चादर निकाल कर दी उसे उसने कहा कि यह मेरी नही है। यह तो किसी दूसरेकी है। धोबी ने कहा कि अरे वह तो बदल गई है। तुम तो उस व्यक्तिको जानते हो जो साथ आया था उसीके पास वह चादर चली गयी है। सो वह व्यक्ति उसीके घर जाता है जिससे चादर बदल गयी थी। जब वह वहाँ गया तो देखा कि चादर ताने वह सो रहा था। बोला कि आपसे मेरी चादर बदल गयी है सो अब मेरी चादरको दे दीजिए। वह जाग जाता है और देखता है कि मेरी चादरमे कोई निशान है कि नही। कोई दाग हो या फटा हो। चादरमे देखा तो कोई निशान नही। यह चादर मेरी नही है, ऐसा सोचते ही उसको चादरका त्याग हो गया। भीतरमे ज्ञान हो गया कि यह मेरी

चादर नही है । देखो भीतरसे ज्ञान उसका सही बन गया । सही ज्ञान बन जानेसे यह ज्ञान हो गया कि ये मेरी नही है उपयोगमे चादरका त्याग कर दिया । इसी तरह गैर पदार्थ जिन पदार्थोंमे मोही रत हो रहे है । कुटुम्ब, परिवार इत्यादि जो सामने है, उनको भिन्न समझ कर निश्चय कर लो कि तेरा कोई नही है । तेरा मित्र तू ही है ।

तू अपने आपको देख, अपने आपको पहिचान, तब तो तेरा गुजारा चलेगा, नही तो तेरा गुजारा नही हो सकता है । तू ऐसा समझ कि यह मेरा नही है । जब तू ऐसा समझेगा कि ये मेरे नही है तो तेरा मोह और झझट खत्म हो जायगा । और यदि तू भूल करके अपने कुटुम्ब परिवार इत्यादिमे ही पडा रहता है तो तेरेसे विपदाएँ समाप्त नही होगी । तू अपने आपमे सच्चा ज्ञान जगा कि ये सब कुछ मेरा नही है तो वही त्याग होगा । अपना घर परिवार बच्चे इत्यादिसे ऐसा भाव बनाओ कि ये मेरे नही है, मैं तो सबसे निराला हू, ज्ञानमात्र हू । इतने भाव यदि अपने मनमे बना लिया तो सही मार्ग पर अपने को समझो । अन्यथा कितने ही धर्मके नाम पर काम करने पड़ें तो भी कुछ नही होगा । अपना ज्ञान सही बनाओ । सही ज्ञान स्वय स्वरूप ही है । 'निजको निज परको पर जान ।' अरे तू अपने आपको देख । वही तेरा सब कुछ है । तेरी रक्षा वही करेगा । और जो पर है उन्हे तू पर ही जान । उनसे तेरा कुछ हित नही होनेका है । धर्मके लिये मन वचन काय कृत काम धर्म भावकी मददके लिये है । सो सामायिक करो या भक्ति करो या स्वाध्याय करो उन सब प्रसगोके बीच अपना ऐसा ध्यान हो कि अपने आपको निराला मान लो । यह विचार मत वनाओ कि दस लक्षणमे धर्मकार्य करनेसे ज्यादा धर्म होता है, अन्य दिनोमे धर्म करनेसे कम होता है । कर्मको यह पता नही है कि जैनोके अब दस लक्षण चल रहे है । कर्म इस बात पर बैठे है कि परदृष्टिके भाव हो तो हमारा वश बढे । सो भैया धर्म तो बारहो महीना करने की चीज है । अभी पूजा करो, भक्ति करो, ठीक है क्योकि धर्मका कुछ लेश किये बिना कर्म भी नही छूटते । परन्तु दस लक्षणमे धर्म करोगे तो कर्म अधिक मेहरबानी रखेंगे, ऐसा नही है । कर्मोंका पता नही है कि जैनोके ये दस लक्षण है । कर्मका तो विभावसे निमित्तनैमित्तिक सबध है । १२ महीने सदा इस तरहसे सही परिणाम बनानेसे आत्माका पूरा पड जायगा । इस आत्माके विभावके कारण कर्म बन जावेंगे । चाहे दस लक्षण हो, चाहे और दिन हो उसे कुछ पता नही चलता है । तो सतोष न करो कि हमने तो धर्म कर लिया । अरे ये बात तो १२ माहो चलनी चाहिए ।

दस लक्षणके बाद क्षमावणी आती है । यह क्षमावणी भी मेरी दयाके लिये है । अपने आपमे दूसरेके बारेमे द्वेषका भाव आता है तो भाई उस द्वेषसे खुद की हिंसा होती है । भाई द्वेषको छोडकर आत्ममिलन सबमे होना चाहिए । खुदको कलकित जीवनमे रखनेसे

दु.ख होता है, कलकरहित रहनेका जिसे ख्याल होता है उसे शाति प्राप्त हो जाती है। यदि अपने आपमे शांति प्राप्त हो जाती है तो समस्त पाप धुल जाते है। कोई किसी दूसरे पर दया नही करता है। यदि अपने आपमे अपनी दया हो तो ठीक रहता है। यदि अपने आपमे दया नही है तो धर्म याने सवर निर्जरा नही होती है, कर्मोंका सचय चलता रहता है। हे आत्मन् ! तू अपने आपपर सच्चे दिलसे क्षमा कर दे। यही है सत्य जीवन, यही है, सयम। जो जो ये जीव यहाँ पर आए हैं उन्हें तुम नही जानते हो कि किस गतिसे आए है ? जो-जो ये जीव है उन्हे तुम बता नही सकते कि कितने दिनोके लिए आए है ? इसका रच भी पता नही है फिर आगे चलो तो ये जगतके प्राणी सब कषाय भरे हुए है इनसे किसीसे वैर, ईर्ष्या रखनेका क्या प्रयोजन पडा है, इसलिए सबको क्षमा करो। ऐसा न करो कि जो दोस्त है उनसे कधा भिडाते हुए चलो और जिनसे जरा सी खटपट है उनसे वात भी नही करो। इस तरह से अपनेमे जो अहकार भरा हुआ है उसीमे यदि बने रहते है तो हम दूसरो पर, क्या खुद पर भी क्षमा नहा करते है, क्योकि स्वपर दया करके भी अपने आपको हम क्षमा करने वाले हैं। क्षमावणी अपने आप पर दया करनेके लिए है। अपनेमे अगर दयाका भाव आता है तो अपने हृदयसे क्षमा कर लेना चाहिए। यही अपनेमे शूरता है। दूसरोको क्षमा कर देनेमे क्या हरज है ? अरे इसमे लेना देना कुछ नही है। वैसे तो कही भी कुछ नही लेने देने पडते है। केवल भाव बना लिए जाते है। अरे केवल इतना क्षमाका भाव बना लेनेसे ही निरतर आनन्द प्राप्त होता है।

एक नगरमे दो सेठ थे। मान लो कि एकके पास दो लाखका धन था और दूसरेके पास २० लाखका धन था। दोनो ही एक दूसरेको ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते थे। दोनोमे कषाय बन गई थी। दोनो ही एक दूसरेसे बोलते न थे। एक दिन ऐसा हुआ कि एक ही साथ दोनोके मनमे आया कि हम कितना कषाय भरे हुए हैं, यह कषाय हमारे लिए बुरा है ? कषाय नही करना चाहिए। इस प्रकारका अनुभव दोनोमे एक ही साथ हुआ। अब दोनो ही एक दूसरेसे मिलनेके लिए और अपनी कषाय भावना से निवृत्ति प्राप्त करनेके लिए अपने अपने घरसे चल पडे। एक सेठ अपनी कारसे चला और दूसरा ताँगे से चला। दोनो ही रास्तेमे एक दूसरेको मिले। कुछ भी दोनोसे बोला नही गया। वे तो दोनो ही एक दूसरेसे मिलकर गद्‌गद् हो विचारने लगे कि देखो हम लोग कितने कषायमे थे ? हम दोनो एक दूसरेसे बात तक नही करते थे। अब हमे परस्पर मिलकर रहना चाहिए और कषाय भावना का तिरस्कार कर देना चाहिए। अब दोनो एक दूसरेसे बोलने लगे और दोनो ही मिलकर रहने लगे। हे जगतके प्राणी ! तू अपनेमे दयाका भाव ला। यदि दयाका भाव नही लाता है, क्षमाका भाव नही लाता है तो तुझे जन्म मरणके चक्कर लगाने पडेंगे। अरे तू तो अपने

आपको भूल गया है, तेरे मे तो भूलने का कोई काम ही नही है। तब फिर तू अपने को क्यो भूल रहा है ? तू अपनेमे दया और क्षमाका भाव ला। देखो वे दोनो सेठ अपने आपमे दया और क्षमाका भाव लाए, इसलिए परस्पर बोलचाल हो गई। इतना ही नही दोनो ही शान्ति से जीवन विताने लगे।

हे आत्मन्। किसी दूसरेसे ईर्ष्या की भावना नही करनी चाहिए। अपने आपमे कषाय किंचित् मात्र भी नही लाना चाहिए। अपने को जान लो कि मै सबसे निराला हू, ज्ञानस्वरूप हू। मुझे अपने आप पर तथा दूसरो पर क्षमा करनी चाहिए।

पदार्थोके जाननेके प्रसगमे तीन बातें हुआ करती है। 'एक तो शब्दपदार्थ, दूसरे अर्थ-पदार्थ और तीसरे ज्ञानपदार्थ। जैसे यह चौकी है तो यह तीन तरहकी होगी। शब्दचौकी, अर्थ-चौकी और ज्ञानचौकी। घरमे भी शब्दघर, अर्थघर और ज्ञानघर—ये तीन हुआ करते हैं। शब्दचौकीके माने चौकी ये दो अक्षर। मुखसे जो बोला जा रहा है कि यह तो चौकी है या किसी कागजपर लिख दिया जाय कि "चौकी" और अगर आपसे पूछे कि यह क्या है तो क्या कहोगे ? यह चौकी है तो यह हुआ शब्दचौकी। यह काम करने वाली चौकी नही है। जैसे रोटी है, उसमे भी शब्दरोटी, अर्थरोटी और ज्ञानरोटी—ये तीन प्रकारसे समझना चाहिये। रोटी शब्द किसी कागजपर लिख दिया जावे और आपसे पूछें कि बतलाइए यह क्या है तो आप कहोगे रोटी है, यह रोटी किसी कामकी नही है, इससे क्या आपका पेट भर जायगा, भूख मिट जायगी। वह अर्थरोटी नही है, वह तो शब्दरोटी है। अर्थरोटी तो वह है जो बनी हुई होती है, जिसको खाते है। और ज्ञानरोटीके माने यह है कि रोटीके बारेमे जो ज्ञान होता है। इसी तरह अर्थचौकी वह है जिसपर पुस्तक रखते है और ज्ञानचौकी वह है कि जो चौकीके बारेमे ज्ञान होना है, उस ज्ञानका नाम है ज्ञानचौकी। इस तरह पदार्थमे तीन चीजें हैं, शब्दपदार्थ, अर्थपदार्थ और ज्ञानपदार्थ। इसी तरह लोकमे भी तीन तरहसे देखो शब्दलोक, अर्थलोक व ज्ञानलोक। यह जितना भी लोक है, यह दुनिया जितनी है वह है अर्थलोक। क्या अर्थलोक मेरा है ? नही मेरा नही है। वह तो मुझसे भिन्न है, वह मेरा नही है। जो 'लोक' शब्द लिखा है या लोक शब्द बोले तो क्या वह लोक मेरा है, नही। यह तो केवल शब्द लिखा है। यह तो शब्दलोक है। यह शब्दलोक मेरा है क्या ? नही यह मेरा नही है। शब्द भी मुझसे भिन्न है।

दुनियाके बारेमे जो ज्ञान होता है वह ज्ञानलोक है। वह मेरा पर्याय है, फिर भी मेरा नही है, क्योकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है, पर इस विकल्पके नष्ट हो जानेसे क्या यह लोक भी खत्म हो जाता है ? और भी समझ लीजिए। एक चौकीको समझ लीजिए। शब्दचौकी, अर्थचौकी और ज्ञानचौकी होती है, पर आपको दिखती केवल

एक यह अर्थचौकी है। शब्द एक बोला गया। वह क्या है शब्दचौकी। जिसपर यह किताब रखते है यह क्या है? यह है अर्थचौकी और चौकीके सम्बन्धमे जो ज्ञान बन रहा वह है ज्ञानचौकी। उस शब्दचौकीमे क्या हमारा कुछ लगता है? नही। वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थचौकी हमारी है, नही वह हमारी नही है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञानचौकीको अपनी कह सकते हो। वह विकल्प मात्र ही तो है। उस कल्पनाके नष्ट हो जानेपर क्या यह चौकी भी नष्ट हो जाती है? नही। चौकी नष्ट होती है उसकी ही परिणतिसे। इसी तरह यह लोक मेरा नही है। लोक अज्ञात है ऐसा भी नही है। जाननेमे यह लोक आ रहा है, मगर वह जानना क्या है? विकल्प है। ज्ञानका एक पर्याय है। उसके नष्ट हो जानेपर यह लोक नष्ट हो जाता है। क्या यह सब कुछ लोकमे नही है, ये मेरा नही है, अब मैं क्या रहा? केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा है। देखो भगवान को तो। उस भगवान की भी तीन किस्म है—शब्दभगवान, अर्थभगवान और ज्ञानभगवान। मैं मुखसे भगवान शब्द बोल दूं या किसी कागजपर भगवान शब्द लिख दू तो वह क्या है? वह क्या भगवान है, कौनसा भगवान है? अरे वह ज्ञानी भगवान नही है, वह तो शब्दभगवान है। अर्थभगवान कौन है? सयोगकेवली, अयोगकेवली व गुणस्थानातीत—ये है अर्थभगवान। जैसा भगवान है उस भगवानके बारेमे जितना ज्ञान होता है वह ज्ञानभगवान कहा जाता है। भगवानके बारेमे जो विकल्प होते है, ज्ञान होता है वह कैसा भगवान है? ज्ञानभगवान है। तो आपकी भेंट क्या उस शब्दभगवानसे हो सकती है, अर्थभगवानसे हो सकती है? नही। उस ज्ञानभगवानसे ही हमारी भेंट हो सकती है। भगवानके बारेमे हम जान जाते और उसी जाननमे हम तन्मय हो जाते तो उस भगवानसे भेंट हो सकती है। शब्दभगवान तो अन्य पदार्थ है उसे मैं नही जान सकता। मैं तो केवल ज्ञानभगवानको ही जान सकता हू, उस ज्ञानभगवानको ही पूज सकता हू। मैं ज्ञानभगवानकी ही भक्ति किया करता हू। मै शब्द-भगवान तथा अर्थभगवानकी भक्ति नहीं करता हू, कर नहीं सकता हू। कुटुम्बकी बात देखो। पुत्रमे भी शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र होते है। जरा शब्दपुत्रसे कहो कि एक गिलास पानी ला दो तो क्या वह ला देगा? अरे वह तो किसी कागजपर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द पुद्गल है वह कैसे पानी ला देगा? शब्दपुत्रको यदि मुखसे बोल दो कि पुत्र पानी ला दो तो क्या वह पानी ला देगा, नही। अब अर्थपुत्रको देखो जो कि घरमे बैठा है, दो हाथ, दो पैर वाला है, जो पुत्र आपके घरमे जन्मा होवे वह है अर्थपुत्र। ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमे ज्ञान बनावे, समझ बनावे। आप यह बतलाइए कि शब्दपुत्रसे आप मोह करते हैं। अरे शब्दपुत्रसे तो तू मोह करेगा नही, क्योंकि वह तो भाष वर्गणारूप पुद्गलकी पर्याय है, भिन्न चीज है, उससे तू तन्मय नहीं हो सकता है। आप तो अपने ज्ञानपर्यायमे तन्मय

है। शब्दपुत्रमे तो तू मोह करेगा नही। तो क्या तू अर्थपुत्रसे मोह करता है जो घरमे बैठा हुआ है ? वह भी अन्य पदार्थ है उसमे भी तेरी पर्याय नही पहुचती, उससे भी तू मोह नही करता। क्या उस शब्दपुत्रसे आप मोह कर सकते है ? अरे तू शब्दपुत्रसे मोह नही करता है और न कर सकता है। क्योकि वह तो भिन्न पदार्थ है। अर्थपुत्रसे भी तू मोह नही कर सकता। पुत्रके बारेमे जो विकल्प बनाया, जो ज्ञानकी परिणति बनाया उस ज्ञानपुत्रसे ही तू मोह करता है। इस तरहसे आप ज्ञानपुत्रसे मोह करते है अर्थात् पुत्रके बारेमे जो आपको विकल्प होते है वे विकल्प आप मोहसे करते है, उन विकल्पोमे आप मोह करते है, पुत्रसे आप मोह नही करते है। यह यथार्थ बात कही जा रही है। यह भी समझनेकी चीज है जिससे कि मोह घटता है। अरे मोह करते ही आकुलताए हैं। बाह्य तो बाह्य ही हैं। मैं तो अपने ही विकल्पमे तन्मय हू। मै अपने ही विकल्पसे मोह करता हू और अपने ही विकल्पसे जला भुना करता हू। दूसरोसे मै न राग कर पाता, न द्वेष कर पाता। मैं तो अपने आपमे ही राग और द्वेष किया करता हू। और इसी कारण मेरे विकल्प नष्ट होते रहते है और बनते रहते है। इसी तरह मेरे विकल्पोंके नष्ट होनेसे क्या वे बाह्य पदार्थ भी नष्ट हो जाते है या वे बन जाते है। नही वे अपने स्वरूप चतुष्टयसे ही आविर्भूत होते है। वे वे ही है और हम हम ही हैं। ये सारी बाह्य चीजें कुछ भी मेरी नही है। ये धन, पुत्र, मित्र, परिवार गृह सब ठाठ बाट मेरा कुछ नही है। मेरा तो मात्र मै ही हू। यह लोक मेरा नही है। मैं तो ज्ञानस्वरूप हू इससे लोक अज्ञात भी नही है और यह मुझसे ज्ञान छिपा हुआ नही है। यह ज्ञानसे जाननेमे सब कुछ आयगा। जाननेमे आ गया और जानना अगर मिट गया तो चीज नहीं मिट जाती है।

जितने भी शास्त्र ज्ञान देते है उनका तत्त्व यह है कि भाई ऐसी अन्य चीज अन्य ही है और मुझमे मैं ही हू, परमे पर है। वे सब अपनेसे भिन्न है। फिर खोटी कल्पनाएँ करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है ? जैसे बाह्य वस्तुको सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो, असलमे देखो तो वही निमित्तरूपसे दु खका कारण बन रहा है। कौन से ऐसे पदार्थ है जो मेरी शातिके कारण है।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरुके पास पढने आता था। एक दिन वह देरसे आया। गुरु जी ने पूछा कि क्यो देरसे आए ? शर्मीले शब्दोमे कहने लगा कि सगाई हो रही था। गुरु जी कहने लगे कि अब तुम गावसे गए अर्थात् अब गावसे मोह नही रहा। सगाई हुई कि गाव से गए। जहाँ सगाई की वही दृष्टि गई। अब तो तुम्हारा घरसे भी मोह नही रहेगा। कई दिन बाद फिर वह देरसे पहुचा। गुरु जी ने पूछा कि क्यो देर हो गई ? शिष्यने कहा कि शादी हो गई। गुरुने कहा कि अब तो तूं अपने माँ-बापसे गया। उनको तू नही पूछेगा। इसी

तरहसे गुरुने कहा कि कुछ दिन बादमे बच्चे होगे तो तब तो तू अपनेसे भी जायगा। तू उन बच्चोमे ही लगा रहेगा। कमायेगा, खिलायेगा, उनका पालन-पोषण करेगा। इस तरह तू बाहर-बाहर ही रहेगा और अपने आपको भूल जायगा। अरे ये तो बाहरी पदार्थ है। इनमे तू क्यो पडता है, इनसे ही तेरेमे आकुलताएँ आवेंगी और तुझे शाति नही प्राप्त होगी। अरे यह ज्ञानमे ज्ञान है। मुझमे मैं हू और बाह्यमे बाह्य है। ये सब स्पष्ट भिन्न-भिन्न रूपोमे नजर आते है। सब अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते है। यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते है। ज्ञान हो और मोह दूर न हो —यह नही हो सकता है। ज्ञानका स्वभाव ही मोहके आवरणको हटाता है। सूर्यका जब उदय होता है तो अधकार मिट जाता है। इसी प्रकार भीतर मे जब ज्ञान उगे तो मोहका अधकार मिट जाता है। और मोहका अन्धकार ज्ञानके उदयपर मिटे नही, यह नही हो सकता है। यदि मोह अभी मिटा नही है तो समझो कि अभी ज्ञानका उदय नही हुआ है। ज्ञानके होनेपर राग तो कदाचित् हो सकता है पर मोह नही हो सकता है। राग और मोहमे अन्तर है। राग कहते हैं उसे जो बाह्य वस्तुयें सुहा जावें और मोह कहते है उसे जो बाह्यको यह समझे कि मेरा है। बाह्य वस्तुमे ममत्वको मान लेना ही मोह है और बाह्य वस्तुवें सुहा जानेका नाम ही राग है।

मोहमे है अज्ञानताका अधेरा और रागमे है परमे लगाव। ज्ञान होनेपर परमे लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानताका अधेरा नही रह सकता है। यह मोह तो उत्पन्न होता है लगावसे, लगाव रखनेमे। लगाव परवस्तुवोमे हो जाता है और उन परवस्तुवोमे लगाव हो जानेसे विकल्प हो जाता है और उस विकल्पके रहनेसे मोह उत्पन्न हो जाता है। जिसे कहते हैं रागमे राग, परवस्तुवोमे राग हो गया। अरे यह राग मै हू। रागसे ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ रागका राग। रागमे राग हो जानेका नाम ही मिथ्यात्व है, यह महान् अधकार है। सो मै परपदार्थरूप नही हू। परपदार्थके विषयमे होने वाला जो संकल्प-विकल्प का जाल है उसरूप मैं नही हू। मैं तो अनत आनन्दरूप, त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हू। सो मैं अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ। अब मैं कैसा हू? इस विषयमे सोचिये—

मैं देहमे ठहरा हुआ हू फिर भी मैं देहसे नहीं छुवा हू, मैं उस देहसे मिला भी नहीं हू। देह तो जड है, मैं चेतन हू, मैं अमूर्त पदार्थ हू। यह देह तो मूर्त है। तो इस मूर्त पदार्थमे एक अमूर्त पदार्थ मिल जाय यह कैसे हो सकता है? अत. 'यह आत्मा इस शरीरमे रहते हुए भी शरीरसे जुदा है। अरे तूने परिवारको अपना माना है, पुत्रोको अपना माना है, यह बतलाओ कि क्या वे तेरे हैं? नही, वे तेरे नही हैं। अरे उनमे तुम किसलिए फसे हो? ये बच्चे जो है उनमे तू फसा है। अच्छा कैसे फसा है? वे तेरे नही है और न कभी तेरे हो सकेंगे। भाई आप तो यहाँ मौजूद है। कुटुम्ब, परिवार इत्यादि कही का कहीं बैठे हैं। आप उनसे

किस तरहसे बधे हुए है, किस तरहसे फसे हुए है ? आप उनसे बधे हुए नहीं है, अपने कुटुम्ब परिवार इत्यादिमे आप फसे हुए नही है। केवल आपने कल्पनाएँ बना ली है और उन कल्पनाओमे ही मोह बना लिया है, यही कारण है कि तू अपनेको यह समझता है कि मै परिवारसे फसा हू। अरे तू यह ख्याल न कर कि मै फसा हुआ हू। किससे फसे हो ? जरा बताओ तो। अपनी कल्पनाओको छोड दो। तू किसी बधनमे नही है।

ऐसा नहीं है कि तू कही जा न पाता हो, अपने को बधनमे खोल न पाता हो। अरे मैं तो अमूर्त हू, चैतन्यस्वरूप हू तो फिर मैं कैसे बध गया ? मैने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही सोच-सोचकर देहमे स्वय अपनेको फसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फसे रहते हैं पूर्व वासनाके कारण, पूर्वपरिचयके कारण, निराकुल नही हो पाते हैं। इसी तरह देह और आत्मामे भेद भी हो जाय, फिर भी यह आत्मा देहसे बँधी रहती है पूर्व वासनाके कारण, पूर्व सस्कारके कारण। पर इससे छूटने का उपाय भेदज्ञान ही है। किसी कुमित्रसे मित्रता हो जाय तो उस कुमित्रसे छूटनेका उपाय भिन्न-भिन्न प्रकृति, भिन्न-भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध ज्ञान कर लेना ही उस मित्रसे छूटनेका उपाय है। यह हमारे साथ कपट करता है, यह हमसे झूठ बोलता है, यदि इतना भी जान लेनेका ज्ञान नही है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है ? मै देहमे ठहरा हू तो भी देहसे छुवा हुआ मैं नही हू। देखो इस देहके कारण, इस कर्म उपाधिके कारण मेरे नाना रूप बन रहे है, नाना शरीर बन रहे है। कही कीडे-मकोडे बन गए, कही पक्षी बन गए, कहीं और किन्ही रूपोमे बन गए। इस प्रकारसे नाना रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेश मे भी हो जाते है, किन्तु जो आकारोपर दृष्टि रखते है वे अपनेको भूल गए है। तो मैं तो ज्ञानस्वरूप हू। हे भाई! अपने स्वरूपकी दृष्टि दो कि मै ज्ञानस्वरूप हू। यह मै ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हू। इसका आकार है, इसका क्षेत्र है। परन्तु इस क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्माका परिचय नही हो सकता है। आत्माका परिचय तो आत्माके अन्तरङ्ग लक्षणकी दृष्टिसे हो सकता है। आत्मा कहते हैं किसे ? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते है। मै सबको जान रहा हू, मगर मैं सब रूपोमे नही हू। अभी मैं इतनी चीजें जान रहा हू तो क्या इतना जाननेसे मैं इन रूप हो गया हू ? सिनेमाके पर्देपर कितने ही चित्र उठ जाते हैं तो क्या पर्दा उतने चित्रो रूप है ? नही। वह पर्दा तो स्वच्छ है। इसी तरहसे इस आत्मामे सब रूपोकी झलक आ जाने से यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या ? नही। मैं तो मैं ही हू, ये सब ये ही हैं। अन्य रूप मैं नही हू।

मैं सबको जानता हू, फिर भी मैं इन रूप नही हू। मैं तो सबसे निराला, ज्ञानमात्र अपनेको निरखता हू। यही ज्ञान है। इतने केवलके ज्ञानके बिना बुद्धि बाहर-बाहर घूमती है,

बाहरमे ही बुद्धि फंस जाती है और बाहरमें बुद्धि फंस जानेसे आकुलताएँ हो जाती है। मैं सबसे निवृत्त होकर केवल अपने आपके स्वरूपको देखूं तो वहां कोई क्लेश नही है। सब है तो सब रहे। मैं तो मुझमे ही हू। यह दुनिया तो मोहका स्वप्न है। स्वप्नमे देखी हुई चीजें जैसे झूठ नही मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमे प्रतीत हुई चीजें झूठ नही मालूम होती है। पर जैसे स्वप्नके बाद जग जाता है तो सब चीजें झूठ मालूम देती हैं उसी प्रकार मोहसे दूर होकर सम्यक्त्व हो जाता है और उस सम्यक्त्वके हो जानेसे परपदार्थोंके प्रति ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। सत्य और असत्यका निर्णय हो जाता है तब ये परपदार्थ झूठ मालूम होते है। देखो विचित्रताकी बात कि यह सबको तो जानता है पर इसे अपनी जानकारी नही है। यह जो जानने वाला पदार्थ है यह स्वय क्या है? इसको यह नही जान रहा है। यदि वह अपने आपको जान जाय कि मैं क्या हू, अपनेको यथार्थ रूपसे पहिचान जाय तो मोक्षका मार्ग मिल जायगा। इसी तरह सब ग्रन्थोमे आत्माके ज्ञानकी महिमा गायी गई है। मै अगर अपनी आत्माको ही सर्वस्व जानकर उसमे ही रम जाऊँ तो पूर्णतया ज्ञान व आनन्द होगा। जैसे लोग कहते हैं कि हे भगवान्! हे अल्ला! हे खुदा! तो यहांपर 'अल्य:' सस्कृतका शब्द है। अर्ह पूजाया धातुसे अरहत और अल् पूजाया धातुसे अल्ला बना है। अल्लाके मायने भगवानसे है। अरहतका अर्थ पूज्य है और अल्यका अर्थ भी पूज्य है। खुदाके मायने खुद अपने आपमे बसा हुआ। खुद तो यह है ही। खुद मायने स्वयं। (सभामे किसीने पूछा कि बिसमिल्ला क्या है? तो महाराजजी ने जबाब दिया कि मैं बिसमिल्लाके मायने तो नही जानता) आप बतावें बिसमिल्लाका क्या अर्थ है? क्या मै ही सब बताऊँ। देखो भाई! एक सेठानी बुढिया थी। उसका पति गुजर गया। लोगोने पूछा कि क्यो रोती हो? उसने कहा कि १०—२० दूकानें है उनका हिसाब कौन लेगा? पचायतके सरदारने कहा—गम न करो। रोती क्यो हो, हम सब सम्हाल लेंगे। बुढियाने कहा कि अभी ५००-६०० भैंस है उनका प्रबध कौन करेगा? सरदारने सब कुछ सम्हाल लेनेका वादा किया। सेठानीने फिर कहा कि अभी ५ लाखका कर्जा भी देना है तो पचायतके सरदारने कहा कि अब क्या हमी सबकी हां करें और लोग भी बोलें। तो भाई ऐसा है। क्या हमी सब बतावें आप लोग भी बतावें। मैं तो बिसमिल्लाका मतलब नही जानता हू। परन्तु जहाँ तक बिसमिल्लाका अर्थ लिया जाता होगा तो वह गुरुसे मतलब निकलेगा। तो भाई यह आत्मा सबको जानता तो है, मगर उन सब रूपोमे नही है। ऐसा मैं शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ।

यह आत्मा देहमे रहता हुआ भी देहसे छुवा नही है। रहना बात और है और छुवा होना बात और है। एक ही स्थानपर पदार्थ रहें, इस कारण छुवा हो जाय, ऐसी बात नही

है। छुवा होना तो प्रथम मूर्तिमे मूर्तिसे हुआ करता है। सो पुद्गल पुद्गलमे छूनेकी बात कह लो फिर भी पुद्गलमे पुद्गल पदार्थ भी परमार्थसे अन्य किसीसे छुवे नही, क्योकि सभी परद्रव्य अपना अपना जुदा अस्तित्व रखते है। जब किसी चीजमे किसी चीजका प्रवेश नही है तो छुवे हुए कैसे है? परमार्थसे तो पुद्गलसे पुद्गल भी छुवे हुए नही हैं। फिर मूर्त से मूर्त कैसे छुवे हुए हैं? यह आत्मा शरीरमे है अवश्य, पर शरीरसे अछूता है। जैसे किसी को टाइम दे रक्खें कि ८ बजे इस हॉलमे आप मिलिएगा। आप आ गए, और प्रवचन सुनते हुए आप उस व्यक्तिकी बाट जोह रहे है तो आप उस पुरुषसे बध गए, शरीरसे नही बध गए क्योकि अपने आप भाव करके पराधीन बन गए। घर वैभवमे कोई बधा नही होता। घर वैभवमे जहाँ अपने भावोको लगाया तो अपने आप ही बध गए। जब वह स्वय नही हो सकता तो समझो कि बध गया। दूसरोंसे वह नही बधा है। वह अपने आप ही बधा है। देहमे रहते हुए भी यह आत्मा छुवा हुआ नही है। नाना आकारोमे यह आत्मा चलती है, फिर भी यह आकाररहित है, निराकार है। क्योकि आत्माकी पहिचान ज्ञानलक्षणसे होती है। और ज्ञानलक्षणका कोई आकार नही है। ज्ञानका क्या आकार? जैसे अग्निका लक्षण गर्मी है उसका कोई आकार नही, केवल गर्मी ही उसका आकार है। इसी तरह आत्माका लक्षण है ज्ञान। ज्ञानका क्या आकार? जाननका क्या आकार? आप पर्वतको जानें तो जानन बडा नही और आप सरसोको जानें तो जानन छोटा नही। जानन चाहे जैसा हो, छोटा बडा नही होता। तिखूटी, चौखूटी चीज जाननेसे ज्ञान तिखूटा, चौखूटा नही बन गया। ज्ञान ही ज्ञानका आकार है और ज्ञान ही आत्माका लक्षण है। इसलिए आत्मा निराकार है। जो लोग इस ब्रह्मको ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापक एक मानते हैं और उस ब्रह्मकी ये समस्त पर्यायें है, ऐसी मान्यता जिनकी है उनका काम क्या है कि भाव पकडा, द्रव्य, क्षेत्र, कालको भावमे जकडा। जीवका भाव है ज्ञान और ज्ञानका लक्षण द्रव्य, काल, क्षेत्र नही है। ज्ञानभावसे वह एक स्वरूप है और वह कैसा है, सर्वव्यापक। वह ज्ञानभाव एक है, सर्व व्यापक है। वह कहाँ है? ऐसा स्थान देखनेमे नहीं आता है। वह ज्ञान तो सर्वव्यापक है, मगर उस भावमे क्षेत्र और काल जोड दो तो ब्रह्मवाद बन गया। द्रव्य, क्षेत्र और काल है व्यवहार तथा भाव है निश्चय। ये चारोंके चारो व्यवहार होते है और निश्चयसे होते है। फिर भी ऐसे अन्तरगमे छूने वाला कौन तत्त्व है? ऐसा सोचनेपर प्रतीत होता है कि द्रव्यके लक्षणको बताने वाला भाव तत्त्व है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल है व्यवहारकी चीज। कोई व्यवहारको छोडकर, व्यवहारकी चीजको छोडकर भावको ले और उसमें व्यवहारकी चीज लगा ले तो मान्यता यह बन जाती है। मात्र भावदृष्टिसे देखो तो केवल ज्ञानज्योति है वही ब्रह्म है। आत्माकी पहिचान ज्ञानभावसे

है। एक यह भाव बैठ जाय कि मै ज्ञानस्वरूप हू, जाननस्वरूप हू। जाननस्वरूप क्या है? शुद्ध जानन ही जाननस्वरूप है। इसका क्या स्वरूप है? इस ही लक्ष्यमे लग जाएँ और जानकर केवल अपनी आत्मामे, जिसे कहते हैं ज्ञानज्योति, उसमे ही लग जाएँ तो ज्ञानानुभव हो जाता है। जब अपनेको ज्ञानरूप न मानकर अन्य-अन्य रूपोमे माने और अपना ख्याल परमे लगावें तो वहाँपर आकुलताएँ, व्याकुलताएं आ जाती है। वैसे तो देखो सब बाह्य चीजें ठीक है, पर उनसे इसका कोई सम्बन्ध नही है। यह आत्मतत्त्व अर्थात् ब्रह्म चैतन्य-मात्र है, अमूर्त है। इस जीवके पास कोई आपत्तियां नहीं, कोई आकुलताए व्याकुलताए नही, पर यदि यह अपने आपमे सोच लें, सकल्प बना लें, विकल्प बना लें तो आकुलताएँ, व्याकुलताएँ आ जाती है, दु:ख आ जाते है। इस जीवमे तो ज्ञानमयताकी कोई कमी नहीं है। यह तो चैतन्यस्वरूप है। शुद्ध हो गया, शात हो गया, अपनेमे अपनेको समा लिया। लो यह अनुभूत आत्मतत्त्व हो गया। तो हम और आप तो परिपूर्ण हैं, स्वत.सिद्ध है, आनन्दघन हैं, सर्वस्व है, कोई कमी नही है, कोई विभाव नही, कोई सकट नही, कोई अशाति नही। पर यदि अपने आपमे सकल्प विकल्प बना लें, बाहरमे दृष्टि हो जाय तो अशाति हो जायगी और अशाति हो जानेसे दुःख प्राप्त होगे। ऐसा दुखी बनने का कारण क्या है? कारण यह है कि परको अपना मान लिया है, परको ही निमित्त मान उपयोगमे सर्वस्व कारण बना लिया है। यही कारण है कि उसे दुखी होना पडता है। यदि वह परको ही कर्ता बनाएगा, परमे ही अपनी दृष्टि लगाएगा तो उसके दुःख मिट नही सकते है। और उसके दु खोके मिटानेका सरल उपाय यह है कि वह परमे दृष्टि न लगावे। जब यह जीव पर को ही निमित्त बनाकर अपना मान लेता है तो वह उनमे फस जाता है। देखो उसने ऐसी वासना बनाई है, ऐसे सस्कार बनाए हैं कि उसे परमे फसना पडता है और दु खी होना पडता है। यदि वह इस अज्ञानताकी रस्सी को काट दे तो वह किसी भी बधनमे बध नही बध सकता है। किसी भी परपदार्थमे वह फस नही सकता है। यदि वह अपनी इस अज्ञानता को दूर नही करता है तो उसे ही पुरुषार्थहीनता कहते हैं। जो जैसा है उसको वैसा मानना ही पुरुषार्थ होता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानें तो वह ससारी है। ऐसा पुरुषार्थ करने मे लेना-देना कुछ नही है, नुक्सान कुछ करना नही है। केवल जो जैसा है उसे वैसा ही सोच लें। पोजीशन वाले लोग क्या कहेगे, जल्से वाले लोग क्या कहेगे, जनता क्या कहेगी इन सब बातोमे आ करके वह परमार्थसे विचलित हो जाता है। और जो जैसा है उसे वैसा ही मानने वाला जो पुरुष है वह अपने आपको ही मुख्य देखता है। वह इज्जत पोजीशन आदि की कुछ परवाह न करके आत्मकल्याणकी धुनमे रहता है। एक वेदान्तके कथानकका सग्रह है। उसमे लिखा है कि एक गुरु-शिष्य थे। वे एक पहाडीपर रहते थे। एक दिन उन्होने

देखा कि एक नगरका राजा कुछ समूहके साथ दर्शनके लिए आ रहा है। गुरु जी ने सोचा कि अगर इसका मन मेरी ओर आ गया तो बहुतसे लोग यहाँ दर्शन हेतु आवेंगे। बहुतसे लोगोके आनेके कारण हम ध्यानसे विचलित हो जावेंगे। गुरु जी ने जब देखा तो अपने शिष्य से कहा कि देखो बेटा राजा आ रहा है। अब हम तुमसे रोटिया खानेके विपयमे लडेंगे। और जब हम दोनोको रोटियोके विषयसे लडता हुआ वह देखेगा तो वह हमे तुच्छ समझेगा। फिर यहा न आवेगा और इसके न आनेसे यहा कोई न आवेगा। फिर हम अपने ध्यानमे लगे रहेगे। अब राजा आ गया। गुरुने कहा अपने शिष्यसे कि हमने तो दो ही रोटिया खाई है, आपने कैसे ज्यादा खा लिया ? शिष्य बोला कि महाराज कल आपने १०-१२ रोटियाँ खा डाली थी, हमने तो केवल दो ही खायी थी। इसलिए आज मैं ज्यादा खा गया। राजा सोचने लगा कि अरे ये तो महातुच्छ है, रोटियोके विषयमे झगडते है। राजा चला गया। शिष्यने तीन चार दिन बादमे गुरुसे पूछा कि क्यो आपने उस दिन रोटियोके विपयमे झगडा था। गुरुने कहा कि देखो झगडनेसे राजाका दिमाग बदल गया है वह हमे तुच्छ समझकर नही आता और उसीके न आनेसे भीड भी नही लगती। जिसको अपने कल्याणकी बात मनमे है वह अपनी बात करता है। वह अपनी इज्जत धूलमे मिला करके यदि अपनी रक्षा करता है तो कर ले। खैर जैनसिद्धान्तमे इतनी बात तो नही कही गई है कि अपनी बात बिगाड करके अपनी रक्षा करे। पर उपेक्षा करके अपनी आत्मभावनाको शुद्ध अवश्य करो। एक कविने एक कवितामे बताया है कि अगर तुम कम बोलते हो तो तुम घमडी हो, अगर ज्यादा बोलते हो तो तुम वाचाल पाखडी हो। अगर विनय करते हो तो तुम खुशामदी हो, अगर विनय नही करते हो तो तुम जिद्दी हो, अगर खर्च ज्यादा करते हो तो तुम धन खूब उडा रहे हो। यदि मितव्ययी हो तो कजूस हो ऐसा लोग कहेंगे। सो किस किसको प्रसन्न कर सकते हो बताओ। कुछ भी करनेकी कल्पना क्यो करें ? कुछ भी करें, सब मिट जायगा। और यदि भगवानका केवल ज्ञानस्वरूप उपयोगमे हो तो भगवान मिल जायगा। यदि परमे दृष्टि होगी, परमे लगाव होगा तो लोग ज्यादासे ज्यादा यह ही तो कहेगे कि इनका बडा वैभव है। कह लिया, पर यह तो बतावो फसेगा कौन ? मरेगा कौन ? अविवेकका फल भय का है। तू स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र मानता है। इसलिए हे भाई ऐसा विचार तो कर लो कि तू अपने आपमे ही दृष्टि करके ऐसा निर्णय कर मै किसीसे बधा हुआ नही हू। ये जगतके जितने भी पदार्थ है मेरे नही है—यदि ऐसा निर्णय तू कर ले तो तू प्रसन्नचित्त रहेगा। तेरे घर वाले लोग, देशके लोग तुझसे प्रसन्न क्या होगे ? चिंता न कर, आत्मधर्ममे चल। जैसे कहते हैं—कुंवा मत छानो, अपना लोटा छानो। हम बाहरके पदार्थोको छानते है, पर अपने आपको नही छानते। अपनेको देखो कि मैं ज्ञानमात्र हू, चैतन्यमात्र एक वस्तु हू, इसके

आगे मेरा कुछ भी सम्बंध नही है। एक दूसरेको मान लें कि यह मेरा है, यह उसका है, यह गैर है इत्यादि तो यह मोह है। मैं तो सबसे निराला हू, फिर भी यह छटनी करना कि यह मेरे लिए, यह परिवारके लिए है—ऐसी छंटनी करना मोह कहलाता है। ऐसी छटनी करना बहिर्मुखता हुई, बाह्यदृष्टि हुई, मिथ्यात्वदृष्टि हुई। मिथ्यात्वमें मिथ् धातु आती है, मिथ्का अर्थ सम्बध करना है। मिथ्यात्व उसे कहते है जिसमे किन्ही बाह्य चीजोसे सम्बध हो, परसे सम्बध दीख रहा हो, इसीका नाम मिथ्यात्व है। जैसे पदार्थ हो वैसी ही दृष्टि बने तो सम्यक्त्व है। अपने आप स्वय मैं हू, ऐसी दृष्टि परपदार्थोंमे आ जाय तो यह सम्यक्त्व हुआ। जो बाह्य पदार्थ है उनको उनके अपने स्वरूपमे देखना सम्यग्दर्शन है। अभी यह काम करनेको पडा हुआ है। यह पहला काम है जो कि आपको करनेके लिए पड़ा हुआ है। वह क्या कि जो जैसा है (स्वतन्त्र है) उसे वैसा ही भिन्न-भिन्न परिपूर्ण स्वतन्त्र निरखो। मै भी अपने स्वरूपमे स्वयं कैसा हू ? यह देखना। वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र है यह देखना अभी पड़ा हुआ है। फिर उस दृष्टिको देखकर केवल अपने आपको ही निरखना, यह मेरा दूसरा काम पडा हुआ है। बस इस स्वलक्षण दृष्टिसे ही हमारा पूरा पडेगा। जन्ममरणके चक्रमे पडनेके जो ये काम हैं उनसे छुटकारा पाने का यही उपाय है। स्वलक्षण दृष्टि बन जानेसे जन्ममरणका चक्र बन्द हो जायगा। हे आत्मन्! परमे दृष्टि न रक्खो। परमे दृष्टि रखनेसे तुझे दु ख होगे।

तू अपने उपादानमे ऐसे कषायें भरे हुए है, ऐसा उपादान है, ऐसी विषयवासना बनाए हुए है तो तू चाहे जहा रहे, चाहे घरमे रहे, चाहे जगलमे रहे, चाहे मदिरमे रहे, तुझे दु.ख होगे। जब तू कषायोको पकडे हुए है तो ऐसी अवस्थामे तुझे प्रत्येक जगह दु ख ही दु ख नजर आवेंगे। जैसे जिस पुरुषमे क्रोधकी वासना है और जरा जरासी बातोमे क्रोध आता है, चिडचिडा जाता है तो वह सदा दु खी होता रहता है। जैसे कोई नौकर रखता है, वह नौकर यदि ठीक कार्य नहीं करता है तो गुस्सा आ जाता है। यह सोचकर कि दूसरा रखेंगे, उसको वह निकाल देता है। इसी तरहसे और और भी नौकर रखता है तो काम ठीक न करनेकी वजहसे उनपर भी गुस्सा आता है और उनको भी निकाल देता है। नौकर न रखनेमे ठीक रहेगा, यह सोचकर सारे नौकरोको निकाल देता है अकेला रह जाता है। केवल अकेला वह व्यक्ति रह जाता है तो उसे बहुतसी अडचनें पडती है, व्याधियाँ पडती हैं और उसे दुःख होते है, क्लेश होते हैं। देखा क्रोधके उपादानमे हर स्थितिमे क्रोधी बन रहा है। जिनको कषाय करनेके योग्य क्रोध होनेकी प्रकृति बनी हुई है, वे किसी भी परिस्थितिमे हो, परको निमित्त बना करके अपनेमे क्रोध बना लेते है और क्रोधसे उत्पन्न कषायके द्वारा उसे दु ख होते रहते है। जिनको मात्र कषाय भरा हुआ है वे अपना मान चाहते हैं तो हर जगह अपना अपमान महसूस करते है। अपमान महसूस होनेसे कष्ट महसूस होता है।

जैसे कोई दस आदमी रास्तेमे चले जा रहे है, अपनी धुनमे चले जा रहे है। मानमे रहने वाले किसीने मनमे यह विचार बना लिया कि अरे देखो इन लोगोंने हमसे राम-राम नही किया। ऐसा विचार करनेसे मनमे कषाय आ जायगी और दुःख होंगे। अरे वे तो स्वतन्त्र हैं। उन पर बिगडनेसे उनपर क्रोध करनेसे तुम्हारा क्या बन जायगा और उनपर बिगडने का अधिकार क्या ? वे तो मस्त थे। अपने आप झूमते हुए चले गए।

कल्पनाए ऐसी भरी हुई है कि मैं सबसे बडा हू, ये मुझसे छोटे है। ऐसा होनेके कारण उनकी वासना ऐसी बन गयी है कि उन्हे क्लेश महसूस होता है। अरे २–४ लोग तेरी प्रशसा ही कर देंगे तो उसमे क्या हो जायगा ? तू अपनेमे यह सोच लेगा कि लोग मेरी इज्जत करते है। अरे जो तेरी प्रशसा करते हैं वे अपने कषायसे, अपने स्वार्थके लिए, अपनी शान्तिके लिये अपनी चेष्टा करते है। जिसकी मायाचारकी प्रकृति है वह जहाँ आवश्यकता है वहाँ भी मायाका काम करता है और जहाँ आवश्यकता नही है वहा भी मायाका काम करता है। जहा जरूरत नही वहा भी मायाकी प्रकृति पड गई ना। इसलिए चलनेमे, बैठने मे, उठनेमे, बोलनेमे सर्वत्र मायाकी बात किसी न किसी रूपमे आती रहती है। इस तरह तो है लोकप्रकृतिकी बात। किस कषायकी प्रकृति पड गई है वहा कषाय उठती है और उठते ही समय वह अपना कुछ न कुछ आश्रय बना लेता है। अब देखो तीन चीजें है—निमित्त, आश्रय और उपादान। कर्मके उदय तो निमित्त होते है व उन निमित्तोको पाकर विभावमे जब फैलते है तब जिन बाह्य वस्तुवोका आश्रय बना लेते है वे आश्रय है। जो ज्ञानमे आए अथवा जो सुलभ हो उसका आश्रय करके यह जीव उपादान अपने विभावमे पुष्टि करता है। जैसे लोग कहते है कि एक गुहेरा होता है जो छिपकलीसे बडा होता है। लोग यह कहते हैं कि उसकी आदत होती है कि मनुष्योको काटता है और काटकर खुद मूत कर उसमे लोट जाता है। ऐसा लोग कहते है। पर है क्या कहाँ ? बात यह है कि गुहेरेको जब मूत्र करना होता है तो उसका मूल इस ढगसे होता है कि वह किसी चीजको काटकर, दाँतोसे चबाकर मूत्र करता है। ऐसा करनेसे ही वह मूत्र कर पाता है। उसका ढाँचा ही ऐसा होता है, उसकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसको ऐसा करना पडता है। वह मनुष्यको ही केवल काटता हो, ऐसी बात नही है। उसके आदतकी यह अन्य ही बात है। उसका मूत्र उतरता है जब किसी चीजको काटता है, चाहे मनुष्य हो, चाहे लकडी हो, चाहे पत्थर हो वह उसे काट लेगा, उसे चबा लेगा तभी वह मूत्र करता है। उसका ऐसा प्रकृति व्यवहार होता है। इसी तरह जिस जीवमे विभाव उत्पन्न होता है उसकी यह पद्धति बनी होती है कि परपदार्थोंको निमित्त पाकर वह अपने विभाव करता है। विभाव करनेका ढग ही अन्य है। परपदार्थोंके सम्बन्धने विभाव कर दिया हो, ऐसा नही है। यह जीव जब विभाव उत्पन्न करता है तो ऐसे ढगसे

ही कर पाता है। उपयोगसे सम्बन्ध कर लेता है और वह विभाव कर लेता है, तब अशातिका कारण हमारी भूल है, अशातिका कारण हमारी गल्ती है।

अपने आपकी दृष्टि मिटाकर बाह्यमे दृष्टि करके खुद हम उलझाते हैं। हम गल्ती करते है उसका फल दुःख होता है, अशाति होती है। मुझको अशाति करने वाला दूसरा पदार्थ नही है। मेरी अशांतिका कारण मै ही हू। मैंने ही बाह्य वस्तुवोको सकल्प करके अपना मान लिया है। बाह्य वस्तुवोको ही मैने निमित्त बना लिया है और परपदार्थका बहाना करते है, मोह करते है। मोह बनाकर ही मैं दुखी होता हू।

कभी घरमे माँ को गुस्सा आ रही हो तो यदि वह कुछ कहेगी या उगलेगी तो गुस्सा ही उगलेगी और जो कुछ कहना होगा गुस्सेमे ही कहेगी।

बच्चा मिल गया, बच्ची मिल गई, कोई भी बहाना करके वह माँ उस बच्चेपर गुस्सा करेगी। वह उस बच्चा अथवा बच्चीको पीटेगी भी। यद्यपि वहाँ पर बच्चे अथवा बच्चीका कसूर कुछ नही है फिर भी माँ उनको पीटती है।

अरे बडे घरानेमे नौकर चाकर चतुर होते है। एक बाबूजी थे। वे गुस्सा बहुत हो जाते थे। वह नौकर जब कभी देखता था कि बाबूजी गुस्सामे है तो वह उनके सामने नही जाता था। वह जानता था कि यदि हम उनके सामने जावेंगे तो सारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। चाहे बाबू जी किसी दूसरे पर ही गुस्सा हो, पर वह नौकर उनके सामने नही पडेगा। वह समझता है कि गुस्सेका उबाल आ रहा है। यदि कही मै उनके सामने पहुच गया तो सारा गुस्सा हमारे ऊपर ही उतार देंगे। पुण्योदयमे कुछ सामर्थ्य पाया तो जिस चाहे पर जो चाहे करनेका प्रयत्न कर देता है मोही।

एक नदीमे एक बकरी पानी पी रही थी। ऊपर भेड पानी पी रहा था। भेड होता है बकरीका दुश्मन। भेड बकरीके बच्चेसे कहता है कि अरे मैं तो पानी पी रहा हू और तू पानी पी कर गदा पानी कर रहा है। बकरीके बच्चेने कहा कि महाराज आप तो ऊपर का स्वच्छ पानी पी रहे है, मैं तो नीचेके ढलावका पानी पी रही हू। भेड गुस्सेमे आ गया और बोला कि अरे तू नही पी रहा है तो तेरा बाप पी रहा है। होगा। ऐसा कहकर बच्चे पर धावा बोल दिया व मार डाला। ऐसे ही जब कषाय बढ़ती है, होती है तब किसी भी प्रसक्त परपदार्थको आश्रय करके कषाय बन जाती है। तब पदार्थ कैसे है? ये सब तू भूल जाता है। पदार्थ स्वतत्र है, अपने रूपमे हैं, कषाय रखने वाले व्यक्ति सब भूल जाते हैं, कषाय वालोको ऐसा ही नजर आता है जिससे उनको वह नजर कषायमे बल देती है। जैसा पात्र है उसका वैसा ही उबाल निकलेगा। कहते हैं कि उसको निमित्तने किया। अरे निमित्त ने नही किया उसे करने को था सो किया। यह तो बनना ही था। कर्मोका उदय

निमित्त होनेसे उसका कुछ न कुछ निमित्त मिल जाता है व विभाव हो जाता है। यह जीव बँधा होता है, परसे नही बधा होता है, माने अपने उपयोगसे जो भी ज्ञेय है, जिसमे रति है उसके बारेमे ख्याल बनाकर, विकल्प बनाकर, कल्पना बनाकर अपने आप स्वय अपने आपमे बध गया है, परतन्त्र हो गया है। पर यह आत्मा देहमे रहकर भी छुई हुई नही है, ऐसा मै अपने आपको देखूं कि मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमय हू और ज्ञानमय ही अपनेको निरख कर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

इस आत्माको कहते हैं एकत्वविभक्त। एकत्वका अभिप्राय है कि यह आत्मा अपने आपके गुणपर्यायमे तन्मय है, अपने ही स्वरूपमे तन्मय है, स्वय सर्वस्व है और विभक्तका अर्थ है कि जगतके अन्य सब पदार्थोंसे अत्यत जुदा है। जगतमे पदार्थ अन्य है कितने ? अनते तो पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य। इन सबसे यह आत्मा जुदा है, और अपनी आत्माको छोडकर जगतमे जितनी भी आत्माए हैं उन सबसे जुदा है, केवल अपने आपमे तन्मय है। इसे कहते है एकत्वविभक्त। इस मुझ आत्मामे पुण्य और पापका स्पर्श भी नही है अर्थात् इसमे न पुण्य है और न पाप। जब मैं अपने सहजस्वरूपको देखता हू तो पहले मेरी सहज सत्ता किस प्रकार है ? यह अपने इस प्रकारके मर्मको देखना हू तो उस एकत्वविभक्त निज आत्मपदार्थमे पुण्य व पाप कोई नही है, कोई प्रकारका विकार नही है। स्वभावमे कोई विकार नही है।

जैसे गदा जल है, कचडा मिला हुआ है। अगर जलके स्वभावको देखो अर्थात् जल का स्वरूप अपने आप अपनी सत्ताके कारण कैसा है ? इस बातको यदि देखो तो क्या गदा नजर आवेगा, नही। वह तो निर्मल है, अर्थात् जलका स्वभाव बिलकुल स्वच्छ है। इसी प्रकार इस गदी आत्मामे रहने वाली आत्माको १४ प्रकारके जीव समासोमे रहने वाले जीवमे दृष्टि करे तो क्या कोई विकार नजर आयगा ? नही। वह तो शुद्ध ज्ञायकमात्र ही नजर आयगा अथवा और भी जितनी स्थान पर्याये हैं—गति चार, इन्द्रिय पाच, काय छः, योग पन्द्रह, पच्चीस कषाय और सात ज्ञान। स्वभावदृष्टिमे तो केवलज्ञान भी नजर नही आता है, वहाँ तो केवल ज्ञानस्वभाव ही है। परन्तु केवल ज्ञान स्वभावपर्याय है, इस कारण स्वभाव विकास गुणके सदृश देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य-अन्य स्थानोमे देखो तो यह कोई विकास नजर नही आता है। वहाँ तो मात्र एक ज्ञानस्वभाव ही प्रतीत होता है। ऐसा एकत्वभाव मैं हू।

मैं लडको वाला हू, घर वाला हू, जानने वाला हू, ये सब बाते व्यर्थ की है। मैं सुखी हू, मैं दुखी हू, मैं धनी हू, मैं गरीब हू, मैं राजा हू, मेरे पास बल है, मेरा बडा प्रभाव है, मेरे पुत्र हैं, मेरे स्त्री है, मैं बलवान हू, सुडौल-बेडौल हू। अरे ये सब कुछ नही है। मेरे

मे तो विकारोका स्पर्श भी नही है। यह परम शुद्ध, निश्चयकी बात चल रही है। इसकी ही बात मान लेवो कोई तो ब्रह्माद्वैत आदि सब अभिप्राय खडे हो जाते है। मै आत्मस्वरूप कैसा हू, यह स्वभावदृष्टिमे ही दिखता है। जिस माँ का लडका बहुत अच्छा चल रहा है। साल ६ माह बादमे यदि वह जुवारी लडकेके सगमे आनेसे उसके जुवारीका प्रसग लग गया, तब एक बुढिया स्त्री कहने लगी कि देखो तुम्हारा लडका जुवा खेलता है। उस लडकेकी मा ने कहा कि नही, मेरा लडका जुवा नही खेलता है। वह जुवा खेलनेका व्यसन तो उस दूसरे लडकेका है मेरेमे नही है। मतलब यह है कि वह अपने लडकेको वैसा ही सुशील समझती है जैसा कि प्रारम्भमे था। वह स्त्री अपने लडकेके प्रति कहती है कि मेरे लडकेको सोहबत में रखकर इस दूसरे लडकेने जुवा सिखला दिया है। यह जुवा खेलनेकी आदत उस दूसरे लडकेमे ही है, मेरे लडकेमे नही है। इसी तरहसे विवेकी जीव इस चैतन्य आत्माको सहज स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप मानता है, इस आत्मामें कोई विकार नही है, इसमे पुण्यपाप नही, रागद्वेष नही। कोई कहे वाह वर्तमानमे तो ये सब है। अरे यह कर्मोकी प्रकृति है, मेरी प्रकृति नही। रागकी आदत तो कर्मोसे है। द्वेषकी प्रकृति कर्मोसे है। ऐसे निमित्तपर आरोप किया गया है अपनी खराबियोका। जो अपनेको शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमे कषायभाव और पुण्य, पापका स्पर्श नही है। सो ऐसी वस्तुस्थिति मेरी होवे अर्थात् अविकार होवे। कही परपदार्थमे, कही नैमित्तिक भावमे, कही अपने प्रदेशोमे—यह मैं हू, यह मेरा है, इससे ही मेरा भला है, इस ही मे रमना चाहिए इस प्रकारके भाव उत्पन्न न हो। मै ज्ञानमात्रका अनुभव करूँ, ज्ञानदृष्टिमे रहू, इस प्रकारके भाव उत्पन्न होना चाहिए। कहते हैं ना कि "जो बोले सो फसे।" अरे समाजमे कोई काम करते हो तो यदि कोई पूछे कि अमुक काम करते हो जो बोले कि हाँ हाँ मै करता हू सोई फंसेगा। घरमे, समाजमे, देशमे जो बोलेगा वही फसेगा। किसीसे पूछा--भैया! स्वरूपनगरका रास्ता कौनसा है ? बतावो। वह बोलेगा कि इस रास्तेसे चले जावो, स्वरूपनगर मिल जायगा। नही-नही जरा आगे चलकर थोडासा बता दो। इस तरहसे वह फँस जायगा और यदि रास्ता बतातातो न फसता। ऐसे ही जो पर-द्रव्योमे राग करता है सोई फसता है।

सुना होगा कि एक साधु थे। राजा वन्दना करके उसके पास बैठ गया। साधुने पूछा कि बोलो क्या चाहते हो ? राजा बोला, "महाराज मेरे कोई बच्चा नही है, एक बच्चा हो जाय यह मैं चाहता हू। साधुने कहा कि अच्छा जावो, एक बच्चा हो जायगा। इस प्रकारसे आशीर्वाद मिल गया। राजा घर आया, घरमे रहने लगा। साधुने १५-२० दिन बादमे देखा कि रानीके अभी गर्भ नही है, कोई मरता हो तो उसे गर्भमे भेज दे। उस समय कोई मर नही रहा था। फिर साधुने सोचा कि अच्छा चलो खुद ही मरकर रानीके पेटमे

पहुचे। खुद साधु मर गया और रानीके पेटमे पहुच गया। अब साधु गर्भमे पडा हुआ सोचता है कि मैं गर्भसे कैसे निकलूं? साधु परेशान था। वह मनमे विचार करता है कि यदि मैं वचन न दे देता तो ठीक था। वह साधु बार-बार विचार करता है कि मैं अब निकलूं। साधु गर्भमे बच्चेके रूपमे पडा हुआ है। वह सोचता है कि यदि मैंने वचन न दे दिया होता तो आज यह परेशानी नही होती। अच्छा अब मैं जब बाहर निकलूंगा तो बोलूगा नही। बच्चेके रूपमे साधु बाहर निकल आया। सात आठ वर्षका हो गया, बच्चा बोलता ही नही। राजा परेशान हो गया। बोला कि लडका तो हुआ पर गूगा हुआ। इसे जो ठीक कर देगा उसे मैं बहुतसा धन दूंगा। एक दिन बच्चा बगीचेमे घूमता हुआ पहुच गया। वहाँ पर देखा कि एक चिडीमार जाल बिछाए हुए बैठा था। और अब यहाँ चिडिया नही है ऐसा समझकर जालकी तह करके जानेकी तैयारी कर रहा था। इतनेमे ही एक चिडिया जो कि पेड़के ऊपर बैठी हुई थी, बोल उठी। अब चिडिया पकडने वालेने जाल फैलाया और उस पक्षीको जालमे फाँस लिया। तब राजकुमार एकदमसे बोल उठा कि "जो बोले सो फसे।" अब क्या था चिडीमारने समझ लिया कि राजकुमार बोलने लगा। वह राजाके पास गया। राजाको खबर दी कि राजकुमार बोलते है। इतना सुनकर राजाने १० गाँव इनाममे दे दिया। अब राजकुमार घर आया। राजाने देखा कि बच्चा तो बोलता ही नही है। राजा बोला—अरे पक्षी मारने वाले भी मुझसे दिल्लगी करते है। राजाने क्रोध करके चिडीमारको फाँसी की सजा सुना दी। अब चिडीमारसे राजाने पूछा कि तुझे जो चीज चाहिये सो बोल। चिडीमार बोला कि महाराज हमे कुछ नही चाहिए, केवल ५ मिनटके लिए आप अपने बच्चे से मिला दीजिए। राजाने बच्चेसे मिला दिया। चिडीमार बच्चेसे बोला कि हे राजकुमार! मैंने कभी जिन्दगीमे झूठ नही बोला, पर आज मैं झूठा बन रहा हू। खैर, अब तो मेरा जीवन समाप्त ही हो रहा है परतु तुमसे विनय यह है कि जो शब्द बगीचेमें कहे थे वही कह दीजिए। बच्चेने वही शब्द बोल दिया। १० मिनट तक उस बच्चेने छोटासा भाषण भी दिया। बाद मे बच्चेने बताया कि देखो पहले मैं साधु था। राजा दर्शन करने गए। हमने राजाको दर्शन दिया था। राजासे मैंने बोल दिया था, इसलिए मैं फस गया। इसलिए मैंने बोलना बद कर दिया था। इस तरहसे सारा किस्सा बच्चेने सुना दिया।

देखिए राजासे साधुने बोल दिया तो साधु फस गया, पक्षीने बगीचेमें बोल दिया तो पक्षी फस गया और चिडीमारने राजकुमारसे बोल दिया तो चिडीमार फस गया। इस लिए इस जगतमें जो बोलता है वही फसता है। यदि ज्यादा बोल-चाल जगतमें रखते हो तो राग बढेंगे, द्वेष बढेंगे। कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो दसो दिन तक बच्चोसे नही बोलते हैं। बच्चे पढने-लिखने, खेलने-कूदने सभी जगह आते जाते हैं, पर उनसे सहज ही

बोलते है । उन बच्चोंसे उनका स्पर्श भी है । उनसे वह अनासक्ति करता है तो पराधीन नही होता है और यदि आसक्ति करता है तो पराधीन हो जाता है । अब बताओ कि परिवारमे जितने लोग है उनसे इस आत्माका क्या सम्बध है ? यदि कोई सम्बध हो तो बतलाओ । बापकी आत्माका पुत्रकी आत्मासे क्या सम्बंध है ? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ । अब देखो कोई सपूत है, पिताका आज्ञाकारी है तो पिताको दुःख है या सुख । दुख ज्यादा है । पुत्र अगर कुपूत है, अन्यायी है तो पिताको दुःख है या नही । नही की बात विशेष है । कुपूतसे दुख मिट जायगा । वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अदालतमे लिख दें कि बच्चेका हमसे कोई सम्बध नही है, मैं इसका जिम्मेदार नही हू । बस दुःख मिट गया । और यदि लडका सपूत है, आज्ञाकारी है, बडा विनयशील है, तो उसके प्रति राग करके बाप श्रम ही श्रम तो उठायगा, आराम कहाँ पायगा ?

अच्छा यह बताओ कि यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी होगा तो बाप दुखी होगा या नही ? दुखी होगा । कैसे ? अच्छा देखो यदि पुत्र सपूत होगा आज्ञाकारी व विनयशील होगा तो उसे सुखी करनेके लिये बाप अथक परिश्रम कर क्लेशमे पडा रहेगा और यदि पुत्र कुपूत है तो उसके बाबत यह प्रसिद्धि करके कि इससे मेरा सम्बन्ध नही, छुट्टी पा लेगा । देखो दुःख सपूतमे है कि कुपूतमे है ? यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोहमे तो क्लेश अवश्य होगे । और यदि पुत्र कुपूत है तो न तो मोह ही बढ़ेगा और न क्लेश ही होगे । अरे देखो सगीत बजाने वाले चार जने है । कोई तबला, कोई सरगी, कोई मजीरा, कोई हारमोनियम बजाता है । और सब अलग-अलग गाँवके हैं । परिचय भी नहीं है तो भी सगीत विषयके कारण एक दूसरेकी तारीफ करेंगे । इस तरहसे ४-५ मिनटमे ही उनमे परस्पर सम्बध हो जायगा । उनमे परस्पर दोस्ती हो जावेगी । सबमे आपसमे बोल-चाल हो जायगी । अब देखो संगीतके विषयमे ही उनमे बोलचाल हुई ना । अब देखो वे आपसमे फस गए । वे एक दूसरे को भोजनादिके लिए भी निमन्त्रित करेंगे । इस प्रकार उनके बीचमे घनिष्ट सम्बध हो जायगा ।

अरे यह सब सम्बध क्या है, यह सब खाक है । ऐसा करनेसे तू मोहमे फसा रहेगा, तुझे आजीवन क्लेश रहेगे । अरे तू तो परमार्थमे शुद्ध स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप है, तेरेमे तो क्लेशो का नाम नही, फिर क्यो जगजालमे फसकर क्लेश प्राप्त कर रहा है । करने योग्य काम तो तत्त्वदृष्टि है । सो उसकी ही रुचि कर अपनेमे सुखी होओ । तत्त्वोमे अन्य-अन्य नाना मत हैं । कहते है कि मुस्लिम तत्त्व यह है, जैन तत्त्व यह है, बौद्ध तत्त्व यह है । अरे यह क्या है ? व्यर्थमे नाना प्रकारके विवाद बढाते हैं । कोई किसी प्रकारके विचार मानता है, कोई किसी प्रकारके । कोई-कोई हनुमानजी को बदरके मुख वाला व पूँछ वाला कहते है । जैन लोग कहते हैं कि हनुमान इतने सुन्दर थे कि उनके समान सुन्दर उस समय कोई नही था ।

जैनसिद्धान्तमे तो बताया गया है कि वह एक कामदेव पदधारी अति सुन्दर राजा थे। खैर विचारोसे क्या मतलब ? आप अपनेको तो देखें कि अपना स्वरूप कैसा है ? अर्थात् मैं अपने आपको देखूं कि मैं कैसा हू ? जो मैं हू वही समझू, बस इस ही मे कल्याण है।

अरे अन्यको देखनेका कोई मेरा प्रयोजन नही है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखनेका है। मैं अपने आपको देखूं और अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ। कही चले जाओ सुख कही नही मिलेगा। जैसे यहां आप रात-दिन भटकते हैं, फिर रातको ६–१० बजेके लगभग आराम करने घर आते है, सोते हैं। इसी तरह बाह्यपदार्थोमे कितना हो भटक ले, फिर अतमे अपने घरमे, अपने आपके स्वरूपमे ही शाति मिलेगी। बाह्य बाह्य की तो व्यवस्था करते है पर अपनी व्यवस्था नही कर पाते है।

देहातोमे तो भैया हफ्तेमे एक दिन हाट लगती है। सो कही देहातमे कोई अधवूढा आदमी था। वह आदमी एक दिन हाटमे साग-भाजी खरीदने लगा। पडौसकी बहुवोने भी साग खरीदनेके लिए दो-दो पैसे दे दिए। दो-दो पैसोकी सब्जी खरीदना जाता था। पहले पडौसकी बहुवोके लिए खरीदता था। अतमे अपने लिए भी दो पैसेकी सब्जी मोल ली। आखिरमे बची हुई सब्जी थी तो वह खराब थी, सडी थी। वह सब्जी लेकर झोलीमे डालकर घर गया। जब घरकी बहूने देखा तो कहा कि अरे यह खराब सब्जी क्यो लाए ? बोला– पडौसकी बहुवोके लिए पहले अच्छी-अच्छी खरीद दिया फिर बादमे जो बची वह मैंने खरीद लिया। बहूसे कहा कि देखो मैं परोपकार करता हू। बहूने कहा कि अरे पहले अपने लिए अच्छी अच्छी खरीद लेते, बादमे फिर दूसरोके लिए लेते। पहले अपनी रक्षा करो बादमे दूसरेकी। अपनी रक्षा अपने आत्मस्वभावकी उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्त्वकी बात है।

भाई अपने स्वरूपकी तो खबर नही है और दूसरेकी ओर आसक्तिसे देख रहे हैं। हे आत्मन् ! पहले अपने स्वरूपको देखो, बादमे फिर अन्यको देखो। अपनेको भूलकर द्वन्द्वको देखो, इसे आचार्योंने विवेक नही बतलाया है। बाहरमे क्रिया-कलापमे भी रहो, पर उनमे कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतोके विकल्पको छोडकर अपने सत्यका आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्पके आश्रयके अनुभूत होगा सो होओ, मैं स्वय ज्ञानमय पदार्थ हू। अत ज्ञानकी बात स्वय ही प्रकट हो जावेगी ऐसे सत्यका आग्रह कर ले निष्पक्ष होकर तो उसे स्वय सत्यका दर्शन होगा। जो सत्यका दर्शन हो फिर उसीका लक्ष्य रखना सो ही शान्ति सुखका मार्ग है।

मूल तत्त्व तो आत्मा है। इस आत्माके बारेमे ठीक-ठाक निर्णय जब नही हो पाता तब उस आत्माके बाबत व अन्य बातोमे नाना मत बन गए। तत्त्वोमे जो मत मजहब बन

गए। उसका मूल कारण यह है कि यह जिज्ञासु अपने आपकी आत्माका यथार्थज्ञान नही कर पाया। आत्माका यथार्थज्ञान न हो पानेसे ही अनेक मत बन जाते हैं। यह दर्शनका एक गहरा विषय है। वस्तुको जाननेका उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तुका सर्वांग निर्णय करो तो स्याद्वादसे ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्यके सम्बन्धमे जानकारी करते हो तो कितना-कितना जानते हो? यह पिता है, यह पुत्र है, यह भाजा है, यह धनी है, यह पडित है अनेक प्रकारकी बातोकी जानकारी करते हो। जानते हो अपेक्षा लगाकर कि यह अमुकका पिता है, यह अमुकका लडका है, यह अमुकका भाजा है, यह अमुकका मामा है— ये सारी बातें तो अपेक्षा लगाकर जानते हो। इस प्रकारसे यदि अनेक बातें जानते हो तब उनकी सारी बातोकी जानकारी होती है। इसी तरह आत्माके विषयमें जब सर्वप्रकारसे दृष्टि दोगे तभी आत्माका पूरा रहस्य समझमे आयगा। जब जीवके पर्यायमे तथा आत्मस्वभावमे दृष्टि दोगे तभी दोनोमे अन्तर समझमें आयगा। जब जीवके मात्र लक्षणमे दृष्टि दोगे तो तुम्हे पता चलेगा कि जीवका लक्षण है चैतन्य और यदि इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो नानारूप इसमे नहीं नजर आते हैं। यदि अपने इस चैतन्यस्वभावमे दृष्टि दो तो अद्वैत समझमे आवेगा, व्यक्तित्व नजर नही आयगा। अरे यह चैतन्यस्वभाव तो अद्वैत है। इसमे किसी दूसरेका प्रवेश नही है तब फिर इसका नाना रूपोमे अनुभव क्यो है? प्रत्येक जीवका अपना स्वरूप न्यारा-न्यारा है। यह बात तो तुम्हे तब समझमे आवेगी जब कि अपने आनन्दस्वरूपमे दृष्टि दो। इस तरहसे जीवके बारेमे नाना बातें स्याद्वादसे विदित होती है। पर उनमेसे किसी एकको पकड लो या किसी अपेक्षा किसी अन्य अपेक्षाका मिलान कर दो तो देखो कि नाना मत बन गए है। और उन नाना मतोके विवादमे पडनेसे केवल कलह ही मिलेगा। उनसे आत्माको शाति नही मिलेगी। आत्माको शाति तो अपने आपके दर्शनमे होती है। और यदि शाति नही मिलती है तो समझो कि उसका निमित्त कोई अन्य है, क्योकि आत्मा तो स्वय स्वयके लिये अनाकुल स्वरूप है।

यदि अपनेमे कल्याणकी भावना है तो अपने अतरणमे स्थित ज्ञानके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके कल्याण प्राप्त कर सकते हो। एक बात प्रसिद्ध है कि शिवभूति नामके एक मुनि थे। उनको पहले गुरु महाराजने यह सिखाया कि "मा तुष मा रुष।" इसका अर्थ यह है कि राग द्वेप मत करो। कुछ समय तक शिवभूति मुनि मा तुष, मा रुष रटते रहे। वे और सब शब्द तो भूल गए पर तुष माष शब्द ही केवल याद रह गया। तुप माष कापमे मूर्धन्य प है। मा तुष, मा रुष, तुष माष रटते रहे, पर उन्हे ज्ञान नही हो पाया। एक दिन चले जा रहे थे। मार्गमे एक महिला मिली। वह महिला उरदकी दाल धो रही थी। तो उरद की दाल तो जानते होगे जो महीन पीसी जाती है, उस दालमे मसाले डाले जाते है। उस दालकी

पिट्ठी करते हैं। तो पिट्ठी बनानेके लिए जो वह उरद धो रही थी वह सफेद-सफेद रह गए थे। जब शिवभूति महाराजने उस सफेद सफेद दालको अलग व उरदके छिलकोको अलग देखा तो ज्ञान हो गया। उन्होने देखा कि ये छिलके तो सब प्रकटमे अलग अलग है, पर जब दालमे भी लगे थे तब भी वे अलग ही थे। इसी तरह यह देह तो छिलकेके मानिन्द है और आत्मा दालके मानिन्द है। देहमे रहता हुआ भी यह आत्मा देहसे अलग है। शरीर व राग द्वेषोके बीचमे फसा हुआ यह आत्मा है, फिर भी आत्मा तो दालके माफिक स्वच्छ है और यह सब उपाधि उरदका छिलका है। इन समस्त झझटोके बीचमे यह आत्मा फसा होनेपर भी उन सबसे न्यारा है। ऐसा जिन्होंने न्यारा अपने आपको नही समझ पाया है उनकी बडी कुगति होती है। मैं आत्मा कैसा हू और क्या हू ? इसका पता जिन्हे रहता है उन जीवो के विषयकषाय समाप्त हो जाते है। इस जगतमे जो अपने आत्मतत्त्वको भूल गये हैं उनकी दु.खकी यह कहानी है। सो यदि कोई ज्ञानके साहित्यिक मार्गमे नही पडा और यदि अपने आत्मतत्त्वको समझ गया है, अपने आपको समझ गया है, तो उसे जीवनमे क्लेश नही होगे। उसकी जीवनमे दु खकी कहानी नही बनेगी, सदैव प्रसन्नता और आनद रहेगे। किन्तु इसमे सत्यका पूर्ण आग्रह करना पडता है। हे भाई, ऐसा आग्रह करनेके लिए निष्पक्ष भावकी जरूरत है। अतरमे शुद्ध आत्मकल्याणकी भावना हो तो उस आत्माके दर्शन अपने आप हो जाते हैं। मुझे करना क्या है ? मै स्वतःसिद्ध परिपूर्ण पदार्थ हू, स्वरूपत कृतार्थ हू। अत अब यह मैं आत्मा अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि करके अपने आपमे रमूं और सत्यस्वरूप बन जाऊ।

यह अन्तर्जगत, इस जगतकी बात नही कह रहे हैं जो मुझसे न्यारा अपनी सत्ता लिए हुए है, किन्तु अपने आपमे उठने वाले जो कल्लोल है, रागद्वेष आदि जो परिणाम हैं उनको कह रहे है कि यह जो जगत है, यह जो मेरी दुनिया है यह हर्षादिक वासनासे उत्पन्न होता है, यह अन्तर्जगत राग है, यह विषयकषाय स्वरूप है। मोही लोग कहते हैं ना किसीका इष्ट गुजर जाय तो कि मेरी दुनिया मिट गयी। देखो केवल पुरुषके बारेमे, व्यक्तिके बारेमे कल्पनाएँ बनाकर दु खी होते है। और कहते कि मेरी दुनिया मिट गई। बाहरमे इसका कुछ है ही नही, मिटेगा क्या ? हां जैसी कल्पनाये करता था पहिले, अब वे नही हो पाती, यही उसकी दुनियाका मिटना कहलाता है। जो पहले कल्पनायें थी वह तो अब नही रही। अब तो केवल उस इष्टको ही अपना सर्वस्व मानकर दु खी हो रहा है। इससे वह अपने इष्टके मिट जानेसे ही यह समझता है कि दुनिया मिट गयी। क्या मिट गया ? कोई किसीके शरीरसे प्रेम करता है क्या ? अरे उस मर जाने वालेका घरमे कुछ रक्खा रहेगा क्या ? चाहे वह खूब कमाता था, अच्छी तरहसे परिवारका पालन करता था। खूब धन दौलत एकत्रित कर ली

थी, पर हे भाई वह इष्ट यदि मर गया है तो उसके शरीरसे भी कोई प्रेम नही करता। अरे देखो यदि कोई मर जाता है तो मुर्दाको उठानेके लिए कभी कोई पच लोग जाते है तो घरके बच्ची, स्त्री इत्यादि सब रोते है। रोते हुए कहते है कि अरे इस मेरेको कहाँ लिये जा रहे हो ? यदि वे लोग कह दें कि अच्छा नही लिये जाते तो फिर वे घरके ही सब हाथ जोड कहेगे कि कृपा कर अब ले जाइयेगा। देखो, न तो किसीका देहसे प्रेम है और न आत्मासे प्रेम है। और फिर ये रोना-धोना क्या है ? इससे क्या लाभ ? इस मिट जाने वाले शरीरसे कौन प्रेम करता है ? तुझे इस शरीरसे प्रेम करनेसे कोई लाभ नही। तुझे तो आत्मासे प्रेम करना चाहिए। सो आत्मासे भी प्रेम कौन करता है ? यह आत्मा तो चैतन्यस्वरूप पदार्थ है, सबसे निराला है। जैसा यह है तैसा ही जगतके अन्य चेतन पदार्थ है। उस चेतनसे भी कौन प्रेम करता है ? इस जीवकी दुनिया तो अपना-अपना अन्तर्विकल्प है। हे आत्मन् ! यह दुनिया कही बाहर नही है, अपनी कल्पनाओसे ही यह बात उठती है कि दुनिया कही अन्य है। कल्पनाओके उठनेसे ही पहिले उठने वाली कल्पनावोके न होनेपर कहते है कि हाय दुनिया लुट गई।

एक मनुष्य लखपति है, उसको यदि एक हजारका नुक्सान उठाना पड गया तो उसकी शक्ल-सूरत देखो तो वह उदास, दु खी, लुटा हुआ नजर आयगा। और जिस मनुष्यकी गाँठमे केवल एक हजार ही रुपये है, अधिक नही है और अगर एक हजारका लाभ हो जावे तो वह प्रसन्न होता है। वह तो प्रसन्न-चित्त रहता है, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है। देखो उससे लगभग ४६ गुना अधिक धन है फिर भी वह अधिक दुःखी, व्याकुल, परेशान हो जाता है और जिसके पास बिल्कुल थोडा साधन है वह हसता हुआ, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है। तो भाई कल्पनाए जहाँ जैसी जगी वहा उसकी वही दुनिया है। अरे भाई व्यर्थकी कल्पनाएं न करो। देखो २४ घटे व्यर्थकी कल्पनाओमे ही पडे रहते हो और दुखी हुआ करते हो ? भाई इन २४ घटोमे २ मिनटका समय तो परमार्थमे दो। यदि २ मिनटका ही समय परमार्थमे दे दो तो जीवन सफल हो जायगा। २४ घटे आर्तध्यानमे ही लगा रहे तो उसका क्या जीवन है ? इस स्थितिमे रहो कि २४ घटेमे कुछ मिनट तो अपने आत्मचिंतनमे लगा सको। सत्य और असत्यका निर्णय करलो और अपनेको सत्यमे सुरक्षित कर लो। वह सत्य है। शुद्ध चैतन्यमात्र एक वस्तु अपनेको सबसे निराला समझो और यह समझो कि मेरा किसीसे कोई भी सम्बध नही है। सचमुच मैं कुछ नही हू, केवल चैतन्यस्वरूप, ज्ञानमात्र, ज्ञानानदघन एक वस्तु हू, ऐसा अपने आपको निरखो तो जीवन सफल हो जायगा।

अरे भाई जिन पदार्थोसे राग कर रहे हो, मोह बना रहे हो वे कुछ नही है। जैसे तुम स्वतत्र हो वैसे ही वे सब है। अपने आपमे २ मिनट तक ऐसा अपने आत्मस्वरूपदा

चिंतन करो कि बाह्य वस्तुओंका ध्यान न रक्खो। केवल अपने आत्मस्वरूपको ही अपने सामने रक्खो तो जितने भी विकल्प है, दु:ख है समाप्त हो जावेंगे। जैसे पहले बताया था कि प्रत्येक चीजमे ३ बातें हुआ करती है—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। इसी तरह पुत्र ३ होते है—शब्दपुत्र (२) अर्थपुत्र (३) ज्ञानपुत्र। बताओ कौनसा पुत्र अपना तुमने इन तीनोमे माना है? तुम्हारा शब्दपुत्र है क्या, नही। अरे पुत्र केवल शब्दोमे लिखा हुआ है वह पुत्र नही है। तो तुम्हारा अर्थपुत्र है क्या? जो दो हाथ और दो पैर वाला है। अरे यह पुत्र तो अपने खुदके कषायमे रहने वाला है, स्वार्थी है। इसलिए यह पुत्र भी तुम्हारा नही है, न हो सकता है तो उस पुत्रके बारेमे जो ज्ञान बनता है वह ज्ञानपुत्र ही तुम्हारा पुत्र है। यह ज्ञानपुत्र जिस वक्त है उस वक्त ही तुम्हारा है अन्यथा वह भी नही है, क्योकि वह तो नश्वर है, मिट जाने वाला है। और परमार्थसे देखो तो जब ज्ञानपुत्र है तब भी वह तुम्हारा नही है। तुम तो ध्रुव हो, ज्ञानपुत्र अध्रुव है। आकुलताएँ क्यो उत्पन्न हो जाती है? ये राग द्वेष आदि भाव कैसे उत्पन्न हो जाते है? केवल कल्पनासे। उनके मिटनेका उपाय ज्ञानोपयोग है। भैया! देखो जब मदिरमे पूजनके लिए, स्वाध्यायके लिए, धर्मके लिए, सत्सगके लिए जाते है तो वहाँ पर इसीलिये तो जाते है कि रागद्वेषका उपयोग बदले, ज्ञानका उपयोग हो। यदि रागद्वेषादिकी बातें करते है वहाँ तो उन बातोंसे आकुलताएँ उत्पन्न ही होगी और वह आगे किस जगह आकुलता दूर करनेका उपाय बनायगा? मदिरमे पूजन करने जाते है तो सत्सगसे, धर्मपालनसे, धर्मव्यवहारसे उनके रागद्वेषादिक विकारोमे अतर तो कुछ पड जाता है। इन रागद्वेषोसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए ही व्यवहारधर्मका पालन किया जाता है। मदिरमे पूजन करने जाना है—इस भावनासे ही प्रायः अहकारकी भावना समाप्त हो जाती है। देखो जिसको जिस कामसे प्रेम है उसको उस कामसे मतलब है, कामके करने वालेसे मतलब नही है। व्यवहारधर्मकी परम्परा चलती है उससे ही विवेकीको समाजमे मतलब है कार्यकर्तावोके पक्षसे मतलब नही। देखो भगवानके दर्शन पूजन करनेके लिए मदिर आनेके वास्ते स्नान करते है तभीसे धर्मपालन हो रहा है। मदिरमे आनेके लिये भक्त नगे पैर मार्गपर चलता है जमीन निरख निरख कर। प्रभुभक्ति करनेसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा अहकार इत्यादिकी भावनाए समाप्त होती है। लोग ऐसा समझते है कि धर्मका पालन करनेसे हम और हमारी सतान धर्ममे रहकर अपना कल्याण कर सकेंगे। यही सोचकर वे धर्मका पालन करते हैं, धर्ममे रहते हैं। यह तो व्यवहार-परम्पराकी बात ठीक है, किन्तु उसमे भी परमार्थ कार्य बने तो वह भी व्यवहार धर्म है।

वास्तवमे भक्तका यह प्रयोजन है कि वह रागद्वेषसे बच जावे और आत्माका अहित करने वाले जो विषयकषाय है उनको दूर कर देवे। बस पूजा आदिका यही प्रयोजन है।

भक्तिमे जो आनन्द समाया हुआ होता है, उसका अनर्थ करने वाले ये विषयकषाय ही होते है। उन विषयकषायोसे दूर होनेके लिए हमे धर्मव्यवहार करना है। देखो जो मनुष्य भगवानके दर्शन करनेके लिए मदिर आते है वे मंदिर आनेकी तैयारीमे घरपर ही धर्मका पालन करते है। क्योकि स्नान करते है और स्नान करनेके बाद यह भावना बनती है कि हम भगवानके दर्शन करेंगे, धर्मका काम करेंगे। यह प्रयोजन जो मनमे बसा होता है तो यही धर्मका पालन वहाँ है।

मदिरके अन्दर गए तो क्या बातें करते है कि आज तुम्हारे घरमे क्या खाना बना था, क्या आज हो रहा है, शामको क्या खाना बनेगा, मुकदमेका क्या हुआ इत्यादि अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातें एक दूसरेसे करते है। देखो भाई हम लोग कितने विरुद्ध बन गए? कहाँ तो हम वीतराग भगवानके दर्शन करने, अपने सकल्प विकल्प दूर करने और अपनेको स्वच्छन्द करनेके लिए मदिर गए थे और कहाँ रागद्वेषकी बातें करने लगे। अरे प्रभुपर अगर न्योछावर हो जाओगे तो दर्शन मिलेगा और यदि रागद्वेषोपर ही पडे रहे तो प्रभुका दर्शन नही हो पायेगा। रागद्वेषोमे पडे रहना ही विकल्प है। यह स्थिति औपाधिक है, विनश्वर है। मेरी जो चीज है, मेरा जो परिणमन है वह मेरे स्वरूपके अनुकूल ही होता है।

मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे, यह तो बडे गजबकी बात है। फिर मेरी चीज कहाँ रहेगी? मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे तो मेरी कैसे? ये रागद्वेष, मान, माया, मोह, विषयकषाय ही मुझे दुखित करते है, तो ये सब मेरे नही है। मेरा तो केवल मैं हू। मेरा वह नही है जो मुझे दुःखी करे तो मेरा वह क्या है? मेरा है वह मेरा स्वभाव। मैं तो केवल स्वभावरूप हू और बाकी सब मैं नही हू। जो मै हू वह अनादि हू, अनन्त हू, अचल हू, अपने आपके ही द्वारा अनुभवमे आने योग्य हू। ऐसा मै तत्त्व स्वभावमात्र हू, मै यही स्वरूप सर्वस्व लिए रहता हू, इसके आगे मेरा कुछ नही है। इस आत्मस्वरूपके दर्शन करनेसे सब सकल्प-विकल्प क्षीण हो जाते है, नष्ट हो जाते है। हम प्रभुके दर्शन करते है कि कहाँसे हमको दर्शनमात्रसे यह सदेश मिलता है कि हे प्रभो! आप चक्रवर्ती थे, आपके पास बहुत बडा साम्राज्य था। आपके ज्ञान हुआ, आपने वैभव विभूतिको नही चाहा। उसको आपने असार समझा। उस वैभव विभूतिमे आप नही फसे, अलग ही रहे और अपने आपको ही अपने उपयोगमे लगाया। आज आप जगतमे पूज्य बन गए। हे प्रभो! मै आत्मा भी आपके ही सदृश हू। जैसे आप है वैसा ही मै हू। इस जगतके जीवका असली स्वरूप ही ऐसा है। हे आत्मन्! तू भगवान समान अपनेको निरख। तू अपनेको यह समझ कि मै भगवान सदृश हू। इस औपाधिक विनश्वर अन्तर जगत्को त्याग करके अपने निर्वाणस्वरूप आत्मस्वभावको निरखू तो मेरा कल्याण है और बाह्य बातोमे फसनेसे मेरा कल्याण नही है।

आचार्योंका उपदेश है कि ससारका त्याग करो, ससारको छोड दो । ससारको छोडना कहलाता क्या है और ससार कहलाता क्या है ? क्या ससार इस दुनियाकी जगहका नाम है ? क्या इस लोकका नाम ससार है ? अगर इस दुनियाकी जगहका नाम ससार है और इस लोकका नाम ससार है तो इसको छोडकर कहाँ जाओगे ? क्या कोई अलोकमे पहुच जाओगे ? जगतका नाम ससार नही है, किन्तु रागद्वेषकी जो वासना बने, बस उसीका नाम ससार है । ससारका त्याग कर दें, इसका अर्थ यह है कि रागद्वेषकी वासनाओका त्याग कर दो । प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न है, अपने स्वरूपमे है, अपने आपमे परिणमते हैं । एकका दूसरेसे सम्बध कुछ है ही नही । फिर किसी भी परवस्तुमे राग, द्वेष, विकल्प करना क्या यह अज्ञानता नही है ? ज्ञान और अज्ञानका तो यह प्रमाण है कि जहाँपर मूढता है वहाँपर ज्ञान अज्ञानता दीखती है और जहाँपर मूढता नही है वहाँपर प्रसन्न हुआ दीखता है । जहापर मूढता नही वहाँपर सम्यक्त्व हो जाता है और जहाँपर मूढता है वहाँपर मिथ्यात्व है । तो यह मिथ्यात्व ही ससार है । जब तक यह ससार है तब तक जीवको क्लेश है । यदि ससारका त्याग करो अर्थात् इन रागद्वेष विकारादि वासनाओका त्याग करो तो सारे क्लेश समाप्त हो सकते है । रागद्वेषकी वासनाओका नाम ही ससार है । कोई यहाँ कहे कि रागद्वेषकी वासनाओको तो ससार कहा, रागद्वषको ही ससार क्यो न कह दिया ? उत्तर इसका यह है कि द्रव्यमे प्रति समय समय एक-एक परिणमन पर्याय हो रहे है तो जीवमे भी प्रतिसमय एक-एक पर्याय होते-होते चले जाते है । एक समयमे दो समयके पर्याय नही होते । दो समयमे एक पर्याय नही । तब रागके पर्याय भी प्रतिसमय एक-एक चलता जा रहा है । यह सूक्ष्मदृष्टिका जिक्र किया जा रहा है तो एक समयका राग, पर्याय अनुभवमे नही आता है, और एक समयके राग पर्यायसे ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा ? अपने आप ऐसा नही होता है, किन्तु बहुत समयकी राग पर्यायोका उपयोग ग्रहण करता है । इस कारण सूक्ष्मदृष्टिसे रागके सतानका अनुभव होता है । और दूसरी बात यह है कि राग द्वेषमे जो आसक्ति हो जाती है उसको ससार कहा गया है । इसी कारण सम्यग्ज्ञान होनेपर कदाचित् रागद्वेष रहता भी है तो भी उनकी गिनती नही की गई । वे मिट जावेंगे । इसलिए वासनाको ससार कहते है । इस वासनाका विनाश होने पर ही ससारका त्याग कहते है । ससारके प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप है, परमात्मस्वरूप है । उनका कोई भी जीव न तो मित्र है और न शत्रु है । वह जीव है, ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानमे परिणमते रहते है । उपाधिकी विशेषताके अनुसार उनमे विकार भी होते रहते है । उनमे विकार उनकी ही परिणतिसे होते हैं, किसी अन्यकी परिणतिसे नही होते है । ऐसा स्वय विज्ञानघन जगतके सब जीव है । उनको कैसे माना जाय कि वे शत्रु है ? कोई भी मेरा शत्रु नही है । कोई ज्यादा बिगडता है तो जो कुछ उसे विकार बनाना होगा वह बनावेगा, वह

अपने आपको ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नही बनावेगा। तब फिर मेरा दुश्मन कौन ? ज्ञान-दृष्टिसे देखो तो इस जगतमें मेरा शत्रु कोई नही है। जिस आत्माका मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है। पर परमार्थसे देखो तो इस जगतमें कोई किसीका शत्रु नही। जो दूसरोको शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है वह विकार अपनेमें करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मै हू, मेरेसे बाहर कुछ नही है तो फिर मेरा दुश्मन कोई कैसे है ? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रहे हो, परिवारको इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हारे नही हैं। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वय मैं हू, अपने स्वरूपमे बर्तता हू। उपाधिकी विशेषताके अनुसार विकार भी करता हू, मोहभाव भी करता हू, स्नेह राग भी करता हू। मै अपने आपमे करता हू, अपने आपके लिए करता हू और अपने द्वारा करता हू।

एक गाँव खुरई सागरके पास है। श्रीमत सेठ वहाँपर एक बहुत बडे आदमी थे। उनके जो लडके है वे भी सेठ है। वह सेठ बडे गर्म (तेज) दिमागके थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी। उनकी दूसरी शादी भी हो गयी थी। जब सेठानी शादीके बाद सेठके घर आयी तो सेठानीको सखियोने, मित्राणियोने समझाया कि देखो सेठ बहुत गर्म दिमागके हैं, अगर कही सेठ जी बिगड जाते है तो मुश्किल पड जाती है। सेठानी भी चतुर थी। उसने सेठके बारेमें तो सुन ही लिया। एक दिन सेठके सिरमें दर्द था। स्त्रीको खबर भिजवाई कि तुरत दवा लावो। सेठानीके मनमे ऐसा विचार आया कि अगर कही मैं अभीसे दब गयी तो जिन्दगी भर दबना पडेगा। इसलिए आज सेठको कोई कला दिखाऊं तब तो छूट पाऊगी। बस सेठानी ने सिरमें दर्द बना लिया। बोली अरे मेरा सिर दर्द कर रहा है। मै क्या करूं ? सेठ जी की नई नई शादी हुई थी, उनको अपनी स्त्रीकी खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिरकी दर्दको भूल गए और अत्यन्त विह्वल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गये और मोहमे सेठानीकी सेवा करने लगे। मान लिया कि सेठानीके सिरमे दर्द भी हुआ। तो क्या सेठकी वेदनाने उसकी वेदनाको बनाया ? नही। उसने तो केवल सेठके प्रति राग कर लिया था। उस रागने ही सेठानीकी वेदनाको बनाया।

कोई जीव कहते है कि हम तुमसे राग करते है, हमारा तुमसे बडा राग है। ऐसा करनेसे वह राग करे तो क्या हमारे रागसे राग कर रहा है ? नही। वह स्वय ही कल्पनाएँ बनाकर एक नया राग और खडा कर देता है। किसी जीवकी परिणमतिसे किसी जीवको कुछ हो जाय तो नही हो सकता है। कितने ही आदमी ऐसे रागी होते हैं कि वे दूसरोके प्रति रागी है। तो क्या एकका दूसरेमे राग पहुच गया ? नही। एकका दूसरेसे सम्बध ही क्या ? तो जब प्रत्येक जीव जुदे-जुदे है, किसीसे किसीका सम्बध नही है तो ऐसे स्थितिमे अन्य पदार्थो

का, अन्य जीवोका उपयोग बनाकर तत्काल और राग बनाकर रहना, इसको तो मूढता ही कहेगे । और मूढता कहा जाय या मोह कहा जाय—दोनोका शाब्दिक अर्थ एक है । अगर मूढ कहे तो ससारके लोग कुछ बुरा मान जावेंगे और यदि मोही कहे तो लोग शायद बुरा न मानें । बात तो एक ही है । और है भी क्या ? समझका फेर । तो बस इतना ही तो जाल है । यदि इससे जुदा है अर्थात् अन्य जीवोको अपना उपयोग न बनावें, बाह्य वस्तुओका ख्याल न करें, रागद्वेष न बनावें तो जाल नही है । वह मूढ और मोही नही कहा जावेगा ।

अरे यह कितना जाल है ? बहुत छोटासा जाल है । केवल समझना भर है । मै हूँ और अपने स्वरूपमे हू—ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर देता है, इस प्रकारकी जो समझ बन गयी है, बस वह समझ ही जगजाल है । इससे बढकर और कुछ नही है । जब गृहस्थीका दद-फद सिरपर आ जाता है, लडका बीमार है, अमुक बीमारी है, यह करना है, अभी दूकान जाना है । यो करना है मुकदमा कई है । इस प्रकारसे कहते है कि बडे जगजालमे फसे हुए है । अरे बाहर कोई जाल नही है । न जाल दूकानमे है, न लडको बच्चो वगैराने है, न आत्मतत्त्वमे है, न शरीरमे है, केवल अपने आपके आत्मस्वरूपको शुद्ध सबसे निराला उपयोगमे नही देखता है और बाहरमे ही मुख कर लिया है तो यही तेरा जग-जाल बन गया है । अरे तू अपनी बाह्य दृष्टिको हटा दे, अपनी रागद्वेषकी भावनाको मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा ।

देखो कितने जगजाल है और कितने पौरुषसे ही वे मिट जाते है ? कितना कठिन लग रहा है ? उन सब कठिनाइयोका कारण रागद्वेषकी वासना है । यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाएँ और अगर यह वासना नही मिटती है तो क्लेश नही मिटेंगे । यह कर्मबध वासनासे ही होता है । जिन कषायोका उदय है उन कषायोसे होने वाली कर्मप्रकृतियोमे ज्यादा अनुभाग पड जायगा, पर बध सबको पड जायगा । जिन-जिन विकारोकी वासना है ।

हे आत्मन् ! क्रोध क्यो कर रहे हो ? मान, माया, लोभ, क्रोध इत्यादि विकारोकी वासनाएँ क्यो बना रहे हो । यदि तू इन वासनाओसे दूर है तो क्लेश दूर हैं और यदि इन वासनाओको अपनेमे बनाए हुए है तो आजीवन क्लेश रहेगे । इसलिए इन वासनाओको मिटाने का उपाय करना चाहिए । गृहस्थीके चरित्रको आचार्य गुणभद्र स्वामीने बताया है कि वह तो हाथीका स्नान है । हाथीने स्नान किया और बाहर गया कि धूलको सूडमे भरकर अपने ऊपर डाल ली । इस तरहसे वह फिर गदा हो गया । गृहस्थी भी सीमा बनाकर त्याग करते हैं । दस लक्षणके दिन आ गए तो कहते है कि अब हम काम नही करेंगे, दूकानमे नही बैठेंगे, धर्मके काम ज्यादा करेंगे, अब हम पाक बनेंगे, पर यह वासना बनी हुई है कि दस लक्षणके

दिन निकलने तो दो, फिर जल्दीसे जाकर दूकानमे बैठेंगे; यह करेंगे, वह करेंगे। इस प्रकार की वासना मनमे भर लेते है।

अरे यह तो वास्तविक त्याग नही हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नही होता है। सप्तमीको नियम कर लिया, नौमी तक उपवास रहेगा, पर यह वासना बनी हुई है कि नौमीके ८ बजने तो दो। जल्दीसे खाना बनावेंगे, खाना खा लेंगे। यह कर लेंगे, वह कर लेंगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुवोके चरित्रमे देखो तो ऐसी वासना नही बनी होती है। उनको यह पता ही नही रहता है कि भोजन करने जायेंगे कि क्या करेंगे? उनको यदि तीव्र भूख लगेगी तो उठेंगे नही तो नही उठेंगे। इसी तरह अनतचौदसका व्रत है, वहाँ भी गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते है कि अनन्त चौदसके बाद पूनमके ७ बजने तो दो। यह भोजन करेंगे, वह रसपान करेंगे। पर यह ख्याल साधुवोके नहीं होता है। वह साधु तो बच्चोकी तरह ही है। यदि तीव्र भूख लगी तो खडे हो जावेंगे, नही तो नही खडे होंगे, पर उसकी वासना रच भी न रखेंगे। गृहस्थ ऐसा नही कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधुमे फर्क पड गया है। साधुके वासना नही होती है और गृहस्थ वासना बनाए रहता है। इसका क्या कारण है? गृहस्थके आरम्भ व परिग्रहका सम्बध है। तो इस वासनाका विनाश कैसे होगा? अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिसे कि यह मैं आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप हू, जाननहार हू, यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, जानन यह अमूर्त है अनन्तानन्द भावको लिए हुए है, ऐसे ज्ञानानदघन भावमय यह मैं आत्मा हू। इसमे किसी दूसरेसे सम्बध नही है। इसके स्वभावमे विकार नही है। रागद्वेषकी वासनाएँ बनाना, इसका काम ही नही है। रागद्वेषकी तरग, यह गडबड बात उठ जाती है। कैसे उठ जाती है? उपाधियोका निमित्त पाकर हो जाती है।

सिनेमाका पर्दा स्वय चित्रित नही होता है। तो कैसे चित्रित हो जाता है? यह देखो सामने फिल्म आ गयी। फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया। तो पर्दा अपने आपमे उठकर चित्रित नही हो गया। पर्देका मात्र स्वतः चित्रित हो जानेका काम ही नही है। चित्रित तो फिल्मके निमित्तसे हो गया है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय रागद्वेष नही बनाता। आत्माका स्वभाव ही रागद्वेष बनाना नही है। कर्मउपाधिका निमित्त पाकर यह चित्रण होता है। इन रागद्वेषोका जो सस्कार बनता है वह वासनाओके कारण ही बनता है और इन वासनाओके कारण ही क्लेश होते है। ये सब क्लेश इस आत्मदृष्टिके द्वारा ही नष्ट हो जाते है। मैं एक ज्ञानस्वभावमात्र हू, ऐसा एकरस हू, सबसे निराला हू, ज्ञानमय हू, शुद्ध हू, जुदा हू, दर्शन ज्ञान हू, सम्यक्त्व हू, मूर्त पिंडरूप नही हू। इसके अतिरिक्त और कुछ मै नही हू। परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नही है। ऐसा उपयोग बनानेसे ही इन रागादिक वासनाओका

विनाश होता है। और जब वासनाओका विनाश होता है तो क्लेश मिट जाते है।

जब कोई राग होता है तो देखनेमे आता है कि जल्दी-जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उसकी वासना होती है तो जल्दी भोगनेकी प्रवृत्ति होती है। जब वासना नही होती है तो बाह्यदृष्टि भी समाप्त हो जाती है। जिसके फोडा नही है वह मलहम पट्टी क्यो लगावे, जिसके बुखार नही है वह पसीना क्यो निकाले ? जिसके वासनाएँ नही हैं वह आकुलताएँ व्याकुलताएँ क्यो करेगा ? जब वासनाका रोग होता है तो इलाज करना पडता है। जिसकी वासनाए समाप्त हो जाती है, फिर इलाज नही करना पडता है। तो इन वासनाओका त्याग तो अपने आपकी दृष्टिसे ही होगा। मै हू, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे हू। परके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे मैं नही हू। मै स्वरूपसे शुद्ध हू, स्वय परिणमनशील हू, इस कारण निरतर परिणमता रहता हू। मैं परिणमता ही चला जाता हू। इसका दूसरोसे कुछ भी सम्बन्ध नही है। यह ज्ञानकी परिणति है तो अपनी परिणति स्वभावके कारण अपने ज्ञानकी परिणति चलती जा रही है। इसका बाह्य पदार्थोसे कोई सम्बन्ध नही है। जैसे चौकी, कमण्डल आदि पदार्थोका ज्ञान हुआ, तो इसका चौकी, कमडल किसी चीजसे सम्बन्ध नही है। मेरेमे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे इस चौकी और कमडलने कोई मेरी मदद कर दी है क्या ? अरे यह कोई भी चीज मददगार नही है। खुद ज्ञानकी परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए हैं, इस कारण ज्ञानकी कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सर्व विश्वका उत्पन्न हो जाय। फिर तो सारा विश्व अपने आप जाननेमे आयगा तो इस सारे विश्वकी मेरे जाननेमे कृपा है क्या ? प्रत्येक पदार्थ है, परिणमनशील है, परिणमते रहते है, ऐसा ही यहाँ हाल हो रहा है। सभी द्रव्योकी ऐसी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान और शाति प्राप्त होनेका यह अच्छा उपाय बनता है और तब ससारके क्लेश दूर करनेके लिए हमे अपने आत्मस्वरूपकी आराधना करनी चाहिए और आत्मस्वरूपकी आराधना, देवकी आराधना, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप करना चाहिए। और देखिये मुफ्तका कूडा-कचरा, करकट वैभव अपने घरमे आ गया है तो उसका दान किया जाय, त्याग किया जाय। ये ६ कर्तव्य गृहस्थके बताए गए हैं। देखो भाई कूडा-कचरा क्या है ? धन-वैभव ही कूडा-कचरा है। उसके प्राप्त करनेमे आपकी कोई वर्तमान करतूत है क्या ? आपका स्पर्श है क्या ? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले है, अगर एक जगह आ गए तो मुफ्तमे ही तो है।

आत्माका तो आकार अपने ज्ञानपर्यायमे है। इस वैभवमे क्या तुम्हारा गया ? कुछ गया तो नही, इसलिए यह वैभव विभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए वह कूडा-कचडा कहलाया। धन जड है, जीव चैतन्यस्वरूप है, मेरा इसमे कुछ नही है। यदि यह कूडा-कचरा

नही है तो तीर्थकरोने चक्रवर्तियोने इसे कैसे त्याग दिया ? विभूतिका त्याग देना क्या उनकी बेवकूफी समझना चाहिए । इस आत्माके स्वरूपको देखनेमे और धर्मके करनेके प्रसङ्गमे शुद्ध-नयकी ही बात सामने रखी जाती है और इसमे उलझनेकी बात सामने नही रखी जाती है।

देखो भाई २४ घन्टे है । २३ घटेका समय तो विकल्पोमे लग गया, पर एक घटेका जो समय बचता है उसमेसे २-४-१०-१५ मिनटका समय तो आत्मस्वरूपके चिंतन मे लगाओ । अपनेको सबसे निराला, शुद्ध, ज्ञानमात्र, विकल्प भावोसे परे अनुभव करो । यदि इस प्रकारका अपने आपको अनुभव करो तो जीवनमे शाति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटेरो खचोरोसे मिला हुआ अनुभव करोगे तो शान्ति नही प्राप्त हो सकती है । अपनेको ज्ञानस्वरूप, सबसे निराला एक विलक्षण चैतन्यमय अपने आपको अनुभव करो और २४ घन्टेमे २-४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूपमे दृष्टि दो तो आकुलताए व्याकुलताएँ नष्ट हो जावेंगी । हम मूर्तिकी मुद्राका दर्शन करते है तो हमे शिक्षा मिलती है कि मूर्तिकी तरह ही शांत अपने आपको निरखू । अपने आपको उस मूर्तिकी तरह शात निरखे विना शाति नही मिलेगी । इस प्रकारसे मानो कि उनकी वीतरागमुद्रासे अपनेको शिक्षा मिली है।

जहाँ पर वासनाएँ है वहाँ दु.ख है, वहाँ व्यसन है । तो भाई ये व्यसन तो ज्ञानके द्वारा ही नष्ट हो सकते है । मै तो ज्ञानमात्र हू, कृतकृत्य हू, परिपूर्ण हू ऐसा तुरहे अपने आप को निरखना है । यही तो इस आत्माका काम है, इस आत्माका इसके आगे और कोई काम नही है । इसलिए अपने स्वभावमे दृष्टि हो तो वहाँ वासनाएँ समाप्त हो जावेगी और वास-नाओके समाप्त होनेसे सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे ।

पुरुषार्थ चार होते है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । धर्मके माने है, पुण्य करना, दान करना, परोपकार करना, दूसरोका सेवा सत्कार करना । धर्म, अर्थ और कामके मार्ग ही अब तो मिलेंगे, मोक्षमार्ग तो बन्द हो गया है । धर्मके मार्ग तो कितने ही है । दान करके, परोपकार करके, गरीबोको खिला पिला करके इत्यादि अनेक प्रकारसे धर्म किया जा सकता है । और अर्थके माने हैं धन कमाना । धन कमानेका पुरुषार्थ करना, इसीको कहते है अर्थ पुरुषार्थ । काम पुरुषार्थके माने हैं घरवामियोका पालन पोषण करना, समाज तथा देशके बारे मे कुछ सेवा भाव उत्पन्न करना, विषयभोग सेवना इत्यादिके माने कामपुरुषार्थ है । और मोक्ष पुरुषार्थ तो मोक्ष है ही । यह मोक्ष पुरुषार्थ अन्य तीनो पुरुषार्थोसे अच्छा है । धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ भी गृहस्थावस्थामे किसी अपेक्षा कुछ अच्छे है, मगर सर्वथा अच्छे नहीं कहेगे । क्यो अच्छे नही कहेगे ? एक एककी खबर लो । पहले कामको लो । काम निन्दनीय होता है । कामका अर्थ पालन पोषण और कामवासना दोनो ही है । काम ज्ञानका वैरी

है। जैसे विषयोमे आसक्ति है, प्रीति है तो वहाँ ज्ञानका काम तो नही चलता है। कामका पुरुपार्थ है ज्ञानका दुश्मन। अब अर्थपुरुपार्थको लो। धन तो अनर्थका मूल है। अर्थात् धन से अनर्थ होता है। इस धनका काम तो केवल अनर्थ है और कोई काम नही है। धनके होने पर यदि विवेक है तब तो काम बनेगा और यदि विवेक नही है, मोह है तो मोहके होनेसे स्वभाव ऐसा हो जाता है कि पाप करते है, दूसरोको सताते हैं, क्रोध करते है, छल, दम्भ, धोखा इत्यादि करते हैं। धर्मपुरुषार्थ, कामपुरुषार्थ व अर्थपुरुषार्थका कारण है। पुण्यका और काम क्या है ? खूब कमाई आ रही है, खूब सपत्ति भोगकी सामग्री मिल रही है तो पुण्य परमार्थमे यह प्रकृति है कि कामपुरुषार्थ और धर्मपुरुषार्थमे सहयोग दे। पुण्यपुरुषार्थ का और क्या काम है ? यहाँ आत्मधर्मकी बात नही कह रहे। उसमे यदि रम गए तो इससे अच्छा और क्या काम है ? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहाँ तो पुण्यकी बात लेना। इस पुरुषार्थसे क्या काम बना कि धन-सम्पत्ति मिल गई, भोगसामग्री मिल गई यही हुई अर्थपुरुषार्थकी बात। और दूसरे पुरुषार्थोंकी पोलको तो सुन ही लिया। काम ज्ञानका दुश्मन है, अर्थ अनर्थका मूल है और दोनो ही दुश्मनको बढावा देने वाले है, यह धर्म (पुण्य) पुरुषार्थ इन तीनो पुरुषार्थोंका सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नही करते है। यदि पुरुपार्थ करना ही है तो ज्ञानका पुरुषार्थ करो। परमपुरुषार्थका रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परमपुरुपार्थ हो सकता है। नही तो मोक्षपुरुषार्थ नही हो सकता है।

अभी देखो शान्ति, सतोप, सुख और आनन्द इत्यादि उसी अवस्थामे आते है जब कि अपने अत करणमे विपयकपायोका अनुभव न हो। यदि विषयोका लगाव है, कपायोका लगाव है, धन वैभवका लगाव है, कुटुम्ब परिवारका लगाव है तो शाति, सतोष, सुख, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते है ? जिनका लगाव इन सबमे होगा उन्हे दुर्गतिका पात्र बनना पडेगा। मनुष्यको सकटोसे बचाने वाला केवल ज्ञान ही है। और इसका कोई शरण नही है। घरमे स्त्रीके, पुत्रके हजार गुण हो, पर समझो कि कोई देवता नही हमे मिल गया है। अपने मनमे ही केवल विचार बना लेते है कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुखसे है। देखो भाई इस तरहसे परिवारको देखकर और अपने धनको देखकर सुखी हो रहे है। वे अपने ज्ञानको इन बाह्य चीजोमे ही फसाए हुए है। बाह्यमे ज्ञानका फसाना ही आस्रवका कारण होता है। सो कहते है कि धर्म, अर्थ, काम—ये तीनो पुरुषार्थ वास्तविक पुरुषार्थ नही है। मोक्षका पुरुषार्थ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्तिका ही बने सो बात उत्तम है। अरे जो तुझे जो चार-पाँच आदमी मिल गए हैं, जिनको तू अपना सर्वस्व समझता है उनसे ही क्या तेरी गुजर हो जायगी ? उस पारिवारिक बन्धनमे पडा हुआ यदि तू मौज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड जायगा ? बाहरी बातने

तेरा पूरा नही पडेगा, शाति नही मिलेगी । बाह्य भोगसाधनमे तो यह जीव जहाँ जाता है अपने हितपथमे आगे नही पहुंचता है ।

एक कथानकमे कहते है कि एक राजा थे । मुनिके दर्शन करनेके लिए गए । राजाने अपने बारेमे मुनिसे पूछा कि महाराज मेरा परभव क्या गुजरेगा, अब मैं मरकर क्या बनूगा ? मुनिने अवधिज्ञानसे सोचा और कहा कि तुम अमुक दिन, अमुक समयमे, अमुक स्थानपर तुम मरकर विष्टाके कीडा बनोगे । अब राजा अपने घर आया । बडा उदास था । अपने लडकेसे कह दिया कि बेटा मैं अमुक दिन अमुक टाइमपर, अमुक स्थानपर मरकर विष्टामे कीडा बनूँगा, सो तुम हमे एक लकडीसे मार डालना । मैं तो राजा हू और कीडा-मकौडा बनूगा तो मैं कीडा-मकौडा बनकर इस जगतमे नही रहूगा । राजा मर गया और कीडा बन गया । लडका एक लकडी लेकर पहुचा । जिस विष्टामे राजा कीडेके रूपमे बैठा हुआ था उसी जगह लकडीसे लडकेने मारना चाहा, पर वह विष्टामे घुस गया । देखो भाई वह कीडा मरना नही चाहता था । इस जगतमे यह जीव जिस गतिमे जन्म ले लेता है वह अन्य गतिमे नहीं जाना चाहता है । देखो नाम प्रकृतिमे गतियाँ चार मानी गयी है—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव । इसमे दो गति, नरक व तिर्यञ्च पाप है और मनुष्य व देव ये दो गति पुण्य है तथा आयुकी चार प्रकृति है—नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु व देवायु । जिसमे आयुकी तीन गतियाँ हैं—तिर्यञ्च, मनुष्य और देव तो पुण्य प्रकृतियाँ कही है, केवल नरकायु पाप है । यह फर्क इनमे कैसे आया ? कोई भी तिर्यञ्च या मनुष्य या देव जीव यह नही चाहता कि मै मर जाऊ । केवल नारकी ही चाहते है कि मैं झट मर जाऊँ । तिर्यञ्च नहीं चाहता कि मैं मर जाऊँ । तिर्यञ्चकी तो आयु प्रिय हो गयी । तिर्यञ्चकी जो व्यवस्था गुजर रही है उसे वह नही चाहता और मरना भी नहीं चाहता । यह जहाँ जाता है वही मस्त हो जाता है । जिनसे ये मोह कर लेते उनसे पूरा पड जावेगा, ऐसा तो है नही ।

हे आत्मन् ! विवेक ही पूजा है । जिनकी हम भगवान समझकर पूजा करते है, सदा ध्यान लगाते है, भक्ति करते है उनके ज्ञानकी कुछ तरग ही नहीं उठती । कितना ही हम माथा रगडते है पर वह हमारी तरफ देखते भी नही । देखो भैया ! बहुत दिन भक्ति करते हो गए, उनका ध्यान लगाते हो गए, उनकी आराधना करते हो गए फिर भी हमारी तरफ ताकते भी नही, देखते भी नही । और फिर भी हम पूजन भी करते, पाठ भी करते चले जा रहे है, फिर भी वह हमे पूछते भी नही । देखो भाई इतने दिन भगवानका पूजन करते हो गया उन्होने कभी यह भी नहीं कहा कि चलो यह ले लो । कुछ नहीं मिला । वह हमसे बोलते भी नहीं, बहुत दिन बीत गए, १० वर्ष बीत गए, २० वर्ष बीत गए, कुछो बीत गए, हमारे लिए उन्होने कुछ नहीं किया । अरे थोडासा हमसे बोल दे तो हमारा दिल ठंडा हो जाय ।

मगर कुछ नही किया। फिर भी हम उनको पूजते जा रहे है, उनके लिए हम न्यौछावर होते चले जा रहे है। कुछ तो बात है भगवानमे बडी तभी तो हम पूजते है। उन भगवानने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है। सबसे मोह छोडकर, ममत्व छोडकर अपने आपमे स्वय बस गए, अपने आपमे ही अपना ज्ञान किया, वैभव विभूतिको कुछ नही समझा। तो प्रभु निष्कम्प सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्तानन्दमय है, सर्वोत्कृष्ट हैं।

हे आत्मन्! ये बाहरके पदार्थ भोगसाधन क्या है बतलाओ? एक तराजूमे सेरभर मेढक तौलो तो क्या तौल सकोगे? अरे वह उछल जावेगे। कही इधरसे उछाल दी तो कही उधरसे उछाल दी। इसी तरह बाहरी पदार्थोंकी व्यवस्था बनाकर कोई चाहे कि हम आराम कर लें तो नही कर सकते है। बाह्यपदार्थोंकी हालत भी ऐसी ही है कि यह आया वह गया, और वह आया, यह गया। इस तरह बाह्यपदार्थोमे अपना उपयोग बनाकर हम आरामसे नही रह सकते हैं और अपनी व्यवस्था बनाकर हम आराम कर लेंगे, यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञानदृष्टि बना लें फिर सुखसे रहे, आरामसे रहे। य धर्म याने पुण्य अर्थ और काम पुरुषार्थ हमारी विपत्तिका कारण बनते है। हमारी अशातिका कारण बनते हैं। गृहस्थको यह बताया गया है कि धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोंके बिना नही चलता है अर्थात् बिना धर्म किए धन कमाये काम किए और मौज किए बिना काम नही चलती है, सो भाई ये तीनो पुरुषार्थ गृहस्थको करना पडेगे। परतु उनको बताया है कि तीनोमे बराबर का यत्न करना चाहिए। धन कमाना, पुरुषार्थ करना, धर्म करना सबमें बराबर दृष्टि रखनी चाहिए। और अगर कोई बराबर नही रखता है, केवल धर्ममे ही लगा रहता है, केवल धन कमानेमे ही लगा रहता है या केवल काममे लगा रहता है तो उस गृहस्थका गुजारा नही चलनेका है। अगर केवल धर्म ही धर्म करते हो तो मुनि बन जाओगे तो गुजारा चल जायगा। पर एक गृहस्थका गुजारा नही चलेगा। उसकी गृहस्थीका काम ही नही चल सकता है। केवल धर्म को ही खीचकर रह जावें तो गुजारा नही चलेगा। साधुका तो केबल धर्मवृत्तिमे गुजारा चल जायगा, पर गृहस्थका गुजारा नही चलेगा।

जैसे साधुवोको खाना मिल गया तो खा लिया और यदि न मिला तो न खाया, इस तरहसे उनका गुजारा तो चल जायगा पर त्रिवर्ग बिना एक गृहस्थका गुजारा नही चल पायगा। और यदि कोई गृहस्थीमे ही फसा रहे, धन ही धन कमानेमे पडा रहे, अपने परिवार का पालन पोषण ही करनेमे पडा रहे तो क्या उसका गुजारा चल जायगा? नही। और कोई ऐसा हो कि काम हो काममे रहे, विषयोमे ही मस्त रहे, खाने पीनेमे ही आसक्त रहे जिनसे मोह है उनकी सेवा खुशामद, पालनपोषणमे ही रहे और धर्म पुरुषार्थ न करे तो भी उसका काम नही चलेगा। इसलिए गृहस्थको धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोमे

ही समान समय देना चाहिए । धर्मके समयमे धर्म करें, मौज उडानेके समयमे मौज उडावें और धन कमानेके समयमे धन कमावें ।

देखो चार पुरुपार्थ बताए गए है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । मोक्ष पुरुषार्थ तो आजकल चलता ही नही । केवल तीन पुरुपार्थ रह गए हैं । और चौथा पुरुपार्थ जो अब चलता है वह आपको बतावें तो शायद सुहा जावेगा । वह पुरुषार्थ बढिया भी है । आजकल चौथा पुरुपार्थ चलता है सोना, नीद लेना, मोक्षकी एवजपर अब चलता है नीद लेना (हसी) । देखो काम चार है—धर्म, अर्थ, काम और शयन । और घटे हैं चौबीस । प्रत्येक कामसे २४ घटेको भाग दे दिया तो ६ घटे प्रत्येक कामका हुआ । ६ घटेका काम है धर्म करना, ६ घटे धन कमाना, ६ घटेका काम है पालन पोषण करना और मौज उठाना और ६ घटेका काम हैं नीद लेना आराम करना । चाहे थोडासा अन्तर पड जावे, पर इस तरह काम चलेगा और क्रम भी इस प्रकार चलेगा । धर्म सुबह करना, उसके बाद अर्थका काम, धन कमाने का काम, उसके बाद पालन-पोषण करने और मौज उडानेका काम, उसके बाद नीद लेने और आराम करनेका काम । जैसे धर्म ४ बजे सुबहसे १० बजे तक याने ६ घटे और अर्थ का काम अर्थात् धन कमानेका काम १० बजेसे शामके ४ बजे तक, और ४ बजेसे १० बजे रात तक पालन-पोपण तथा मौज उडानेका काम और १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नीद लेने और आराम करनेका काम । भले ही थोडा-सा परिवर्तन कर लो, मगर ये काम बराबर-बराबर चले । ४ बजेसे १० बजे तक नही तो एक घटा कम हो सही । ९ बजे तक ही सही । इसी टाइममे थोडा धर्म पुरुषार्थ भी कर लो, प्रात उठते ही कायोत्सर्गरूपमे णमोकार मत्रका जाप कर लो । उसके बाद हाथ-पैर धोकर स्वाध्याय कर लो, फिर सामायिक कर लो, सामायिक करनेके बादमे नहा लो, धोलो । देखो नहाना-धोना भी धर्ममे ही शामिल है जब कि यह भाव है कि देवदर्शनादि करना है । फिर धर्म करो, सत्सग करो इत्यादि ।

अब भी देखो धर्म ही चल रहा है । घरमे जो रसोई तैयार करेगा उसमे भी धर्मका ही काम है क्योंकि वह कोडे मकोडेको बचाकर खाना तैयार करेगा और फिर वह किसी मुनि अतिथि व्रतीको खिलाएगा । ऐसी भावनाएँ होनेपर धर्म होता है । देखो रसोईका काम घन्टे डेढ घण्टेमे हो जाता । यदि रसोईमे चटोरी चीज वगैरा बनाना है तो ज्यादा टाइम लगेगा । अब रसोई तैयार करनेमे भी देखो धर्म ही चलता है । सोच लो मनसे तो सदा धर्म ही धर्म चल सकता है । धर्मका असलमे तो २४ घन्टा ही टाइम है, किन्तु मुख्यताकी अपेक्षा बात चल रही है । अब देखो ४ बजे सुबहसे ९ या १० बजे दिन तक धर्म ही धर्म किया । अब १० बजे शाम तक धन कमानेका समय आ गया । धनको यदि ईमानदारीसे व परसेवा के भावसे कमाओ तो वहाँ भी धर्म है, सम्यक्त्वमे तो २४ घटा धर्म ही धर्म है । तो १० बजे

से ४ बजे तक धन कमाया जाय। फिर ४ बजेसे १० बजे रात तक लडको, बच्चोका पालन पोषण करना, मिलना जुलना, सत्सग करना, सभा मीटिंगमे जाना, मौज उडाना इत्यादि। और फिर १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नीद लेना, आराम करना। इस तरहसे बटवारा करना ठीक है। अब क्या बाकी रह गया ? कुछ नही। ज्ञानी योगीके तो तीनो जो पुरुषार्थ है धर्म, अर्थ और काम ये आदरके योग्य नही होते है। धन कमाना और विषयके काम करना तो यह तो सीधे खराब है। अर्थपुरुषार्थ करना भी अनर्थसे मिलता है। पुण्य ही यहाँ मदद देता है। पुण्यके कारण ही धन कमा लिया जाता है, भोगसेवन साधन होता है। ज्ञानसे ही तीनो पुरुषार्थोका उपयोग हो तो गृहस्थावस्थामे कुछ ठीक है। नही तो यह स्पष्ट बात तो है ही कि ये तीनो पुरुषार्थ ससारकी बात हैं। आदरके योग्य तो केवल आत्मधर्म है। कषायकी मदताको धर्म कहते है, किन्तु कदाचित् कषाय मद होने पर धर्म हो या न हो। किन्तु अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिरूप धर्म द्वारा कषाय मद हो जायगी और मोक्षमार्ग भी चलेगा। उस धर्मसे सत्य आदर प्राप्त होगा। अरे अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि ही धर्म है। अपने स्वरूपमे दृष्टि अधिकसे अधिक लगे तो वही धर्म है। धनकी चीज तो यो ही हो जायगी अथवा धन तो यो ही आता है। उसमे कुछ करना नही पडता है। अभी कोई समय ऐसा सुयोगका बन जावे तो यो ही कमाई हो जावे। अभी अभी २—४ मिनटमे ही बिना किए हुए ही कमाई हो जावेगी। पर हमे तो सोचना होगा, श्रद्धा करनी होगी, आचरण करना होगा, अपनेमे अपनेको लगाना होगा तभी अपना ठीक होगा। धर्म तो करनेसे ही होगा बाकी धन तो यो ही हो जायगा। यदि हम ऐसा ही करें तो यही धर्मका पालन होगा। सो अब हम अपने पर्यायके आदरको त्याग करके अपने सत्यस्वरूपपर दृष्टि दें और अपने आपको ही अवलोक कर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवें।

जगतके सभी जीव सुख चाहते है और जितने भी ये यत्न करते है सुख पानेके ही यत्न करते है। धन कमाना, देशसेवा करना, विषयसाधन बनाना, कषाय करना, भोग भोगना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारेके सारे यत्न सुखके लिए ये जीव करते हैं। उन यत्नोसे सुख मिल ही जाय, ऐसा तो नही है। यदि वे योग्य काम है तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं तो सुख नही मिलेगा। परन्तु सभी प्रयत्न सुखके लिए ही होते हैं। सुख होता क्यो नही है ? देखो जितने कारण जो कुछ हैं उनमे विचार करो तो अतमे एक ही बात मिलेगी, सुखका दुश्मन है दीनताका भाव, दीन परिणाम। दीनता सुखका दुश्मन है। पचेन्द्रियके विषयमे जब इच्छा होती है तब दीनता आती ही रहती है। अपनेमे विषयोकी चाह है तो दीनता होगी। परका भाव आ गया स्त्रीके आधीन हो गए या नए-नए जो साधन है उनके आधीन हो गये, ससुरालके आधीन हो गए, यही दीनता है। परिणाम

गरीब हो गए। अपने बलका कोई मूल्य वह नही करता है। यह दीनता ही तो सुखका दुश्मन है। दसो तरहके भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादि इच्छासे वे पराधीन होते है। कोई मनाकर भी दसो प्रकारके व्यञ्जन परोस रहे है। तो खाने वालेके मनमे आ जाय कि यह चीज अच्छी है। बस इतनेसे ही जीव मे दीनता आ गयी, उनका गौरव बुझ गया। चाहे ऊपरसे न मागे, मगर आशाके परिणाम आ गए तो दीनता है। और इस दीनताकी वृद्धिमे फिर वह मुखसे मांगने लगता है। यह दीनताका परिणाम ही मूलमे ऐसा है जो सुखका दुश्मन है। इसी तरह मन, चक्षु, श्रोत्रके वशीभूत हुए तो दीनता छा जायगी और यदि किसी चीजके वशीभूत नही हुए तो दीनता नही आती है। जगतके किसी पदार्थकी चाह नही है तो दीनता कैसे आवेगी? एकको न देखो, कितनोके सामने ये जगतके जीव दीन बने रहते है। स्त्रीके दीन, कुटुम्बके दीन, धनके दीन इत्यादि जिन-जिन बातोमे चाह है जिन-जिन वस्तुओसे प्रीति है उन सब पदार्थोंके दीन बन रहे है। सुखका अभाव किसने किया? दीनताने। धनहीन होनेको दीन नही कहते, किन्तु परवस्तुओकी चाह करे, भीतरमे लच जाय उसे दीनता कहते है। यह दीनताका परिणाम ही सुखका दुश्मन है।

एक बार एक राजा जगलसे निकला तो वहाँ एक सन्यासी पैदा था। वह राजा सन्यासीके आगेसे निकल गया, पर नमस्कार भी नही किया, बोला भी नही और वहांसे वापिस आया। कुछ थका माँदा था, सो वह साधुके पास आराम करनेके लिए बैठ गया। राजाने विनय भी नही की और न कोई शुश्रूषाकी बात की। राजा गर्वमे भरा हुआ बैठा था। साधु बोला एक श्लोकके द्वारा कि हे राजन्—"वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वदुकूलैः, सम-इवपरितोषो निर्विशेषो विशेषः। स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला, मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

यदि तुम रेशमके वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्षकी छाल और बल्कल पहिनकर खुश है। तुम यदि अर्थसे अर्थात् धनसे खुश रहा करते हो तो हम आचार्योंके ऊँचे-ऊँचे श्लोको के अर्थ लगाकर खुश रहा करते है। तुम यदि बडे अच्छे-अच्छे पलग, वाहन, आसनोमे खुश रहा करते हो तो मै पारमार्थिक तत्त्वोके विचारमे रहकर खुश रहा करता हू। हममे और तुममे अन्तर क्या है? कुछ नही। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदयमे तृष्णा लगी रहती है। उसका मतलब यह था कि मुझ सन्यासीको दरिद्र देखकर राजा गर्वमे आ गया है। तो उत्तर दिया कि दरिद्र वह है जिसके अन्दर तृष्णा लगी है। उसे ही दीनता कहते है। धनकी कमीसे दीन नही कहलाता। सुखका दुश्मन दीनता है। जब जीवको क्रोध आता है तब उसके मनमे दीनता आती है, घमड आता है, मोह करता है, मायाचार करता है, दूसरोमे

सम्मान चाहता है और दीन होता है। सुखका दुश्मन दीनताका परिणाम है। सो दीनता आती जाती है और सुख चाहता जाता है। तो ये दोनो बाते तो नही होती हैं कि दीनता भी आवे और सुख भी मिले। ये दोनो बातें तो हो ही नही सकती है।

यह दीनता होती कैसे है ? मिथ्यात्वके पापसे, भ्रमके पापसे। पाप ५ होते हैं। सुना होगा। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ—ये ५ ही पाप है। हिंसा, झूठ, चोरी ये तो लोकदृष्टिसे जो दूसरोको समझमे आते और जो व्यवस्था बन रही है वह बिगडे ना। पर अदरमे देखो तो ये ५ पाप है— मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोमे कौन-सा पाप छूट गया ? हिंसा, झूठ, चोरी वगैरा किए जाते हैं तो इन्ही पाँचोकी वजहसे किए जाते है। सो उनमे प्रबल है मोह। आप लाख दर्जे चाहते हैं, मेरा हित चाहते हैं और मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शक्ल देखकर पाप लग रहे है। मुझे भ्रम हो गया तो मैं मरा जाता हू, जला जाता हूँ। भ्रम तो पाप है। भ्रम कैसा, धोखा कैसा ? धोखा एक पापका बाप है। किसीने किसीको धोखा दिया तो धोखा देने वालेको टोटा है कि जिसे धोखा दिया उसे टोटा हैं। टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया। जिसको धोखा दिया गया है वह यदि ज्ञानमे है तो टोटा नही है और यदि ज्ञानमे नही है तो टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा रुद्र परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप हैं, उसका कैसे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा ? जिसने धोखा दिया उसे पाप है। जिसको धोखा दिया उसकी आत्माको कितने क्लेश होते है, इसका तो वही अनुभव कर सकता है जिसे क्लेश होते हैं। जिसको धोखा दिया है उसके मनमे ऐसा तक आता है कि अगर साधन हो तो धोखा देने वालेकी अभी जान ले लें। और यह मिथ्या मोह भी क्या है ? धोखा है। प्रश्न—जिसको धोखा दिया वह इतना सक्लेश करता और हिंसाका विचार करता है तो वह भी तो बडा पाप करता है। उत्तर—पाप तो वह भी करता है परन्तु अभी यहाँ उसकी बात नही कह रहे हैं। यहाँ तो उसके दुःखकी बात कह रहा हू। यह मोह भी क्या है ? यह विश्वासघात है, मोह है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा विश्वास नही बना और उसका उल्टा बना बैठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा तो यह कितना धोखा है ? धोखा अपनेको देने वाला मै खुद हू, कोई दूसरा नही है। अपनी कल्पनाओमे ही मस्त रहे। यह सोचें कि हम काम ठीक कर रहे हैं, हमारा यो काम चल रहा है, हम मजेमे हैं इत्यादि, पर वृद्धावस्थामे कुछ खबर और ही होगी। ६०, ७०, ८० वर्ष धोखेमे ही चले गए, कुछ नही किया। जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नही हो रहा है, पर अतमे उसको धोखा है। जब लोगोको कष्ट होने लगता, दुःख अधिक सह लिये जाते तभी ज्ञान होता है। किसी-किसीके जवानी या बचपनमे ही विवेक हो जाता है। ये जगत्के प्राणी अपनेको

धोखा देते जा रहे है। अच्छा खाने पीनेका ही काम है, संतुष्ट होकर खाते है। अरे इस सुख मे ही मस्त होकर अपने आपको धोखा देते हो। ये सब तो नष्ट होने वाले है, मेरी चीजें नही हैं। लोगोका सुखमे मस्त होना अपने आपको धोखा देना है। अरे जो सुख आते है उनके भी तुम जाननहार रहो और जो दुःख होते है उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर क्यो सुखमे मस्त हुए जाते हो और दुःखमे घबडाए जाते हो ? यही तो इस ससारमे विकार है। अरे पर-पदार्थोंमे, परजीवोमे मस्त न हो। उनमे मस्त होनेसे सुख नही होता।

जिसके लालच है उसके ही दीनता है। और जहाँ पर दीनता है वहाँ पर क्लेश है। जैसे कोई किसी वस्तुमे लालच करे, परवस्तुवोमे दृष्टि दे तो वही दीनता है। तो सुखका दुश्मन दीनता है। दीनताका परिणाम है और वही एक बडी दुर्गति है। उसका कारण पाप है। पाप करे तो सारी बातें उत्पन्न होती है इसलिए पापसे दूर रहना, यही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट विभूति है। जो पुराणोमे लिखे गए महापुरुष है उनमे यह विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे, धर्ममे प्रीति रही। इसीसे उनके पुराण बन गए। भक्त लोग उनके चरित्रके पन्ना-पन्ना खोलते है और उनके चरित्र पढते है। उनमे यही विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे। तो यह पाप जो है वही सुखका दुश्मन है। तो चाहिए तो यह कि इस पापको छोड दे। एक जगह शास्त्रसभा हो रही थी। अनेक लोग शास्त्रमे बैठे हुए थे। एक लकडहारा भी उस दिन शास्त्रमे बैठा था। शास्त्रमे चर्चा चली कि ये ५ पाप ही दुःखके देने वाले हैं। उनको त्यागना चाहिए। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। लकडहारेने सोचा कि कुछ और पाप तो मै करता नही हू, केवल जगलमे हरी लकडी काटता हू। अच्छा उसे भी अब मै नही काटूगा। मैं केवल सूखी लकडिया बीन लाया करूँगा या किसी सूखे पेडसे ही काट लाया करूँगा। मैं किसीसे झूठ भी नही बोलता। केवल ग्राहकसे लकडीके ठहरानेमे झूठ बोलता हू सो यह भी न बोलूगा। साडे आठ आनाकी लकडी लाऊँगा और आठ आना कहूगा। चोरी मैं सिर्फ यह करता हू कि दो पैसेकी चुंगी बचा लेता हू। मैं चोरी भी नही करूँगा। मैने किसी दूसरेकी स्त्रीपर कुदृष्टि भी नही डाली। अच्छा अब मै पूर्ण ब्रह्मचर्य कर लू। स्वस्त्रीसे भी ब्रह्मचर्य रखूगा। परिग्रह भी क्या करना है ? ठीक है आठ आनेकी लकडी बेचता हू। दो आने धर्ममे खर्च करूँ, चार आनेमे गुजर-बसर करूँगा और दो आने जो बचते है उन्हे विपत्तियोसे बचनेके लिए, सकटसे हटनेके लिए, विवाह आदि कामोमे लगानेके लिए जोडता रहू। अपनी कमाईके चार भाग कर लिये। उसके परिग्रहका काम ठीक हो गया। इस तरहसे वह अपनी गुजर करता गया। एक दिन लकडहारा जगलसे लकडी काटकर एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। सेठका नौकर रसोइया निकला, बोला—"लकडी बेचोगे ?" हाँ, हाँ बेचूँगा। कितने मे बेचोगे ? ८ आनेमे। ४ आने लोगे ?···नही। ६ आने लोगे ?···नही। ७ आने लोगे ?

नही। लकडहारा चल पडा। रसोइया थोडी देर बाद बोला—अच्छा, लौट आवो। लकडहारा लौट आया। साढे सात आने देंगे। रसोइयाने फिर वही कहा। तब लकडहारा बोला—तू किस बेईमानका नौकर है? ऊपरसे सेठ सुन रहा था। सेठने बुलाया, बैठाया और बोला कि हमे क्यो बेईमान बना रहे हो? कहा महाराज, नौकर भी जिस सगमे रहता है वैसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मजूर है, फिर बादमे कहता है कि साढे सात आने लोगे। सेठजी तुम तो रोज शास्त्रमे बैठते हो, हम तुम्हे देखते है। हम तो केवल पहिले ही दिन शास्त्रमे बैठे तबसे ही मैंने पाँचो पापोका त्याग कर लिया। अब मै हरी लकडी नही काटता, चुगी वालेसे पैसे नही चुराता, झूठ नही बोलता, हम ब्रह्मचर्यका पालन भी करते है। अपनी कमाईका एक चौथाई धर्मके कामोमें, दो चौथाई गुजारेमे लगाता हू और एक चौथाई विपत्तियोके लिए, सकटोके लिए और घरके काम-काजोके लिए बचाता हू। सेठ बोला कि अरे लकडहारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठने उसका आदर-सत्कार किया। प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापोको लिए जिन्दा रहने वालेको है। जो पापोको बनाता है, वह आदर्श नही बन पाता है और जो पापोसे दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है, सुखी रहता है। सुखी होनेका उपाय है पापोका दूर करना है।

पाप पाँच हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोंके जो वशीभूत है वह शांति नही प्राप्त कर सकता है। तो यह दीनता कैसे नष्ट हो? जब अपना महत्त्व याद हो कि मैं तो ऐसा प्रभु हू तो दीनता नष्ट है। दीनता तब आती है तो जब अपनेको तुच्छ समझना है। दूसरोसे ही मेरी जिन्दगी है, दूसरोंसे ही मुझे सुख है—इस तरहके मिथ्या परिणाम रहते है तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हो कि मैं आत्मा शुद्ध, चैतन्य-स्वरूप हू, ज्ञानानन्द भाव मात्र हू, विलक्षण हू, सर्वोत्कृष्ट हू, मै ऐसा अपनी आत्माको देखूं तो मै सुखी हू, परिपूर्ण हू, मेरेमे हीनता नही है। हीनताका मेरेमे काम ही नही है, यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसके तुच्छता कहाँ बसी है? इस प्रकारसे अपनेको नही देखता है और बाहरमे ही मोह लगाए रहता है तभी दीनता आ जाती है। इस दीनताके मिटानेका उपाय है अपने स्वरूपकी दृष्टि करना। जितना भी मुझे सुख मिलता है वह मेरे ज्ञानके विकाससे मिलता है।

एक मनुष्य भोजन करके अपने आपमे सुखका अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार हो करके, अपने प्रभुके दर्शन करके सुख प्राप्त करता है। तब कैसे कहा जाय कि सुखका कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञानसे सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढिया बढिया भोजन भी कराते है और दो चार चोचले भी करते है याने बढिया भोजन प्रेमसे खूब कराते हैं और खुद भोजन करते जाते

है और कहते है कि खा लो ऐसा अच्छा भोजन तुमने कभी किया नही होगा। तुम्हारे बाप ने भी कभी ऐसा भोजन नही खाया होगा। इस प्रकारसे वह विषसा बोल उगलते है। तो खाने वाला कितना दु:ख महसूस करेगा? अरे बाह्य वस्तुसे तुमने सुख माना है तो सुख ही उससे निकलना चाहिए। तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजनसे सुख नही मिलता है, केवल कल्पनाएँ बना लेनेसे ही सुख मिलता है। सर्वत्र ही जीवको ज्ञानसे सुख मिलता है, परवस्तुवोसे सुख नही मिलता है। जो सुख महसूस करते है वह कल्पनाएँ करके ही महसूस करते है। जब भ्रम हो गया कि यह सुख इस वस्तुसे हमे मिल रहा है, वाह कितना बढिया है तो सुख हो गया। इसी प्रकारसे यदि भ्रम हो जाए तो परकी ओर झुकाव होगा ही और उससे क्लेश होगा। यह वस्तु तो कितनी अच्छी थी? इस कल्पना के ही कारण उस इष्टके नष्ट होनेपर क्लेश होता है। सुख और दुःख ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है। यदि अपनेमे ज्ञान है तो वहाँ दुखोका नाम नही है और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश है। कल्पनाएँ बना लेनेसे दुःख सुख हो जाते है। अभी कोई क्लेश है तो अगर सही ज्ञान बना लें कि मैं तो ज्ञानानन्दघनमात्र हू, मै तो सुखी हूँ तो क्लेश दूर जावेंगे। एक मनुष्यको कोई अच्छा काँच मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि यह हीरा होगा। अरे यह तो २०—२५ हजारका कमसे कम होगा। बस समझो उसको ठसक आ जाती। अगूठीमे भीतरमे कोई काँच लगा है, उसमे चमक होनेसे यह भ्रम हो जाय कि यह हीरा है, कमसे कम १० हजारका होगा। इतनेसे ही वह प्रसन्न हो जायगा, सुखी हो जायगा। और यदि हीरा भी हो और जरा देरमे ही यह समझमे आ जावे कि अरे यह तो कांच है तो उसका चित्त बुझा रहता है। बाह्य पदार्थोंसे कोई सुख नही है, पर भ्रम ऐसा बन गया है कि बाह्य पदार्थों से ही सुख है—यही समझकर वह परिश्रम करता है और उनका सग्रह करता है। जैसे कुत्ते को सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुहमे रखकर अकेलेमे चलता है। उसके चबानेसे दाँत मसूढे फट जाते है, खून भी आ जाता है। अपने खूनका आनन्द आता है, पर भ्रम हो गया उसको कि हड्डी चबानेसे आनन्द आता, हड्डीसे स्वाद मिल रहा है। यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको छिनानेके लिए दौडता है तो वह गुर्राता है। उसके मसूढे कटनेसे खून आ गया, उसे भ्रम हो गया कि यह हड्डीका खून है इसलिए उसे आनन्द मिला। यह दृष्टान्त है।

इसी तरह जगतके जीव अपने स्वय ज्ञानसे, अपने ही आनन्दसे सुखी होते है। किन्तु उस समय जिन बाह्य पदार्थोको उपयोगमे लिये हुए है उनसे सुखका भ्रम हो गया, सो कोई परवस्तुवोको पकडता और सग्रह करता है और उनके ही पीछे झझट चलता है। सही पता हो जाय कि मै स्वय ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्त्व हू। यदि यह पता पडे तो इसके दीनता न रहे। यह दीन हो जाता है किसी भी वस्तुको देखकर। पंचेन्द्रियके विषयोको देखकर यह

दीन हो जाता है, ऐसा दीन हो जाना ही उसके दुःखका कारण है ।

हे आत्मन् ! अपने आपको निरखो कि मै भगवान सदृश ज्ञानमात्र हू । इसमे दुःखो का काम ही नही है । इसके सारे प्रदेशोमे लबालब सुख ही सुख भरा हुआ है, आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है, आनन्दकी मेरेमे कमी नही है । मेरा ज्ञान मेरेसे बाहर नही है और न आनन्द ही मेरेसे बाहर है । मै स्वय ज्ञानानन्दघन हू, यह लक्ष्य हो जाय, ऐसा भीतरसे परिचय मिल जाय, दृढ प्रतीति हो जाय, ऐसै यह उपयोग बनानेके लिए तैयार हो जाय तो उसको क्लेश नही मिल सकते है भैया ! परसम्बधमे हानि ही हानि है । अकेला है तो बडा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या मिला कि चौपाया हो गया । दो पैर खुद के, दो पैर स्त्रीके । चौपाया जानवर कहलाते है । दो हाथ-पैर वाला मनुष्य था, चौपाया हो गया । बच्चा हो गया तो छैपाया हो गया । भवरा हो गया । बच्चेका विवाह भी हो गया तो अष्टपाया हो गया अर्थात् मकडी बन गया । मकडीका जाल होता है । उसने अपनेमे जाल बनाया और फंस गयी । ५०-६०-७०-८० वर्ष तक उनकी ही धुनमे लगा रहा है, चाहे कितने ही सकट आवें ? घरमे बसने वाले लोगोको मान लिया कि ये मेरे है । अरे ये दुनियाके लोग क्या है ? ये सब अपने लिए मोहमे विपदाएँ है । ऐसा भाव अपने मनमे बने कि मैं भगवान तुल्य, ज्ञानानन्दघन पवित्र आत्मा सबसे न्यारा हूँ । परन्तु ज्ञान तो यह आता है कि यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है और बाकी तो सब गैर है । वे चाहे मर जावें, चाहे जो हो जावे, उनसे मेरा सम्बध नही । पर अपने घरके जो २–४ मनुष्य है उनको पकडे हुए है । अरे इन २–४ मनुष्योका मोह छोडो, ये सब तेरे कुछ नही है । इनके मोहसे ही तुझे ससारमे रुलना पडेगा । मगर उन्हीके बारेमे भक्ति है, भावना है और ज्ञान है । दस लक्षणमे दान करें, वृत करें, पर मोह न करे, ऐसी बातका उत्साह तक भी नही होता । भैया ! सब कुछ करो, पर मोह न करो । जगतके समस्त क्लेश पापोसे आते है । तो मै इन पापोको अपनेसे दूर करके अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊँ ।

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है । उस स्वरूपको देखकर जगतके सभी पदार्थोंपर दृष्टि डालते हुए जब निर्णय करते हो तो विदित होगा कि यह आत्मा सर्वमे महान् है, इसे समयसार कहा जाता है । समयका अर्थ है—"स एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समय" जो अपने गुणपर्यायमे तन्मयतासे हो, रहे उसे समय कहते है । सभी पदार्थ समय है, वे अपने ही गुणपर्यायमे तन्मय है । तन्मय होना तो स्वभाव ही है । इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते है । उनमे सार क्या है, यह आत्मपदार्थ ऐसा अनुभव करना कि जगतमे सब कुछ होता है, धर्म है, अधर्म है, पुद्गल है, काल है, आकाश है, पर एक जीव नही है, एक चैतन्य पदार्थ नही है तो क्या हो ? व्यवस्थाएँ कुछ भी न होगी, कुछ चहल-पहल न हो

सकी। अपने आपको देखो, सब पदार्थोंको त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मात्र मैं चैतन्यस्वरूप ही हू तो इस आत्माको शांति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धिसे विलग हुए तो शातिका कुछ पता है क्या ? विषयोमे पडकर भोग लिया, मरणके समय क्लेश और विकल्प हुए। यो विषयभोगका ही मार्ग लिया, यह तो शातिका मार्ग नही। शातिका मार्ग तो गुप्त है। शाति अपने ही अदर अपने आप अपनेसे ही प्रकट होती है। ऐसा यह महान आत्मा इन्द्रियोके विषयोके कारण ठगा गया, वंचित रहा। यह इन्द्रियां तो सुन्दर लगती है पर आनन्द की जगहपर क्लेश भोगना पडता है। और की बात छोडकर अपनेमे शीघ्र आवो। क्योकि बडी अवस्था हो जाने पर फिर पछतावा होता है।

अहो, अपना इतना समय गर्द कर दिया। दुखोमे, चिंताओमे समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नही आता। उम्र १० वर्षकी हो गई लौकिक ज्ञानकी वृद्धि हुई, बाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामे भी ज्ञान नही किया वह भी दु:खोमे ही बीत गई। अब वृद्धावस्था आ गई तो पछतावा करते है। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमे, मोहमे, विषयोमे आत्माको शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। जगतके कौनसे जीव तुम्हारे है जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्तिको ही तो देखते हो कि आत्माको भी देखते हो। अच्छा तुम राग किससे करते हो ? क्या शरीरसे इस अशुचि पिण्डसे। इससे तो करते नही, तब क्या आत्मासे करते हो ? आत्मा तो अमूर्त चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तैसे सब चेतन हैं। अत आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तक भी नही रहता, फिर राग ही क्या करोगे ? यहाँ तो मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। वह कुछ प्रीतिकी चीज है क्या ? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। यह आत्मा एक ज्ञान भावमात्र है। जाननमात्र आकाशकी तरह अमूर्त, किन्तु एक ज्ञान गुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है वह तो वह है और ऐसे ही सब हैं। स्वभाव और आत्मामे भेद ही नजर नही आता। मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखता ही कौन है ? और देखनेसे राग नही आ सकता है। वह ज्ञातादृष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है ? ये जितने भी बाह्य पदार्थ हैं वे सब बिल्कुल असार हैं। इनमे हितका नाम ही नहीं है। यदि परपदार्थोंसे अपना हित मानते है तो समझो कि हम भ्रममे पडकर उल्टे उल्टे मार्गपर चल रहे, अरे इन विषयोंके मार्गको छोडो और अपने स्वरूपमार्गमे आवो। जिसमे उस सहजस्वरूप ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वके दर्शन होगे। वह तो प्रभुसा पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वैसा ही आनन्द उसका है। मैं अपने स्वरूपको देखू। बाकी सब व्यर्थ है। जगतका कौनसा ऐसा तत्त्व है जो हितकर हो, फिर कौनसी बातमे अहकार है ? आज दस लक्षणोका दूसरा दिन है और मार्दव धर्म है, जिसका अर्थ हुआ कोमलता, नम्रता।

ऐसी विनम्रता हो जो खुद-खुदमे समा गई हो, खुद-खुदमे ही विलीन हो गई हो। ऐसे आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका मार्ग है। जगतके अन्य पदार्थोंको तू न मान। कौनसे पदार्थ मेरे है ? कोई नही। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे ही सत् है और फिर विनाशीक है, नष्ट हो जाने वाला भी है। कौनसी ऐसी वस्तु है जो सदा रहती हो ?

भगवान स्वामी समन्तभद्रने कहा है—स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेव पुसा, स्वार्थो न भोगः परिभगुरात्मा। तृषोनुषगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥

कहते हैं कि जीवका आत्यन्तिक स्वास्थ्य क्या है अथवा उसका वास्तविक स्वार्थ क्या है, आत्मप्रयोजन क्या है ? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वार्थ है, परमहित है। स्वास्थ्य कहते किसे हैं ? स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः, स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम् अपने आपमे ठहरे रहनेकी बातको कहते है स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमे रम जावो, ठहर जावो। ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उत्कृष्ट स्वार्थ है। यह भोगविलास स्वहित नही, यह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमे केवल मैं खोया हुआ हू। देखो मोही जन जो कर रहे है वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगते है पर ये भोग विषय बडे महगे पडेंगे। हाथ पैर मिलते है, मन मिलता है, बहुतोमे हुकूमत चलाई जा सकती है, बहुतोसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारो वाले प्राणीका स्वरूप या सर्वस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियोमे भ्रमण करता रहता है, जन्ममरणके चक्रमे पडकर वह कीडा-मकौडा हो जायग। और उसे सदा दुःख ही दुःख होगे।

देखो तो गजबकी बात हमारी यह त्रिविध सृष्टि इतने जीवोके रूपमे कैसे बन गई ? यह सब प्रकृतिकी उपाधिमे चेतन प्रभुकी अवस्था है। परमार्थसे तो मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हू। यदि बाह्य पदार्थोमे दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमे दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष भगवान आत्मा अरहन्त एव सिद्ध है और ऐसे शुद्ध बननेके प्रयत्नमे जो लगा रहता है वह साधु है। ऐसा ज्ञानमय, चरित्रमात्र मै सत् हू। अपने आपमे तन्मय हुआ ज्ञान आनन्द आदि त्रैकालिक शक्तियाँ मात्र जो अनत विलासको लिए रहता है, जो अनेक प्रकारके पर्यायोको धारण करता है फिर भी वहीका वही है, वह चैतन्य प्रभु मैं हू। इसका ही पूर्णविकास अरहत व सिद्ध भगवान है। ऐसे शुद्ध भगवानकी उपासना करें तो यह हमारे उत्थानकी बात है। मैंने माना कि शुद्धके आश्रयसे शुद्ध होता हू व अशुद्धके आश्रयसे अशुद्ध होता हू। वर्तमानमे तो मैं शुद्ध नही, भगवान पर हैं तो किसके लक्ष्यसे मै शुद्ध बनूं ? स्वरूपको लक्ष्यमे लूं तो मैं शुद्ध हो सकता हू। मै शुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा शुद्ध हो गई और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गई। अब क्या पसद न करोगे कि अशुद्ध आत्माके तो आत्मा अशुद्ध हो। अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है ? रागी द्वेषी

है, जो विषयकषायोसे भरा हुआ है, जो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेगें। उसके लक्ष्य से शुद्ध नही होगा तथा भगवान पर आत्मा है परका लक्ष्य परमार्थसे होता नही। उनकी भक्तिसे उनके ध्यानसे उनके आश्रयसे आत्मा शुद्ध नही हो सकती है। परमार्थसे देखो तो इस आत्माके लिए यह आत्मा शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते है कि मैं प्रत्येकसे न्यारा अपने आपमे तन्मय हू। आत्माके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंपर मेरा अधिकार नही है। मैं ही वह हू, मै ही उपास्य हू, मैं ही परमात्म तत्त्व हू, इस प्रकारका तू मनमे विचार कर। तू उन बाह्यपदार्थोंका ध्यान न कर। तू उनको ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणमन कर अर्थात् अपने ही भावोका ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योमे ध्यान देकर कोई परमात्मा नही बन सकता है सो एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणमनको छोडकर लटोरे घसीटोको हाथ पकड मोक्षमे ले जाय ऐसा हो नही सकता। अपने आपको ही देखो कि मैं आत्मा शुद्ध हू, सबसे निराला हू। अपने शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिसे तू पार होगा तो परमे दृष्टि लगाकर माया, मोह आदिसे पिसा जा रहा है तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जाएँगे ? नही। हम आत्माकी श्रद्धा करके शुद्ध हो सकेगे। और अगर इस आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेंगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है ? अरे इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्धस्वभाव है, वह स्वत· सिद्ध आत्मतत्त्व है। मैं शुद्ध आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता हू। हमारे इस कूडे कचडे शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमे आ रहा है उस निज शुद्ध आमतत्त्वको लक्ष्यमे लें तो यह गदगी, कूडा करकट नष्ट हो जाता है।

हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टिके बहुत भीतर चलकर शुद्ध तत्त्वको जान सकते हैं। वह कोई एक पिण्ड जैसी चीज नही बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नही करेगा तो इस जगतमे तेरा कोई शरण नही है। बाहरमे जो शरण माना है वह तेरा कोई नही है। वे सब स्वार्थी हैं। वे सब अपने-अपने विषयोमे लगे हैं। वे सब अपने ही प्रयोजनमे लगे है। वे मुझसे बात ही नही करते हैं, वे मेरा कुछ नही करते हैं तो हम किस की शरणमे जावें ? अरे वह तेरे लिए सकट हैं, उनसे तुझे शरण नही मिलेगी तेरी शरण तेरी प्रभु आत्मामे ही मिलेगी। मैं अन्तर्दृष्टि करके देखूं तो वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है, शरण तो सही मे वह हमारा प्रभु है, भगवान है, परमात्मा है। वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वे तेरे नही हो गए। वे तेरे हो ही नही सकते हैं। अन्य मे दृष्टि करने से हम बहुत गलत रास्तेमे बहे चले जा रहे हैं। तो लौटना भी हमे उतना ही पडेगा। जैसे यदि हमे कलकत्ता जाना है और हम पश्चिममे चले जावें तो हमे वहांसे लौटना ही पडेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि अन्यमे बढती चली जाती है तो हमे उतना ही उन

सबसे निवृत्त होकर निजस्वरूप को ओर दृष्टिको लाना पडेगा। यदि हम बाहरी तत्त्वोको उपयोगमे लाने लगे, अपने परिवार तथा मित्रजनोको सर्वस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नही मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगोमे आसक्ति न करें, अन्य तत्त्वोको अपने उपयोगमे न लें, कुटुम्ब, परिवार तथा मित्रजनोको अपना सर्वस्व न समझें तब तो हमारा प्रभु हमे मिलेगा। जैसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पडेगा सही मार्गपर आनेके लिये, इसी प्रकार इस जीवको जो अपने आपको भूलकर परमे दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सर्व परसे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको पहिचानना होगा।

देखो—अपने धन, वैभव, कुटुम्ब परिवारसे सबको प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपमे प्रीति नही है। ज्ञानस्वरूपमे प्रीति करनेमे तो कही रुकावट नही है। तू अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति कर। एक दुकान मालिक यहाँ बैठा है। कल्पना कर लें कि मैं अपनी दुकानमे गया, दुकानकी तिजोरी खोली। तिजोरीमे सन्दूक है, सन्दूकमे डिब्बा है और उस डिब्बेमे कपडेमे बधा हुआ हीरा रक्खा है, उसमे अगूठी रक्खी है तो वहाँ तक ज्ञानके पहुचनेमे कमरा कोई बाधा नही डालता है, तिजोरी वगैरा कोई भी बाधा नही डालते। अरे तू अपने ज्ञानकी रुकावट न कर। ज्ञानकी रुकावट तो विषयकषायसे होती है, ज्ञानके आ जानेसे बाधाएँ नही फैलती है। भाई इन विषयोमे पड करके ज्ञानको खोये हुए हो। इन विषयोमे पडनेसे तेरा कोई रक्षक नही। तेरी रक्षा करने वाला, रुकावट करने वाला तू ही है, तेरेमे ज्ञान है। जरा अपने अन्तरमे दृष्टि तो दो। यथार्थ विकासोके विना तेरेको बडा कौन कर सकता है? इन विषयोमे यह दम नही कि तुझे बडा बना दे। हे आत्मन्! तेरी रुकावट करने वाला तू ही है, तेरी ही सैन पाकर कर्म व विषय प्रबल होते है। जैसे मालिकके साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमे कुछ दम नही, परन्तु मालिकके छू छू करनेसे ही कुत्ता दूसरोपर आक्रमण कर देता है, मालिकके उस छू छू से ही कुत्ता बलिष्ट बन जाता है। वह नही देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रियविषय दुखदाई हो जाते है। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाह्यकी इच्छा नही करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपके पहिचानसे ही आत्मा बलिष्ट हो जाता है। अतः यदि हम निजस्वरूपमे दृष्टि दें तो सब सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमे दृष्टि न दे सका, मेरा बाह्यपदार्थोंसे ही सयोग रहा तो जीवन भर ही दुखी रहना है, यही पहिलेसे सोच लो। अन्य किसीमे ऐसी सामर्थ्य नही जो हमे सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुखी होते है। यदि वह विपयोमे आसक्त है तो उसे दुःख होते है। यदि विषयोमे आसक्त न रहे

तो विषयोमे कोई ताकत नही जो उसे दुखी कर दें। सुखी होना तथा दुखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोके सुखी करनेसे सुखी नही हो सकता और दूसरोके दुखी करनेसे दुखी नही हो सकता। मैं दूसरोके दुखी करनेसे दुखी होऊ तो इसका अर्थ है कि आत्मामे बल, बुद्धि नही है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओको पराधीन आत्माए कहते है। हम बाह्यमे दृष्टि न करें तो हम पराधीन नही होगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दु.ख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमे लगा दूं तो मुझे दु ख होता है। बाह्यमे मेरा कुछ नही है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नही है। पर मैने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमे बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दु:ख होते है।

अरे बाह्य पदार्थोंसे तुझे गौरवके लायक कुछ मिलता है क्या ? शरीर है तो वह भी असार, धन वैभव है यह भी असार है। यह किसीके लिए भी सार न हो सकेगा। तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिणमन कर रहा है, बाहर कुछ नही है। तू अपनेपर कृपादृष्टि रख तो तू आध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्यसे अपनी बुद्धि छोड दे। तू अपने बाह्य उपयोगो को छोड दे और अपने आन्तरिक उपयोगो मे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोमे आया तो सुख होगे और यदि बाह्य मे तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दुःख होगे और पागल बनना पडेगा। भाई देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है ? यह आत्मा निरतर विषयोसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमे स्वभावमे ठगी नही गई। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जावेंगे। यदि तू अपने आत्माका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा, तुझे क्लेश होगे। तू ने यह कल्पनाए बना रखी है कि विषयोसे सुख है इस लिए तू उन विषयोमे ही अपना समय लगा रहा है। हाय विषयोमे तू पड रहा है। अरे विषय ही तेरे दु.खोका कारण बना देते हैं। अगर मोह, राग, माया बनी तो यह भी एक विषय है इनसे भी तू पराधीन हो जायगा। तू पराधीन मत बन। दृष्टि ऐसी बन गई कि यह मेरा है, यह पराया है। इससे अहकार प्रतीत होता है। अरे मेरा कुछ नही है, मैं तो सबसे न्यारा हू। यदि यह उपयोग बन जाए कि मेरा प्रभु मै ही हू, मैं जगतके सब पदार्थोंसे न्यारा हू। यदि ऐसा उपयोग बन जायगा तो तेरा उत्थान होगा और यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो तेरा पतन होगा और ससारमे रुलना पडेगा। यथार्थ बात तो यह है कि सुख दु ख अपनी समझपर ही निर्भर है। तू अपनी आत्मामे ही विश्राम कर। वही तुझे शरण मिलेगी। और यदि तूने अपनी आत्मामे विश्राम न किया तो ससारमे भटकना पडेगा, सहारा कोई नही देगा। यहाँ तक कि मरणके समय भी तुझे सहारा नही मिलेगा। तेरा शरीर भी तुझसे मिला नही रहेगा। परिवारके लोगोको खूब खिलाया पिलाया। अपने सब

सुख दु:ख भूलकर परिवारके लोगोकी सेवा भी करी, पर अंतमे कोई किसीका नही होता है। तेरा साथी तू ही है और कोई दूसरा नही। चक्रवर्तियोके साथ भी कोई नही रहेगा। यह जो बाह्य पदार्थ है वे भी हमारे नही होगे। यह जो संसारका नृत्य है वह आप निजके स्वरूपकी भूलसे ही होता है। अतः बाह्यदृष्टि छोडकर अब अपने आत्मस्वरूपमे दृष्टि दूं और अपनेमे अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

सिद्ध आत्मा, पूर्णदर्शन, पूर्णज्ञान, पूर्ण सुख और पूर्ण शक्तियोसे सम्पन्न है। यह मै आत्मा एक देश, दर्शन, एकदेश ज्ञान, एकदेश सुख और एकदेश शक्तिसे युक्त हू, किन्तु मै वैसा ही पूर्ण वैसा ही सर्वज्ञ होने योग्य हू। मेरी और प्रभुकी जाति एक है। हम और वे सिद्ध वस्तुसे एक है। मैं चैतन्यमात्र हू। जैसा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानानन्दघन प्रभु है वैसा मैं हू। केवल जरासा आविर्भाव तिरोभावका अन्तर है। वह अन्तर कैसे किया ? हमने अपने अपराधसे किया। निमित्त कुछ भी हो मगर अपराध हमी करते है और उसके ही करनेसे मुझमे हैरानी होती है। यह तो स्वभावसे ही असीम विकास वाला है। इसका अपराध मै ही तो करता हू, अन्य अपराधका कारण नही, किन्तु प्रभु पूर्ण है इसका कारण नही। जैसे कभी बच्चोको मेढकका खिलौना दिया जाता है। मेढकका खिलौना टीनका बना हुआ है। उसमे पत्ती नीचे लगी रहती है और पासमे चिपडा लगा रहता है, जिससे वह चिपक जाता है। मेढकको पत्तीसे कभी चिपकाकर रख देते है तो वह छूटकर छिटक-छिटककर उसी जगह पर उछलता है। उसके उछलनेके माने यह नही कि उसका कुछ यत्न किया जाता है, वह छूटना स्वभावसे ही उछलता है। उसमे कुछ करना नही पडता है। एक किवाड अपने आप लग जाते है। किवाड खोलनेमे तो यत्न करना पडता है, पर लगानेमे कुछ नही करना पडता है। छोडा और लग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नही करना पडता है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पडता है, क्योकि उसमे कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे विश्वमे विकसित है, उसका कोई कारण नही है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमे नही पैदा है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होगे, फिर सुख होंगे इसमे कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमे कोई कारण नही है। आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमे रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय हैं, पूर्ण दृष्टिमय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है। इस शुद्ध विकासके बने रहनेका कोई कारण नही है। क्यो कारण नही है ? क्योकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है तैसे वे है। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बडा है और किसी का छोटा है। इस ज्ञानकी हीनाधिकताके तो कारण है, पर किसीका ज्ञान पूर्णविकसित है तो उसमे कुछ बाह्य कारण नही है। जैसा स्वाभाविक ढग है वह अपने आप है। उसमे कारण क्या है ? यह मोटा दृष्टान्त दे रहा

हू । जलको अग्निपर या धूपमें रख दें तो उष्ण हो जायगा, इसका कुछ कारण है । आत्मा शात रहे इसका कोई बाह्य कारण नही है ।

आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है, क्या कमाल है ? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है । तारीफ तो उन ससारमे रहने वालोकी है जो तिर्यंच बन जाते है, कीडे मकौडे बन जाते है । भगवान की हालतमे क्या कमाल है ? वे तो स्वयं ही शुद्ध है । कमाल तो इसमें है जो स्वभावतः कैसे थे और पेड़ हो गए, पत्तियां लग गईं । वाह रे आत्मा कमाल तो तेरा है । भगवान तो एक पदार्थ है, शुद्ध है, अकेला रह रहा है । भगवानका जो अतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मोका उदय कारण था । जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ । अतिम समयमे जो मिला उस शरीरमे आत्मा थी । पहले तो यह हुआ था कि आत्मा फैलता है तो कर्मके कारणसे, आत्मा सिकुडता है तो कर्मके कारणसे । जैसे कर्मोका उदय है उस ही प्रकारका आत्मामे सिकुडना और फैलना होता है । अब अतमे शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए ? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बडा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए ? यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यो बडा बनाओगे और यदि छोटा बन जाय तो क्यो बनाओगे ? यह बडा और छोटा तो कर्मोदयके कारण हुआ करता है । जब नामकर्मसे मुक्त बन रहे है तो न फैलनेका कारण है और न छोटा बननेका कारण है । इसी तरह सिद्ध भगवान जिस शरीरको छोडकर मुक्त होते हैं वह जितने प्रमाणमे थे उतने प्रमाणमे उनके प्रदेश रह जाते हैं ।

मैं एक शुद्ध निराला पदार्थ हू । जैसा स्वरूप भगवानका है तैसा ही मेरा है । तो जैसा उनका स्वरूप है तैसा ही मेरा है, अब वह रग नही बदलता है । देखो यह स्वरूपकी भक्ति है । यह प्रभुकी भक्तिमे ऐसा दीखता है कि यह प्रभु क्या है ? हम जो हैं सोई रह रहे हैं । जैसा स्वरूप है तैसा सिद्धका विकास हो गया । अब प्रभुमे रगबाजी नही चल रही है । क्षणमे कुछ, क्षणमें कुछ, ये लीलाएँ ससारी प्राणी रचा करता है, पर मालूम पडता है कि ये प्रभु प्रभुताकी ऐसी विचित्र लीला करके थक गया है इसलिए प्रभुने लीलाए बद कर दी है । यहां देखो वाहरे संसारी प्राणी ! तेरा ले थकनेका काम ही नही है । तू तो अनेक कल्पनाएँ करता है, समागम करता, सयोग वियोगके विकल्प तथा अनेक कर्मण्यतायें करता है । आजसे ५० वर्ष बाद तू किस योनिमे रहा होगा ? वहाँ क्या कोई कम कल्पनाए थी कि यह घर-द्वार मेरा है, यह धन वैभव, कुटुम्ब परिवार मेरा है । और अब यहाँ क्या कल्पना करने लगा ? जब मैं यहाँसे जाऊगा तो यह कल्पनाएँ रहेगी क्या ? कितना श्रम कर यह ससारी कार्य कर

रहा है । तू कितना कर्मठ बन रहा है—विकल्प निरतर विकल्प, यह छोडा वह छोडा । अरे यह क्या है ? यह सब सासारिक आपदाएँ है । जैसे किसी बडे सग्राममे बडे सिपाही को चैन न हो, छिप-छिपकर खेल खेलकर गोली चलाये, दौडे भागे । इस प्रकारसे दुनियाके लोग श्रम कर रहे है । इसी तरहसे यह प्रभु इस ससारमे नाना खेल कर रहा है । आँख मिच गई कि आगे उसका कुछ पता नही । आगे गया और ढगका बन गया और आगे बढा तो कल्पनाए करके और ढगका हो गया । क्यो कल्पना करके दुःखी होना ? कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो । क्या है इसका ? मगर कल्पनाए इतनी बडी बना लेता है । सो हे प्रभु ! आपने भी यह सब भारी काम किया । बडी कर्मठतासे ८४ लाख योनियोमे चक्कर लगाए । अनेक लीलाए खेली । अब मालूम होता है कि उन कलाओसे तू थक गया है और थक करके ही अब तूने उन अपनी लीलाओको छोड दिया है ।

हे प्रभु तुम शुद्ध पदार्थ हो, शुद्ध आत्मा हो । अरे अशुद्धिको मेटा तो शुद्ध हो गये । अशुद्धि मेटा तो उसका परिणमन अच्छा हुआ है । क्या गजब हो गया, हाँ महान् जरूर हो, यहांपर क्या स्त्री, बाल बच्चे हो गए । अरे हो गए तो इनसे तुम्हे क्या मिला ? वे तो तुम्हारे हैं नही । उन्हे तो छोडके ही जावोगे । उनके लिए ही सब कुछ किया, सारा परिश्रम उनके लिए ही किया । उनसे तुम्हे क्या मिला ? लाखो और करोडो रुपयोका धन उनके लिए जोडकर भर दिया । अरे वह कुछ साथमे तो जाता नही, फिर क्यो इतना माया मोहके चक्रमे फंस रहे हो ? इस तरहसे यह प्राणी माया मोहमे रहकर ही थक जाता है, अपने आत्मस्वरूपको भूल जाता है और बरबाद हो जाता है । इन बाह्यपदार्थोंमे कहाँ सुख है ? सब बाह्यपदार्थोंको ही देख रहा है, परसे ही सुखकी बाते सोच रहा है । अरे यह बाह्य सब झंझट है । अपनी दृष्टिको ठीक-ठीक अपने स्वरूपपे ही डालो तो झंझट तुम्हे नही मालूम पडेंगे । प्रभु पूज्य अवस्था तो यह तुम्हारी ही है । इस प्रभुने जैसा आनन्द किया है वैसा ही आनन्द इस मेरी प्रभु आत्मामे भरा है । बस अशुद्धि मेटने लगो, मिल जायगा । जैसे पैरके आगे पैर रखकर चलें तो हम मजिलपर क्यो नही पहुचेंगे ? चलनेसे ही हम आगे पहुचेंगे और बैठेसे हम बैठे ही रहेंगे । यदि तूने बैठने का ख्याल किया तो बैठा ही रहेगा और यदि चलने का ख्याल किया तो आगे बढ जायगा । अपने भगवानके पास कैसे नही पहुचोगे ? अरे पैर भी थक जावें तो सोचो कि अभी मेरे पास ही तो है । यदि थक भी जाओगे तो हिम्मत तो बनी रहेगी । इसी तरह अशुद्धको मिटा दो अभी यह काम बन जायगा । मोक्षमे पहुचनेके लिए कोशिश करो, परमार्थ देखो, उसमे रुचि जायगी । जैसे कोई काम करता है, हलुवा बनाना सीख रहा है तो उसमे उसकी रुचि होती है, उत्साह होता है । इसी तरह शुद्ध हो रहो, आनन्द हो रहा हो, दर्शन हो रहे हो, उस अपनेके निकट पहुच रहा हो तो उसमे

उसकी रुचि बढेगी, उसका उत्साह बढेगा।

कोई घटना ऐसी आ जाय कि जिसमे हजार पांचसौ मिलते हो, मगर उसमे झूठ या अन्याय करनेकी नौबत हो। उस समय सच्चा निर्णय करनेके लिए दिल बना रहे। झूठ न बोले, सच्चाईमे उसका दिल बना रहे और यह देखो कि हजार पाँच सौ जाते है तो जाने दो। उन हजार पाँच सौ जानेसे भी बडा आनन्द मानो। और यह बात मानो कि मुझे बडी प्रसन्नता है। उसने अपनेसे अशुद्धिको मिटाया और जो शुद्ध है उससे ही प्रसन्न हुआ। तो भैया, सतोष की बात तो यही है। इसी प्रकारसे अशुद्धियोको बाहर करते करते वह मजिल निकट आ जायगी और ज्यो ज्यो अपनी मजिल निकट आती जायगी त्यो त्यो सतोष बढता जायगा तथा आनन्दका अनुभव होगा।

एक मुसाफिर था। वह पैदल यात्रा करते हुए जगलमे रास्ता भूल गया। शामका समय था, दो तीन मील जाकर भूल गया था और पगडडियोसे चल रहा था? एक घन्टा हो जानेके बाद वह सोचता है कि यदि मैं और आगे बढता ही चला जाऊगा तो पता नही कितना भूल जाऊ, और फिर मुझे भूल निकालनेका मौका भी नही आये—ऐसा सोचकर वह रुक गया और वही रात व्यतीत करने का निश्चय कर लिया। पर चिंता लगी हुई है कि मैं कितना भूल गया? अब मुझे कहाँसे जाना है, कहाँ रास्ता मिलेगा? इसी भूलमे पडा पडा वह देखता है कि एक क्षणिक बिजली चमकी। उसने देख लिया कि सामने सडक है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह नि शक हो गया। ऐसा नि शक होकर वह सोचता है कि मैं रास्ता भूल तो गया हू पर इतनी ही भूलमे पडा हू। यह भूल यो ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सबेरा हुआ तो सामने देखा कि थोडी दूरपर सडक है, सडक पर लोग चल रहे हैं। वह भटक गया था, पर सतोष किए हुए था। इसी प्रकार यदि ज्ञानी विषयोमे भटककर अपने ज्ञानको भूल गया है तो कुछ भी विवेक हो तो वह इस भूलको न बढायगा, रुक जायगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाई को लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शनका मार्ग है जिसपर हमे चलना है। देखो भूलका मिटना व ज्ञानका होना दोनो एक साथ होते हैं। इसमे ज्ञानका तो उत्पाद है और अज्ञानका व्यय है। यह सब धर्मपालन एक इस आत्मापर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयगा? हाँ आनन्द भी इस आत्मामे आयगा। आनन्द तो आत्माका स्वभाव ही है। जब भूले हुए पथिकको ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढता है कि अब मैं अपनी भूलसे उऋण हो रहा हू, मैं अपने सही मार्गमे जा रहा हू। अब वह ऐसे उत्साहसे चलता है कि जो पगडडियाँ सडकसे मिला देंगी उन्ही पगडडियोसे समझकर चलता है। अब सडकपर वह मुसाफिर पहुच जाता है तो उसे बडा सतोष होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्दमे बहता चला जा

रहा था। जहाँ जाना था उस स्थान पहुच जाता है। पहुँचकर वह विश्राम करता है। अब बिल्कुल निश्चित हो गया। इसी तरह जगतका प्राणी अज्ञानके अधेरेमे विषयकषायोकी गलियोंमे भटक गया, वह अपने को भूल गया है। इस भूलमे बढनेसे बढ़कर भूल हो जाती है तो वह सोचता है कि इस भूलमे बढे मत, नही तो जितनी भूल बढ जायगी उतना ही वापिस होनेमे कठिनाई पडेगी। विषयकषायोमे मत फसो। तुम निर्णय कर शातिका मार्ग ढूढो। बस इसीमे प्रेम करना भक्ति होता है। यदि तूने विषयकषायोंसे अपने को दूर रक्खा और शांतिके मार्गका पता लगाया तो तुझे सतोष आयेगा, भक्ति आयगी। तो इन साधनोंके बीच रहते हुए कभी अंतरमे बिजली चमकती है तो निर्मल अवस्थाका अवलोकन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपका निर्णय करता है। शांतिका मार्ग यही है। इसी तरहके मार्गसे जो आप चलना चाहे तो मोह और विषयोंमे जो लग रहे हो उसको भूलकर सही मार्गका पता लगावो। जब उस सही मार्गका पता लगा लोगे तब तुम्हे शाति प्राप्त होगी, सतोष प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलोमे पड जाता है, विषयोंमे पड जाता है तो सतोष नही प्राप्त होता है। यदि अपनेको भुलावेमे डाल लिया तो शांतिका असर उसके दिलमे नही होगा। यदि वह ज्ञानसे अच्छे मार्गमे आ जाता है तो वह सतोष प्राप्त करता है, क्योकि उसे भूलका पता लग गया।

यह स्वभावमात्र वस्तु हू, अन्य पदार्थ अपने अपने सत्तामात्र है। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नही है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे हे उसकी शांति खतम हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और ससारके जन्म-मरणके चक्रमे फसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे सतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमे कमलका पत्ता पडा हुआ है, पानीसे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न हे, पानीका पत्ते पर कुछ असर नही, पत्ता गला है या सडा। उसमे तो पानी घुसता ही नहीं है। पत्ता तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो पत्ता सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नहीं है। घरमे रहते हुए भी घर वालोका उसपर असर नही है। वह सदा सुखी रहता है। जो बाह्य पदार्थोंसे सतोष प्राप्त करता है वह इस भूले जगतसे हट जावे और अपने निज स्वरूपसे ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगतके मोहमे पडकर भूल गए है वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर सतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावे। जिस प्राणीको आत्म-सतोष प्राप्त करना है, आनन्द-मग्न हो जाना है उसे सारे आरम्भ परिग्रह त्यागने होगे। और उसे कुछ काम करना नहीं है। यदि यह महान् पुरुषार्थ किया, सन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह [illegible]

जगतमे आनन्दमग्न हो जाता है । अशुद्धिको दूर किया और शुद्धको प्रकट किया तो यदि इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुच जायगा । अपने आपको यदि अशुद्धिमे रक्खा तो विकारयुक्त होकर उसे असतोष हो जाता है ।

हे प्रभु, तुम कोई बडी गजबकी वस्तु नही हो । जानता हू कि तुम अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमे अपनेको ले गए हो । हैरानी की बात कुछ नही है गजब कुछ नही है, किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान है । कैसी अद्भुत शक्तिका विकास है ? इस अपने आपको देखनेमे भक्ति है और बातोमे भक्ति नही है । यह भगवान है, बडा है, बलशाली है इत्यादि बातोमे भक्ति नही है । मुझे तो कुछ गजब ही नही दीख रहा है कि भगवान कोई गजबकी चीज है । जैसे बिरादरीमे कोई धनी है । कैसा भी हो, बिरादरीका ही तो है । उसे कोई धनी नही दीखता । यहाँ हम बैठे है वहाँ वह धनी आदमी बैठा है । हम दोनोमे कोई अतर नही दीखता है । तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर, जो तुम्हारे बगलमे बैठे है वे तुम्हे गजबका काम करते हुए नही दीखते है । अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है । जैसी वस्तु वह है तैसी ही मैं हू । उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गया, ज्ञानकी ओर दृष्टि हुई, ज्ञानमात्र हो गए, पर प्रभुमे गजब कोई नही दीखता है । अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दीखता है । क्या है, कैसे हो गया ? बडे गजबकी बात है, बडा अजब बना है । भगवान कोई और ही चीज हुआ करती होगी, ऐसे देखने लगते है, अरे हैरानीकी चीज नही । भगवानकी अशुद्धि मिट गई, विकार मिट गए । वह तो वहीके वही हैं । पर हे जगतके प्राणी ! महत्ता तो तुम्हारी है । तुम्हारमे बलशाली ज्ञान भरा हुआ है । उस अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमे लगा रहे हो और अपने परिणामोको अनतरूपोमे बना रहे हो । हे प्राणी, अपने ही परिणामोसे अपनेको अनन्त योनियोमे डाल रहे हो । कही कीडे मकोडे बन गए, कही पेड बन गए, कही कुछ बन गए, कही कुछ । इस प्रकारसे जन्म-मरणके चक्रमे डाल लिया । इसलिए हे प्राणी गजब तो तूने किया है ।

यदि तू अपनेको अनन्तरूपोमे न माने तो समझो कि ज्ञान आ गया । यदि केवल एक ही ज्ञानका प्रताप तुझमे पडा हुआ है तो सारे क्लेश दूर हो जावेंगे । हे प्रभो, आपके ज्ञानमे इतनी शक्ति है कि तीन लोकके समस्त पदार्थ आपके ज्ञानके एक कोनेमे पडे रहते हैं । यदि प्रभुके ऐसे विशाल ज्ञानका आदर है तो मेरे मनमे उनकी महानताका आदर है । मैं भगवानमे गजब कुछ नही देखता हू । विकार हट गए, पवित्रता आ गई—ऐसी दृष्टिसे वह ज्ञानी पुरुष हो गए । जिनकी दृष्टि प्रभुताके निकट विराजमान हो गई—उनके ज्ञानमे अनन्त बल है । जो बल उस भगवानमे है वह अन्य प्राणियोमे भी हो सकता है । अरे यदि मेरेमे ज्ञानबल नही है, पवित्रता नही आ गई है, विकाररहित नही हो गया हू तो इससे मेरी पराजय है । यदि

मुझे अपना भान हो गया है तो जब चाहू भगवानसे मिल सकता हूं। इस ज्ञानी पुरुषका वह भगवान अत्यन्त निकट है। अन्तरदृष्टिमे देखो तो वह विराजमान है। शुद्ध प्रभु जैसी स्थिति मेरेमे भी हो सकती है। इसमे कोई संदेह नही है। आत्मा तो दर्शन, ज्ञान, सुख, शक्तिका पिंड है। इस ज्ञानमे कोई सीमा नही है। हमने अपनी अज्ञानतासे ही इसमे सीमा डाल दिया है। वह अज्ञानकी मेड बीचमे पड जाती है इससे हमे क्लेश होते रहते है। मै अज्ञानकी मेड को तोड डालू। बाह्य पदार्थोमे दृष्टि लगानेकी मेड तोड़ दी जाय तो सारा हो जायगा ज्ञान, एक असीम हो जायगा, इसकी सीमा खतम हो जायगी। अरे अपने आपके शुद्ध अशुद्ध स्वरूप को और वीतराग बुद्धिके विकासको तो देखो। मै वह हू जो है भगवान। जो मै हू वह है भगवान। जलका स्वभाव और निर्मल जलमे कोई अतर है क्या? निर्मल जल पहिचाननेमे झट आ गया और जलके स्वभावमे दिमाग लगानेका काम है। जैसा निर्मल जल मुझे मालूम पड रहा है वैसा ही जलका स्वभाव भी पडा हुआ है। उस कीचड वाले जलमे जल भी निर्मल है, कीचड मिला हुआ है, पर वह जल स्वच्छ है, निर्मल है। इसी प्रकार ससारकी नाना स्थितियोमे पडे हुए इस मलीन आत्मामे भी स्वभाव वही है, वैसा ही स्वच्छ है। जैसा कि भगवान शुद्ध है वैसे ही यह आत्मा शुद्ध है। शुद्धिके विकासमे कोई अन्तर नही है। इसी प्रकार प्रभु अनत ज्ञान दर्शन और अनत शक्तियोका पिंड है। इस ज्ञानके विकासके लिए सामर्थ्य तथा अतरदृष्टि इत्यादिकी आवश्यकता है। अपने को अपने सही रूपमे निरखकर स्वय ही अपनेमे शांतिका मार्ग प्राप्त करें।

स्वरूप न सूझना और विषयकषायोमे ही उपयोगको बनाए रहना यह बडा अधकार है। यह अधकार अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है? पदार्थोका जैसा स्वरूप है वैसा न मानना अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, अपनी-अपनी सत्ताको लिए हुए है, अपने ही सत्से परिणमते है, किसीका किसीमे प्रवेश नही है। इनके खिलाफ ऐसा समझना कि मैं अमुक वस्तुको कुछ कर दूंगा या अमुक मेरे लिए कुछ कर देंगे। इस प्रकार स्वतन्त्रता के खिलाफ विकल्प करना यह अज्ञान है। पदार्थ अपनेमे ही उत्पाद करते है, अपनेमे ही अपनी अवस्थाको विलीन करते है। और खुद ब-खुद सदा बने रहते है। जैसे एक अगुली है अभी सीधी है। इसको टेढी कर दिया तो टेढी बन गयी। वह अगुली उस टेढी अवस्थामे उत्पाद वाली हुई और सीधी अवस्थामे उसका व्यय हुआ यानी सीधी अवस्था विलीन हो गई। और अगुली वहीकी वही बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूपमे अपनी अवस्थाका उत्पाद करते है, अपने ही स्वरूपमे अपनी ही अवस्थाका व्यय करते है और अपने ही स्वरूपको बनाये रहते है। इसे कहते है त्रिगुणात्मक पदार्थ। पदार्थोमे यह तीन गुण भरे हुए है। प्रथम अवस्थाका उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्थाको विलीन करना, तृतीय वह खुद-

व-खुद बनी रहे—ये तीन बातें पदार्थमे सदा चलती हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येकसे अलग है। जो खोटा रूप भी परिणमना है वह भी खुद ही परिणमता है। दूसरा उसके साथ मिलकर खोटा रूप नही परिणमता है। पर दूसरे पदार्थ, जिसका निमित्त पाकर खोटे भाव होते है उनके सम्बन्धमें ऐसा मानना कि वे ही करते है इसके माने अज्ञान है। जो पदार्थ जिस रूप मे हैं उनको वैसा न समझना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञानके कारण विषयोका अधेरा समझमे आ जाता है। वस्तुकी स्वतन्त्रताका उपयोग करके जो वास्तविक आनन्द आता है तो उसमे आकुलता नही रहती है, उसमे परिणमन नही रहता है और अज्ञान रहता है, एकका दूसरेके साथ सम्बन्ध माननेकी बात रहती है। तो ऐसी स्थितिमे विषयोको लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थोंमे खपना प्राकृतिक बात है। यह बडा अधेरा है। विषयोसे प्रीति होना यह बडा अधकार है।

विषय ६ प्रकारके होते है—स्पर्श, रस, गध, वर्ण शब्द व सकल्पविकल्प। इन ६ प्रकारके विषयोमे रति होना यह अधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अधकारमे हैं या उजेलेमे है। स्पर्श विषयमे मुख्य तो वेद सम्बन्धी विषय है, फिर स्निग्ध रूक्ष ठडा गर्म आदि जो ८ प्रकारके स्पर्श हैं वे है। स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, कडा नर्म, हल्का भारी ये ८ प्रकारके स्पर्श स्पर्शन इन्द्रियके विषय है। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमे बहते ही रहते है। गर्मी लगती है तो ठडी चीज चाहिए, ठडा नही बना रहता है तो हवाकी जरूरत है, ठडी लगती है तो गर्म चीज चाहिए इत्यादि। यह सब स्पर्श इन्द्रियके विषय हैं। नर्कमे रहने वाले अन्य पशु-पक्षियोमे हो तो क्या यह सहज न कर लिया जायगा ? हम ही गरीब हो तो क्या इतनी ठडी गर्म न सह लेते ? रसना इन्द्रियका विषयमे मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसनाइन्द्रियके विषय है। ससारके प्राणी कैसे इन रसोमे रत होते है ? कितनी तरहके व्यञ्जन बने, कितनी प्रकारके खानेकी चीजोका आविष्कार हुआ, जिनका नाम लिया जाय तो ३००-४०० नाम हो जावें। खानेकी चीजोके नाम हम कहते है और वस्तुओके नाम हम नही कहते है, फलोकी बात नही कहते है। भोजन बनाये जाते है तो कितनी तरहके बनते है, मिठाइयाँ बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवें बनती है। यह सब क्या है ? रसनाइन्द्रियके ही विषय है। सामने मिठाइयाँ, सेव रखे हैं, दाल-रोटी रक्खी है। दाल-रोटी रक्खी है तो कोई दाल—रोटीमे ही सतोष कर ले तो समझो विजय है। वस्तुओको देख लिया तो चख लिया, स्वाद लिया, यह सब क्या है ? यह सब रसनाइन्द्रियके विषय हैं। रसनाइन्द्रियका जो विषय है वह भी अधकार है।

एक अगुल दो अगुलकी इस नाकको खुश करनेके लिए कितने प्रकारके सुगधित तेल हैं, कितने प्रकारके पुष्प है ? इन सुगधित पुष्पो तथा तेलोसे इस नाकको खुश करते हैं। कही

फूल या इत्रका फोवा नाकमें खुसा है, कही कानमे खुसा है, कही इत्र लगा दिया, कही अन्य कोई सुगधित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा दिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। ये सब रसनाइन्द्रियके विषय है। विषय सेवते-सेवते भी सतोप तो नही आता। जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ, इत्र है तो उसको क्या हुआ ? यह सब अधकार है। विषयोका रस सुहाया, यह अधकार है और इस अधकारमे ही चुलबुल करता हुआ यह जगतका प्राणी छिन्न-भिन्न बरबाद होता रहता है।

चक्षुइन्द्रियका विषय देखो। नेत्रोने एक एक अगुलमे नए-नए खेल देखा तो मन बढ़ गया। जो कुछ देखा वह वहीका वही है और खुद वहीका वही है, पर जो कुछ देखा उससे मोह कर लिया। इस मोहके कारण वह दु.खी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमे कुछ है क्या ? किसीका रूप देखा तो है क्या वह अपने शरीरमे देख लो ना, शका हो तो अपने शरीरको तोड-फोडकर देख लो। बरसातके दिन है तो शरीर अपनेको नही सुहाता। गर्मीके दिन हुए तो शरीर व कपडे नही सुहाते। कपडोके साथ ही साथ शरीर भी नही सुहाता है। और भी जीव पदार्थोंको सुन्दर-सुन्दर रूप, ड्रेसैज, आकार तथा अन्य नई-नई कमीजें वगैरा बनाना, नई-नई डिजाइनोका बनाना, कही कुछ बनाना, कही कुछ बनाना। यह सब क्या है ? यह सब चक्षुइन्द्रियके विषय हैं। नेत्रइन्द्रियके विषयमे यह रत होता रहा है, पर यह यही तो बनेगा। गुरुजी सुनाते थे कि सागरमे एक कान्सट्रेबिल था। वह वेश्यामे आसक्त था। जो कुछ धन–दौलत उसके पास थी, सब वेश्याके पास पहुच गयी। वह अब बडी अवस्थाका हो गया था। अब धन तो वेश्याके पास आ गया। अब उसे क्या परवाह है ? वह अपने घर न आने देवे उस सिपाहीको। कान्सट्रेबिल उसके घरके सामने ही रात-दिन पडा रहा। किसीने पूछा—भाई साहब, तुम यहाँ क्यो पड़े रहते हो ? कहा—पडा रहता हू इसलिये कि रात-दिनमे कभी तो घरसे बाहर निकलेगी ही, देख लूंगा। हाय, हाय, क्या मिल गया ? रात-दिन पडे रहे। वह पदार्थ अपनी जगहपर है, आत्मामे आत्मा है, शरीरमे शरीर है। जो जहाँ है तहाँ ही रह जाता है, हाथमे कुछ आता नही है। यह क्या ? यह नेत्र विषयके रूपोका अधकार है।

कर्णका विषय देखो—कितनी तरहके राग है, अभी कोई शब्द सुन्दर गायन हो तो यह सगीन सुनने चला कि कुछ सुन लें। देहातोमे रद्दी अलाप होते है उनको सुननेकी भी इच्छा होती है। सपेरा बीन बजाता है वह भी सुहाती है। हर तरहके जो सुहावने शब्द सुनाई पडते है वह भी सुहाते है। यह क्या है ? यह कर्णके विषयोकी रति है। यह विषयोका अधकार है। मनको देखो उसका विषय सबसे बडा है। मन चाहता है कि इतना धन रहे, इतना वैभव रहे, किसीसे पीछे न रहू, आगे बढ़ू। यह सब मन सोचता रहता है और ये ही

विकल्प जन्ममरणके चक्रमे डालनेके मूल कारण है। जैसे कलकत्ताको सोच ले तो सोचनेमे देर नही लगती है। एक मिनट भी नही लगता, आधा मिनट भी नही लगता, एक सेकेण्ड भी नही लगता। मनने इच्छाएँ की कि हमे फलाँ चीज खाना है, फला चीज पहनना है तो यह सोचनेमे देर नही लगती है। यह है मनका विपय और जो पञ्च इन्द्रियोके विषय है वे भी मनके विषय बन गए। यह मन वालेके विपय तो पचइन्द्रियोंके विषयमे भी मनके साथ सदा चला करते है। ऐसे जो विषयोमे अधेरा है जो कि अज्ञान स्वभावसे उत्पन्न होता है उस अधकारको नष्ट करके अपने आपको सुखी करूँ। इस अधकाररूप अज्ञानको दूर कर ज्ञानके द्वारा इस कर्मको जलाऊ। कल्पनाएँ करके दु खी हो गया और फिर कल्पनाए ही करके सुखी हो गया, आत्मध्यानसे आनन्दमय हो गया। न कुछ लेना पडा, न देना पडा, न कुछ खट-पट पडा, न मुसीबत पडी, केवल अपना ध्यान बना लिया सारे दु ख मिट गए।

देखो दु ख तथा सुखमे है क्या ? केवल कल्पनाए बना लेते है। मैं इन कलकोसे रहित, विषयकषायोके बन्धनसे रहित शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव करू और अपने शुद्ध ज्ञान तत्त्वमे रमकर इन कर्मोको जलाऊ। यही ज्ञानावरणादि कर्म आत्माके साथ रम गये है। ये कैसे दूर होगे ? इसका उपाय केवल यही है कि सबसे निराला, शुद्ध ज्ञानमात्र अपनेको पक्का जानू। तो उपयोग बनानेका यह काम हो सकेगा तथा यह कर्म बाहर हो जाते है। शुद्ध स्वभाव वाला मैं प्रैक्टिकल हू तो कर्म बाहर हो जाते है। केवल बोलीके सुननेसे, बकनेसे कर्मोमे असर नही होता। जितने भाव बने है शुद्ध अशुद्ध उन भावोसे असर कर्मोमे होता है। यदि शौकसे नाना ज्ञान सीखे तो यह तो मनका विषय बन गया। पर विपयकषायोमे फर्क है। इस मनके विषयके भीतर आत्मनिर्णयकी भावना साफ है। और दुनियाके विपयोमे केवल मनको बुरा लगानेकी बात है। इतना ही अन्तर है। तो इन सब विपयकषायोकी तरगोंसे परे जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्व है उस ही रूप अपनेको मानो, ऐसा ही उपयोग बनाओ। बस यह ही कर्मोंको बाहर करनेका उपाय है। कर्म और तरहसे अलग हो नही सकते। धर्म भी करें, पूजा भी करें, भक्ति भी करें, दान भी दें, सब कुछ करें, मगर जितने अशमे भाव निर्मल है उतने अशोमे काम हो रहा है। इसी कामके होनेसे सब कुछ मिल सकता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये तीव्र कैसे होते है ? अधिक क्रोध किसे कहा जाय ? पदार्थोकी बातमे क्रोध बढे उसे अधिक क्रोध कहा जाय। धर्मके कामोमे क्रोध बढे तो तीव्र क्रोध है। धर्मधारणा करके क्रोध बढे, जैसे मुझे किसीने छू लिया उसे हम कन्टावमारें कहे क्यो छू लिया ? अभी हम स्नान करके आए। धर्मका कार्य समझते हुए भी उनमे क्रोध करना तो यह तीव्र क्रोध हुआ। धर्मके इस प्रसगमे क्रोध साफ हो जाना चाहिए था, क्रोध तीव्र कैसे हो रहा है ? धर्मधारण हो तो क्रोध ठहरेगा नही। मानकी बात भी देखो—

यह आत्मा ऐसी है कि धनके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है, यह तो हुआ उसका घमड। गरीबसे धनी हो रहे हैं, धनको और जोड़ना चाहते है। एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जताता है। यह अधिक घमड हुआ। धर्मके काममे छल कपट करना तीव्र माया है। धर्मके काममे लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बीचमे बीमार हो जाय। पाँच सौ रु० मासिक उसमे निकल गए। ६ मास पडे ही रहे। यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है। अपने बच्चेके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे। उसमे भी मोह है। किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमे। लोभ परिवारमे हो जाता है। जितना भी करते है वह सब अपने परिवारके लिए करते है। वह अपने परिवारके लोगोको ही सर्वस्व समझते हैं तो य धर्म नही हुआ। इसमे लोभ है।

हे आत्मन्! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्दस्वभावको देखो। एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है पर पिताकी आज्ञाका पालन नही करता है, पिताके भीतर होने वाली इच्छाओका आदर नही करता है। और एक पुरुष वह है जो अपने पिताका गुणानुवाद नही करता और पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए वह तैयार है। तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है? पुरुष वही अच्छा है जो पिताको गुणानुवाद तो नही गाता है, परन्तु आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानकी १० बार पूजा करता है, भगवानको हैरान कर डालता है और एक ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरण मात्र कर लेता है। शुद्धस्वभावका ध्यान करता है और भगवानका हुक्म मानता है। तो बताओ कौन अच्छा है? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म माने। भगवानका हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो। अब सोचो मै इस अज्ञानसे उत्पन्न होने वाले अधकारको नष्ट कर ज्ञानमात्र आनन्दमय अपने आपको देख करके ध्यानरूपी अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊ और निष्कलक होकर अपने आपमे अपने आप सुखी होऊँ।

यह रागादि भाव अज्ञानीको बडी पीडा दिया करते है। ये पीडा देते है तो दें, कब तक देंगे? यह तब तक ही पीडा देंगे जब तक कि मै ज्ञानसागरमे डूब न जाऊ। यह कर्म तब तक जीवोको सताते है जब तक कि वे ज्ञानसागरमे नही डूब जाते। जैसे धूपसे पीडित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक ज्ञानसागरमे वह डूबता नही। जब तक ज्ञानमे ज्ञान नही प्रवेश करे तब तक सतोष कैसे उत्पन्न हो सकता है? जब तक ज्ञानसागरमे डूबे रहे तब तक रागादिसे सताप नहीं हो सकते। ज्ञान दो किस्मके है—एक आत्माका ध्यान, दूसरा परवस्तुवोका ध्यान। परवस्तुवोकी कल्पनाओसे दुःख होता है और अपने स्वरूपका ध्यान करने

से दु:ख दूर हो जाते है। लेना देना कुछ नही है, केवल परिणामोकी बात है। सुख होना, आनन्द होना केवल भावोके परिणामकी बात है। देखो इतनी बडी समस्या, इतनी बडी प्रौबलम केवल एक विचार-परिवर्तनसे ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती। कम धन होनेसे दुःख होता है, रोजिगार करते है, यह करते है, वह करते है, कितने ही यत्न करते है पर उससे यह समस्या हल न होगी। घर आदिकी समस्या बाह्य सचयसे हल न होगी। लडकोको सगमे रखना, कुटुम्बको बाँधकर रखना, परिवारमे रहना, इन सबसे घरकी समस्या हल नही होगी। किसीसे भी अच्छा बनें, बुरा बनें, कुछ भी कर लें, पर यह समस्या हल नही हो सकती है। इस समस्याका हल विकारके तिरस्कारसे तथा स्वभावके दर्शनसे होगा। स्वभावदर्शन क्या है? जैसे खुदका स्वरूप है तैसा ही उपयोग बन गया यही स्वभावदर्शन है, इसीसे सब समस्याए हल होगी।

कैसा है यह अपना स्वरूप? पहले तो सबसे निराला, किसीसे मिला-जुला नही, अपनी स्वतत्र सत्ता रखने वाला, अपने आपके स्वभावको अपने आपके अस्तित्वमे लिए हुए है। वह भाव मात्र है। उसमे कुछ खटपट नही, उसमे कोई झझट नही। इस मुझमे लेनेके देनेके दूने नही मिलेंगे। मै केवल भावमात्र हू, ज्ञानभावमात्र आनन्दमात्र हू, सबसे निराला हू, ज्ञान और आनन्दमात्र हू। रच भी दूसरे पदार्थोके साथ सम्बध नही है। मगर जहाँ मोह उठता है तो वह साराका सारा कैसा मालूम पडता है? यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, ऐसा उछल-उछलकर रहता है। विपदाओका कारण यह मोह ही है, नही तो मैं आनन्दानुभव वाला तथा जो सबसे निराला हू आत्मा स्वय ज्ञानघन है, आनन्दमय है पर मोह ऐसा गदा विष है कि अनहोनीको होनी बना देना चाहता है। मोह ही तेरे दु:खका कारण है। दूसरा तेरा दु:खका कारण क्या है वह बतला? अरे दु:खका कारण दूसरा नही। यह मोह ही दु:खका कारण है। यह मेरा है, यह उसका है। यह क्या है? यह मोह ही तो है। अरे यदि यह मोह हट जावे तो दु:ख भी हट जावेंगे। ये सब यहीके यही रह जावेंगे, जिनमे तू मोह कर रहा है वे भी नही रहेगे, तू भी नही रहेगा। रहेगा तो केवल हमारा स्वरूप ही हमारे साथ रहेगा। यदि तू अपने इस शुद्ध स्वरूपका उपयोग बना ले तो तेरे साथ यह स्वरूप सस्कार रहेगा। रागादि भाव पीडा देते है तो दे। अरे यह पीडा ही क्यो देंगे? यह तेरेको तभी पीडा दे सकते है जब कि तू ज्ञानसागरमे डूबकर प्रवेश न कर जाए। तू जिसको जान रहा है उससे ही तुझे दुःख होते है। अरे तू इनको न जानकर अपनेको जान। परिवारके छोडनेका क्या दु:ख? अगर परिवार ज्ञानमे लीन हो गया तो क्या दुःख होगे और अगर तेरा ज्ञान याने तू ज्ञानसागरमे डूब गया तो सुखी रहेगा। दुःख तो तुझे तब होंगे जब तेरा लगाव, तेरा मोह उनसे होगा। जैसे कहावतमे कहते हैं कि तुम्हे आम खानेसे काम कि

पेड गिननेसे । तुझे आनन्दसे काम है या लडको बच्चोसे काम है । तुम्हे यदि लडको बच्चोसे आनद मिलता है तो उनसे ले लो या अपने आपसे मिलता है तो अपने आपसे ले लो । आनद तो इस आत्मामे है । यदि आत्मामे ही दृष्टि रहे, आत्मामे ही झुकाव रहे तो सुखी रहेगा । और दुःख तो तब है जब तेरा झुकाव परमे होगा, मोहमे होगा, कुटुम्ब परिवारमे होगा । यदि तू अपने ख्यालको अपने कुटुम्ब, परिवारसे छोड दे तो दुःख कैसे होगा ? यदि अपना लगाव कुटुम्ब, परिवार, धन-वैभव आदिमे होगा तो तुझे दु ख होगे । देखो भैया ! बाहरी बातोमे क्या रखा है ? यदि तू धनी है तो ज्यादासे ज्यादा यह होगा कि दो-चार मोही पुरुष यह कह देंगे कि यह बहुत धनी है । करोडोका धन जोड लिया और उसका फल क्या मिला कि केवल दो-चार मोही यही कहेगे कि यह बडा धनी है । अरे तुझे तो पेट भरना है, और दो कपडा पहिनना है । इतना ही तो यहाँका काम है, इससे ज्यादा और कौन काम है ? तूने इतना श्रम करके, मिथ्या बन करके करोडोका धन एकत्रित कर लिया है और उसका परिणाम केवल इतना है कि दो-चार मोही यह कह देंगे कि वह धनी पुरुष है । इतना फल है, कितनी मेहनत की, रात-दिन चिंताए रही, विपदाए रही । यह चिन्ताए और विपदाए केवल इस प्रयोजनपर रही कि ये मोही पुरुष दो शब्द बोल दें । वह मोही ऐसे हैं जिन्हे अपनेका ख्याल नही है, जो गदे है, मोही है, ससारमे घूमने वाले है, ससारका पता भी नही है और ममत्वमे फसे हुए हैं । ऐसे दो चार व्यक्तियोके द्वारा उसे प्रशसा मिलती है इतना परिश्रम करनेपर ।

हे ससारके प्राणी ! तेरेमे अपनी बेसुधीकी ही भूल भरी रहती है, नही तो धर्मका मार्ग गृहस्थीको बिल्कुल सीधा है । अपनी दिनचर्यामे ६ घटेका काम करने को दिया है या ज्यादा से ज्यादा ८ घन्टे तक काम करो । अपनी दुकानमे इतना ही समय दो और जो कुछ पुण्यके अनुसार मिल जावे उसका ही हिसाब लगाकर व्यय कर सतोष प्राप्त करो । जो कुछ आमदनी हो जाय उसीसे सतोष रक्खो । चाहे चना नमक खाने भरको ही हिस्सेमे आवें उससे ही सतोष प्राप्त करना चाहिए और उसी स्थितिमे ही अपनी धुनको धर्ममे लगाना चाहिए । इतनी हिम्मत हो कि न्यायसे काम करेगा चाहे कुछ मिले अथवा न मिले । अपने सादे कपडे पहिनकर धर्मके गुणानुवादमे स्वरूपके ध्यानमे अगर मन लगाता है तो वह सुखी है । उसे चाहे खराब दिन भी आवें तो परवाह नही है । यह उत्साहसे कार्य करेगा व आनन्दमग्न होगा । यदि इन लटोरो घसीटोमे ही उपयोग बना रहा तो दुःख होगा । यह तो सब लटोरे घसीटे खचोडे है । इन सबमे तू अपना उपयोग न बना । नही तो तुझे दुःख होगे ।

यहाँ जो कुछ आया है वह सब मिट जायगा । यह मालूम होते हुए भी यह मोही प्राणी केवल उन दो चार मोही प्राणियोके दो शब्दोको सुनना चाहता है । उन्हीके खातिर

वह अनेक विपदाएँ सहन किया करता है, अपनेको पीडा दिया करता है। यह धनका राग उसे दु.ख देता है, उसमे क्लेश उत्पन्न कर देता है।

जैसे कोई बच्चा अपनी माँ के पास बैठा हुआ है। बच्चा अपनी माँ से यह कहेगा कि वहाँ चलो, वहाँ बैठे, वह लावो, इस तरहसे बच्चा कहता है और यदि माँ नहीं करती है तो बच्चा अपना मुँह घुमा लेगा, रोवेगा, जमीनमे लेट जायगा। केवल इतनी बातपर कि मेरी बात नही रही कि माँ ने कहना नही माना, माँ से वहाँ चलनेके लिये कहा—नहीं गई। केवल इतनी ही बात है। बच्चा न कुछ कल्पनासे कितना उपद्रव करता है? इसी प्रकारसे यह मोही प्राणी मायामे पडकर दूसरोसे दुश्मनी कर डालते है। अरे कौनसी बातका असर है जो दुश्मनी कर डाली? निजी चीज जिसे माना वह भी निजी नही, यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यो कर डाली तो यही कहेगे कि मेरी बात नही रही। ये रागादि विकार करके दु खी होते है। यह रागादिक विकार कब तक दु खी करेंगे जब तक कि ज्ञानसागरमे हम डूब जावे।

राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओके जीवन-चरित्रको देखते हैं कि जब तक इन्होने सन्यास नही धारण किया है, त्याग नही किया है तब तक ये दुखी रहे है, परन्तु अतिम जीवनमे उन्होने त्याग किया, सन्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उन्ही की महिमाका गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्माओका जीवन घरमे ही व्यतीत हुआ है तब तक उनकी कोई कीमत नही थी। परन्तु अपने अन्तिम एक चौथाई जीवनमे ही सन्यास धारण कर अपने जीवनको सफल बनाया। जब तक वे अपने घरसे न निकले थे, पालनेमे भूला भूलते थे तब तक उनके गुणोका गान न होता था, परन्तु जब अपने घरसे निकलकर सन्याम किया तो उनके गुणोका गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरेलू जीवन था उसके चरित्रके भी गुण गाये जाते है। इसी तरह तीर्थंकर भी जब तक अपने घरमे रहते थे तब तक उनके गुणोका वर्णन भगवानके रूपमे नही होता था। परन्तु बादमे चरित्र निर्मल हुआ, अपने आपमे रमे, अपने घर द्वार स्त्री आदिसे विमुख हुए और अपने जीवन को सफल बना सके, निर्वाण पधारे तब पुराना सारा जीवन प्रभुभक्तिकी पद्धतिमें आ गया। इस जगतके प्राणीका इतना जीवन गुजर गया और इतने जीवनमें बहुत सी बातें रहीं। उन उन बातोमे क्यो रोते है? अब इस अपने इतने ही जीवनको सभाल लें तो कल्याण है।

राजा बक पहले तो माँसभक्षी थे। अजन चोर आदि वेश्यामें आसक्त थे। अत्यन्त दुराचारी थे। बादमें उन्हे ज्ञान मिला। उस ज्ञानके कारण ही वह तर गए। अनेक लोग उनके गुण गाने लगे और कहने लगे कि देखो यह कितना मासाहारी थे और तर गए। बाद

मे उनकी महिमाका गुणानुवाद हुआ। उदयसुन्दर अपनी वज्रभानु स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त था। वह मोहमायामें अत्यन्त लीन था। वह रास्तेमें मुनिमात्रमुद्राके दर्शन करके विरक्त हो गया, तबसे ही उसके गुणोका गान किया जाता है। लोग बादमें कहने लगे कि वाह वह कैसे अशुद्ध थे और शुद्ध बन गए। अच्छा चरित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूपमे गुणानुवादमे आ जाते है। हे आत्मन्! तू अपने रागादिसे उत्पन्न दु.खोसे क्यो रोता है? तूने ही तो इन दु.खोको बनाया है। यह तेरे रागादि भाव तब तक तुझे पीडा देगे जब तक तेरी आत्मामे ज्ञान प्रविष्ट नही होगा। तू अपनी आत्मामे ज्ञान प्रविष्ट कर अपने आनन्दस्वरूपको निरख। इसीसे तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जावेंगे। यदि तुम्हे आत्मस्वरूपमे आनन्द मिलता है तो उसमे झुको और यदि दुनियाके परपदार्थोसे आनन्द मिलता है तो परपदार्थोमे झुको। यदि तू अपने निजस्वरूपसे आनन्द प्राप्त करेगा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा और शाति मिलेगी। पर यदि बाह्य पदार्थोसे आनन्द प्राप्त किया तो उसमे अशाति ही अशाति रहेगी। जिस काम मे दो-चार वर्ष तक टोटा ही टोटा रहे उसको बुद्धिमान व्यापारी बदल देता है। इस बाह्य आनन्दमे ही यदि तू पडा रहा तो शाति नही मिलेगी तो तू ऐसे रोजिगारको बदल दे। अपने आपके आत्मस्वरूपमे यदि आनन्द प्राप्त किया तो उससे शाति मिलेगी। इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर। यदि तूने एक आत्माकी बात सही जान ली तो करने योग्य २० बातें खुद ही जान लेगा। १० बातोको बतानेकी जरूरत नही। एक घटना है कि बुदेलखण्डमे एक राजा रहता था, वह राजा गुजर गया। उसका पुत्र नाबालिग था। अब वह लडका २०-२१ वर्षका हो गया। उसकी माँ ने कहा कि मेरे लडकेको राज्य सौप दिया जाय। उसकी माँ ने उसे समझा दिया कि जो बादशाह पूछे उसका यो उत्तर देना। यदि यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना, यह प्रश्न पूछे तो यह और यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना। इस तरहसे १० बातें माँ ने उसे समझा दी। उस राजकुमारने कहा कि यदि इन १० बातोमे से एक भी न पूछेंगे तो क्या कहेगे? माँ बोली कि कुछ अपने आप उत्तर दे सकते हो। राजकुमारने कहा कि क्या मुझे कल्पना भी अपनानी होगी। माँ बोली कि यह तो बडी बुद्धि और प्रतिभाकी बात है। राजकुमार बादशाहके सामने बुलाया गया। बादशाह कुछ नही बोला। उस लडकेके दोनो हाथ पकड लिया और कहा कि अब तुम पराधीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम मेरा क्या कर सकते हो? राजकुमारने कहा कि अब क्या है, अब तो मैं सब कुछ कर सकता हू और अब मैने सब कुछ कर लिया। जब स्त्रीके साथ शादीमे हथेलवा होता है तो एक हाथ पकड लेनेसे स्त्रीकी जिन्दगीभर रक्षा करनी पडती है। एक हाथके पकडनेसे जिन्दगीभर रक्षा करनी पडती है तो दोनो हाथोके पकडनेपर क्या कहना है? हम तो अब बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए। यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गया और उस राजकुमारको राजगद्दी द दी गयी। इस कमडलको

कैसे उठाना है, कैसे क्या करना है आदि बातोंको क्या सीखना है। यदि इस यथार्थ बातको समझ लिया तो इतना ही क्या है? बीसो बातें अपने आप समझमे आ जावेंगी। यदि अपने ज्ञानस्वरूपकी प्रतिभा जग जाय तो सारी बातें आ जाए।

यहाँ उपद्रव करने वाले भाव बहुत है। मगर ज्ञानस्वभावमे प्रवेश करने पर वे कुछ नही। गगा नदीमे पानीमे एक जानवर था। आराम करनेके लिए मुह उठाकर पानीके बाहर थोडा शरीर निकालकर जाता है। चारो तरफसे सैंकडो पक्षी उस जानवरपर हमला करनेके लिए आते है। पर यदि वह थोडासा पानीमे खिसक जाता है। तो वे सारे पक्षी बेकार बेक-रार होकर भाग जाते है। रागादिक भाव नाना प्रकारके विकल्प, नाना प्रकारके विचार इस ज्ञानगगा जीवनके बाहर मडरा रहे है, सब हमारे ऊपर हमला कर रहे हैं। यदि हम जरासा इन रागादिक भावोसे विलग हो जावें व ज्ञानगगामे मग्न हो जावें, फिर निरखिये तो ये हमारा कुछ नही कर सकते है। जिस प्रकारसे गगा नदीमे जीवके दब जानेसे सारे पक्षी व्यर्थ हो जाते हैं, सारा उन पक्षियोका परिश्रम बेकार हो जाता है उसी प्रकार इन रागादिक भावोको जो कि हमे पीडा देते हैं, हम अपने मोहको ज्ञानमे दबा लें तो ये रागादिकभाव हमारा कुछ नही कर सकते है। जब तक ज्ञानस्वरूपमे ज्ञान नही है तब तक ये रागादि पीडा देते है। सो अब मैं उन मोहियोके दो शब्दोंसे हटकर, ज्ञानमे ही डूबकर, मग्न होकर, ज्ञानके स्वरूपको ही ज्ञान मे देखकर जहाँ ज्ञान ही जानने वाला है, ज्ञान ही जिसमे जाना जाने वाला है याने ज्ञेय होता रहता है और वह ज्ञान जानकर ज्ञानीमात्र ही रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी, ज्ञान और ज्ञेयमे भेद नही रहता है। जिसमे भेद नही है उसमे ही यह अद्भुत परम आत्मानुभवका आनन्द है। जानने वाला तो मै हू और ज्ञेय बना रहता हू। दुनियाके अनेक पदार्थ जहाँ हैं वहाँ तो आकुलता रहेगी और जिसका जानने वाला मैं हू वहाँ मै ही ज्ञेय बना रहता हू। ज्ञेयको ज्ञान मे जानें, यह है सबसे अच्छा रोजिगार। जिसमे तीन लोकका नाथ बना दे यह है विलक्षण व्यापार। किसलिए जान रहे हैं? जान रहे हैं, इसलिए जान रहे हैं। इस जाननेके आगे और कुछ प्रयोजन नही। तो अब ज्ञानमे ही प्रवेश करके मैं अपनेमे अपने आप सुखी होऊ। ये रागादिक उपद्रव तो तब तक होगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्त्वमे अपने आपका प्रवेश न हो जाय। यही ज्ञानयोग ज्ञानियोका, योगियोका एक मात्र कार्य है। इसही से आत्मासे महात्मा होते व महात्मासे परमात्मा हो जाते हैं। केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञानमे ज्ञानका अनुभव करके मैं अपनेमे अपने आप आनन्दस्वरूप होऊ। ॐ शान्ति.

आत्माका स्वभाव सिद्ध बननेका है। सिद्ध कहते हैं उसे कि जिसने अपने आपके गुणोकी प्राप्ति कर ली है, अपने आपमे सब कुछ कर लिया, जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है उसको पूर्ण कर लेनेका इस आत्मामे स्वभाव है अथवा पूर्ण विकासरूप बन जाने

का इस आत्मामे स्वभाव है, अनन्त ज्ञानी अनंत द्रष्टा अनन्तसुखी अनन्त शक्तिमान हो जाने का स्वभाव है। यह ही इस आत्माका विक्रम है, परिश्रम है, करतूत है, शूरवीरता है, पर अन्य इसमे जो पर्याय उत्पन्न होते है जैसे गतिमार्गणामे नारक, तिर्यञ्च, देव व मनुष्य हो, इन्द्रिय मार्गणामे एकइन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पचइन्द्रिय बताया गया है। अन्य कषाय असयम आदि जो कहा गया है वह किसके विक्रम है ? ये कर्म के विक्रम है। जैसे निर्मल शुद्ध काच है वह शुद्ध बना रहे, स्वच्छ बना रहे तो कांचका ही विक्रम हुआ। जैसे कांचको किसीके सामने कर दो या काचके सामने कुछ आ गया, हाथ आ गया, लो छाया आ गयी, उसमे करतूत किसकी चल गई ? हाथ की। तो वह हाथ निमित्त हुआ। हाथका विक्रम हुआ, हाथकी ही कलाएँ है। यह एक दृष्टि है इसी दृष्टिसे देखना। इसी प्रकार जीवमे शुद्धज्ञानरूप वर्ताव केवलज्ञान मात्रमें रहना, ज्ञातादृष्टा रहना, यह तो हुआ आत्माका विक्रम और इसमें क्रोध, मान, मोह, माया, लोभ आदि जो कुछ भी विभाव पर्यायें होती है वे सब कर्मके विक्रम है। यहा यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो मेरा विक्रम है उस विक्रमको करूँ और कर्मके जो विक्रम है उनकी उपेक्षा करूँ। मेरा तो काम है ज्ञाता, दृष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर इसलिए निरुत्साही नही होना चाहिए कि बहुत दिनोसे पढते आए, सुनते आए, कुछ लाभ नही दिखता, अन्तर नही आता। भाई बात तो कठिन है। जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हो जायगा। कोशिश करते रहना है, उपयोग बनाए रहना है। जब होना होगा ठीक हो जायगा।

एक बाबूने एक कोरीको पायजामा दिया। वह नही जानता था कि कैसे पहिना जाता है। तो वह उस पायजामेको कभी कमरमे लपेटता, कभी हाथोमे डालता तो कभी गले मे डालता था। इस तरहसे उसने बहुत-बहुत काम किया। एक समयमे उसने पायजामेका एक पैर पैरमे डाला और दूसरा पायजामेका पैर भी दूसरे पैरमे डाल लिया, अब झट बन गया। उसकी समझमे आ गया कि ऐसे पहिना जाता है। इसी तरह जो पढते हैं, सुनते है, कोशिश करते है तब भी बात फिट नही बैठती है। बात यदि फिट नही बैठती है तो नही सही, कोशिश करना बद न करो। किसी दिन परद्रव्यकी उपेक्षा हट जायगी और अपने आपमे सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायगा कि यह बात है, यह प्रभु के स्वभावका मर्म है। मैं तो अपना विक्रम करूँगा। चीटी चढती है, चढती ही चली जाती है, कभी-कभी गिर जाती है, फिर भी हिम्मत नही हारती है, वह ऊपरको चढती ही चली जाती है। बार-बार करनेके लिए काम यह है कि परमे उपेक्षा और आत्मामे दृष्टि हो और कुछ करने लायक काम नही है। धन कमाया है चला जायगा या अतमें मृत्यु हो जायगी। एकका भैया मर गया, पढा लिखा था। दूसरे लोग आकर पूछते है, सहानुभूति दिखाते हैं,

कैसे परिणामोसे तुम्हारा भाई मरा ? लडका बोलता है कि क्या बतावें—क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए। बी ए. किया नौकर हुआ पेन्मन मिली उर मर गये ।। भाई नौकरी करता था, बादमें पेंसन मिलती थी और अब मर गया। जगतके सभी जीवोको ऐसा होता है कि नौकरी किया, धन वैभव जोडा, मर गए और चले गए जीवनको छोडकर। आत्मप्रभुके, आत्मस्वभावके दर्शन हो तो परिश्रम सफल है। आत्मस्मरणसे जो आत्मसस्कार बनता है उसका सस्कार तेरा भला करेगा, अन्य वासनादि भला नही करेंगी। कितनी दृष्टि फसी हुई है ? घरके चक्कर, परिवारके चक्कर, यह काम वह काम इत्यादि अनेक प्रकारसे दृष्टि फसी हुई है। ये सब तेरे रक्षक नही। तेरा तो रक्षक अन्त स्वरूपका दर्शन है। जैसे रोते हुए बालकको किसी खिलौनेमे रमा दें तो उसका रोना बन्द हो जाता है। इसी तरह दुखी होते हुए इन प्राणियोको जब कभी अपना खिलौना मिल जाय, चैतन्यस्वभावके दर्शन हो जाए तो यही मोक्षका मार्ग है, शान्तिका मार्ग है। यह कोई कठिन बात नही है। इस ही स्वरूपमे इस तरहका उत्साह लग जाय, अपने खिलौनेमे लग जाए तो सारे क्लेशके रास्ते ही उसके बन्द हो जाते हैं। यह अमोघ उपाय है। जैसे रेल, मोटर चलती हैं तो उनके जो यन्त्र बनते है, घुमा दें, तेज चला दें, धीरे चला दें। जरासा दबा दें तो तेज चल देते हैं और यदि निःशक होकर और थोडासा दाब दें तो झट अधिक तेजीसे चल देती है।' जो चलाने वाले यन्त्र है उनको जरासा स्टार्ट कर दे तो चल देते हैं। उनको चलानेके लिए जो प्रयत्न है वह व्यर्थ नही जाता है। इसी तरह आत्मस्वरूपका दर्शन भी ऐसा उपाय है कि अगर करें तो व्यर्थ नही जाता है। ज्ञानी ऐसा परिणाम तो करता, स्वभावमे दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाए है, प्रतीति तो बनाए है। मेरा तो रक्षक मैं ही हू, मेरी शरण मैं ही हू, दूसरा मेरा कोई रक्षक नही है। मै अपने प्रभुको पहचानूं तो मेरा रक्षक मैं ही हू, मेरा शरण मैं ही हू।

मैं अपने परिणामोको पहले देखू। कर्म जो कुछ विक्रम करते हैं तो करने दो। मैं अपने विक्रम को करूँ। अपना पुरुषार्थ आप करो, कर्मका विक्रम कर्ममे होने दो। अपना पुरुषार्थ यह है कि अपना शुद्ध ज्ञायकस्वरूप देखो। कर्मका विक्रम कषायादिक है वह चारित्र-मोहमे होने दो। आत्मास्वरूप दृष्टिका काम करे, कर्म चारित्रमोह करे, जीवके विक्रम और कर्मके विक्रममे होड लगने दो। हे चारित्रमोह ! तू अपने उपद्रवको समाप्त कर। जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा। हे प्राणी ! तूने तो कल्पनाए बना ली अपने परिवारको, अपने कुटुम्बको अपने सामने रख लिया और जन्ममरणका चक्कर ले लिया। मुझे तो अपने आपमे यह विक्रम लगाना है कि अपने आपको शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमात्र, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानन-जानन ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थोंसे भिन्न

है, किसी अन्यसे सम्बन्ध नही है, ऐसे उपयोगमे हमे लगना है। यह प्रथम चीज है। इससे ही मेरेमे आनन्द आता है। इसके बिना गुणोका विकास नही। इसी प्रकारका ध्यान बना कर ज्ञानी जीव अपनेको ज्ञाता द्रष्टा बनाये रहनेका अपना विक्रम करते है। क्रोधका उदय वहाँ नही है, अन्य प्रकारके विकार भी वहा नही है। इसमे मोह नही है, दु.खोसे रहित है। जहाँ पर मोह है, क्रोध, मान, माया, लोभ है वहाँ पर विपत्तियाँ है। कर्म अपना विक्रम कर रहे है और यह मै अपना विक्रम करूँ।

देखो एक जानवर होता है कछुवा। उसे कोई सताये तो वह अपनी चोच भीतर दबा ले तो उसकी चोच भीतर घुस जाती है। केवल ढाँचा पडा रहता है, मुह भीतर पडा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो कडा रहता है। उसको चाहे ठोकते रहो, पीटते रहो, परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियाँ आएँ, आने दो। हमारे पास तो ताकत है। अपना विक्रम करें। अपने विक्रमको हम भीतर ले जाएँ और ज्ञानस्वभावमात्र आनन्दभावमात्र अपने स्वरूपको निरखें। यहाँ तो मेरा कुछ नही है, मै ज्ञानमात्र हू। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि मेरेमे नही है, पर हो जाते है। कर्मका विक्रम है। होने दो। मै अपना विक्रम करूँ अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा रहू और अपने विक्रम करके अपने आप सुखी होऊँ। देखो भैया! करनेका काम एक ही यह है वह करनेमे आ ही नही रहा है। पर करना तो यही पडेगा। क्यो नही करनेमे आ रहा है? अपनी कमजोरीसे। अपने भावोको ढीला कर दिया, मनको ढीला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनको नियन्त्रित कर, स्वभावके दर्शन कर लिए तो उत्साह हो गया। क्या करना है, मै तो कृतकृत्य हू। मेरा तो कृतकृत्यत्वके अतिरिक्त कोई काम ही नहीं पडा है। कौनसा काम पडा है? अमुक अमुक। अरे वह तो मेरा काम ही नही है। प्रत्येक द्रव्य अपने आपमे परिणमते है। उनमे मेरा कुछ नही पडा है। मैं कृतकृत्य हू। मैं जो कुछ करूँगा वह यही कि जानना चाहिए। चेतनाका चमत्कार है यह केवल जानता हूं, प्रतिभास स्वरूप हू, मैं इतना मात्र आत्माका मर्म हू। अपनी शूरवीरतासे हटे तो दुनियाके सभी पदार्थोसे मुझे दु ख है। हम दु खके कारण बन जाएगे और यदि हम प्रवल रहे तो दुनियाके कोई भी पदाथ मुझे दुखी नही कर सकते।

कभी देखा होगा जब बच्चे अथवा कोई भी कहते है कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकते हो लगावो। तो उस बच्चेकी हिम्मत बडी हो जाती है। वह कडी पीठ कर लेता है, सास भर लेता है। वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है, उसे क्लेश नहीं होता है। उनकी बात क्या कहे कि जो व्यायाम दिखाने वाले होते है अपनी छाती परसे हाथी का पैर रखकर निकलवा देते हैं। वह भीतरसे तैयारी कर लेता है, इस कारण उन्हे

दुःख नही होता है । उनका दिल कडा बन जाता है, वे क्लेश महसूस नही करते है । इसी प्रकार यदि भीतरके मनको कडा बना लिया जाय, सयत कर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना । दृढतासे निर्णय होता कि अरे मैं तो जान गया, सो जानना ही तो मेरा स्वभाव है । मै तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया । ऐसी कडी हिम्मत करलो तो जो विपदाए भी आती हैं वे चली जाती हैं । इन विपदाओका मुझपर असर नही होगा । अपने विक्रममे रहे तो कर्मके विक्रमका असर न होगा । ढीले-ढाले बैठे हैं, भीतरसे कोई तैयारी नहीं है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यन्त दुख होगा । इसी तरह ढीले-ढाले शिथिल मन पडा हुआ है तो यह सब असर करता है । यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोको निमित्त पाकर अपने आपमे अपना असर डाल लिया करता है । जैसे कहते है कि खुद तो जगत नही, खुद तो स्वाधीन नही होते और कहते हैं कि स्टेशन लुटेरा है । अरे खुद जगते रहो कौन लूटेगा ? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नही होते । नाम लगता है घरका, गृहस्थीका, धनका, वैभवका । इन इन चीजोने तो उसे लूट लिया, बर्बाद कर दिया, फांस लिया । नाम बर्बाद करता है पर पदार्थको यो ही देखनेसे उस अज्ञानी को दुःख हो रहे है । दु.ख तो कोई चीज ही नही है, दु·खोका नाम ही नाम है । ऐसी कल्पना करो कि जहाँ यह जचे कि दु·ख कोई चीज नही है तो सुख होगा ।

तीन चोर थे । चोरी करने जा रहे थे । रास्तेमे एक नया आदमी मिला । बोला कहाँ जा रहे हो ? बोले–चोरी करने जा रहे हैं । उसने कहा कि इससे क्या होगा ? बोले–धन लूटेगे । अगर धन लेना है तो तुम भी चलो । नया व्यक्ति साथमे चल देता है । वह यह नही जानता है कि घरमे कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है ? घरके अन्दर सब घुस गए । एक बूढे आदमी ने खास दिया । वे तीन तो भाग गए । अब वह नया आदमी भागना नही जानता था । उसने और कुछ न सोचा, घरमे जो ऊपर कडी लगी हुयी थी उस पर जाकर बैठ गया । गाँवके बहुतसे लोग एकत्रित हो गए । हल्ला मच गया । वहाँ दसो आदमी थे, दसो तरह के सवाल होते थे । घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोको क्या जानें, ऊपर वाला जानें । उसके कहनेका तात्पर्य भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुए नए चोर ने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है । उसने सोचा कि मैं पकडा न जाऊ इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानू ? वे तीन आदमी क्यो नही जानें । अब वह नया चोर पकड लिया गया । बाँधा गया, मारा पीटा गया । बन्द हो गया । यहाँ पर उसने केवल कल्पना ही तो कर लिया था कि यह मेरे लिए कहा जा रहा है इसलिए पकडा गया, मारा गया और बद किया गया । अब मुझे अपने आपको उठाना है । कर्मके विक्रम यदि चलते हैं तो मैं अपने विक्रमको करूँ, ज्ञाता दृष्टा बनूँ । इसके आगे हमे कुछ नही चाहिए, क्योकि

कुछ मिलेगा नही परसे, उनका परिणमन उनमे है, हमारा परिणमन हमारेमे है। जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरेसे मेरेमे होता है, किसी परसे नही होता है। जो मुझको आनन्द प्रकट होता है वह आनद मेरेसे मेरेमे प्रकट होता है। दूसरा निर्णय नही, दूसरा न्याय नही। फिर किस बातकी परसे आशा करते हो ? अपनी अन्तरदृष्टि बनाओ कि जैसी उसकी प्रतिभा है तैसी मेरी प्रतिभा है। सब अपनेमे है, मै अपने मे हू। इस प्रकारसे वस्तु के स्वरूपको निरखना यह ही पुरुषार्थ है, यही विक्रम है। एक शुद्ध ज्ञानका पुरुपार्थ करके अपनी इन सब वासनाओको दूर करो। जो जो सस्कार भरे हुए है, जो जो वासनाए, जो जो कर्म क्रोध, मान, माया लोभ इत्यादि भरे हुए है उन सबको अपने पुरुपार्थसे अपने विक्रमसे दूर करो।

एक सांप था। उसनें यह विचार कर लिया था कि मैं किसीको सताऊंगा नही। वह शात था। सुबह उस घरमे बच्चेको एक कटोरा दूध दिया जाता था। वह बच्चा अपने सामने कटोरा रखे हुए दूध पी रहा था। इतनेमे वह सांप आया और उस कटोरेसे दूध पी लिया। उस बच्चेने सांपके कई थप्पड मारा पर सांपने सहन कर लिया। खूब दूध पीकर मस्त हो गया। इसी तरहसे वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था। दूसरे सांपने कहा कि क्या खाते हो कि मोटे तगडे हो रहे हो ? उसने कहा कि तुम इसकी कला नही जानते हो। मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हू। बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हू और थप्पड सहन करता रहता हू, खूब दूध पीता हू। बोला कि मैं भी ऐसा ही करूगा। कहा कैसे करोगे ? बोला कि मै सौ थप्पड तक क्षमा कर दूगा। सवेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया। दूसरा सांप बच्चेका दूध पीने लगा। बच्चेने एक थप्पड मारा, दो थप्पड मारा, दस थप्पड मारा, बीस थप्पड मारा, पचास थप्पड मारा, ९९ थप्पड मारा और १०० थप्पड मारा। सांप सब सहन करता गया। जब उस बच्चेने एक थप्पड और मारा तो तो झट उस सर्पने फुंकार मारी। अब उस फुकारको सुन सब लोग उसके ऊपर टूट पडे और उन्होने उसे मार डाला तो वह सर्प मनमे वासना भरे हुए था कि मै १०० थप्पड तक सहन करूगा, आगे नही। इस वासनाके ही कारण वह मारा गया।

अन्तरमे विषय कषाय जो भरे हुए है वे सब परेशान करते है। लोग कहते है कि जब जाप करते है तो दसो जगह मन जाता है और अगर अपनी दूकानपर रहते है तो केवल एक ही जगहपर मन रहता है। इसलिए जापसे अच्छी तो मेरी दूकान है। अरे दोनो एक ही जगह है। सस्कारसे कर्मबन्धन करते हैं। यह न समझें कि दुकानपर बैठनेसे उपयोग दस जगह नही जाता सो कर्मबन्ध नही होता। जैसी वासना है वैसा बध है। बात तो बल्कि यह अच्छी समझनी चाहिये कि जो नाना विषयकषाय भरे हुए है उनको जापका प्रसग मद

बतला देता है । अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयकषायोको निकाल दो । अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चिंतनका, विचार तो करना चाहिए और वासनाओका, कषायोका तिरस्कार करना चाहिए । यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहू और अपना विक्रम मानू । यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपनेमे अपने लिए आनन्दस्वरूप हो सकता हू ।

इस लोकमे इस सयोगजन्य दृष्टिके द्वारा जो—जो कुछ सयोगजन्य पदार्थ मालूम हो रहे हैं सो न तो यह सयोगजन्य दृष्टि मैं हू और न सयोगजन्य पदार्थ मैं हूं । मैं देख रहा हू । किनको देख रहा हू ? इन सयोगजन्य पदार्थोंको अर्थात् परमाणुवोके सयोगसे बने हुए इन ढांचोको देख रहा हूं । कमडल है, यह भी सयोगजन्य पदार्थ है, अपनी स्वतत्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नही है, क्योकि यदि यह अपनी स्वतत्र सत्ता वाला है तो यह मिट नही सकता । जो सत् है वह त्रिकाल है । यह मिटा नही करता है । दरी है, चौकी है, शरीर है यह सारे के सारे सयोगजन्य पदार्थ है, स्वय सारभूत नही हैं । इसीलिए यह मायारूप हैं, परमार्थ नही हैं । जो कुछ भी दीख रहे हैं वे कुछ परमार्थ नही हैं, वे सब सयोगजन्य है, मायारूप है, मिट जाने वाली चीजें हैं । वास्तविक बात तो कुछ और हो, परतु रूप कुछ और बन गया हो । यही तो माया है । ये इन्द्रजाल है । इन्द्रजाल कहते किसे है ? इन्द्रजाल इन्द्र याने जीव उसका जाल सो इन्द्रजाल । यही जीवका जाल है, यही इद्रका जाल है, यह ईश्वरकी लीला है खाली जीव, खाली ईश्वरसे यह लीला नही बनती, यह कर्म उपाधिसे बनती है, यह प्रकृतिके निमित्तसे बनती है, सो प्रकृतिकी चीज है । किसी भी तरफ देखते जावो यह सब मायामय वस्तु हैं, सयोगजन्य पदार्थ है, परमाणु रूप नही हैं । तो मोहमे मैं क्या बन रहा हू ? यही सब मैं हू । मैं और कुछ नही हू और ये असारभूत मायामय पदार्थ मायाकी वस्तुयें हैं, प्राकृतिक हैं याने प्रकृतिविकार हैं । ईश्वरकी लीला किन्ही भी शब्दोमे कहे—जो कुछ माया दीख रही है इसके देखने वाला कौन है ? किसके द्वारा हम देख रहे है ? इस एकके द्वारा नही । दृष्टि नेत्रके द्वारा देखते हैं, यह दृष्टि ही सयोगजन्य होती है । जिसकी ओर देख रहे हैं वह भी मायामय वस्तु है । केवलके द्वार दीखते नही हैं यह दृष्टि केवल पुद्गल ही है, केवल जीव भी नही है ऐसा देखनेका काम करते हैं । दिखने वाले तो वे पुद्गल हैं वे सब कुछ नही देखते हैं । पुद्गल देखे तो मुर्दा शरीर भी देखे, जीव देखे तो ऐसी गदी दृष्टि सिद्धकी भी हो जाय, ऐसा देखना न केवल आत्माका काम है, न केवल पुद्गलोका काम है और दोनोका मिल करके भी काम नही है और काम होता रहता है । देखो यह दृष्टि भी गजबकी माया है । मायामय चीजें हैं तो मायामय ही दिखाई पडती हैं । सो न मायामय चीजें मेरी हैं और न मायामय दृष्टि मेरी

है और न यह दोनो मै और न ये दोनों मेरे । इस कारण उन दोनोको समाप्त करके, त्याग करके अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ।

त्याग कहते किसे है ? यथार्थ ज्ञान कर लेना, इसीके मायने त्याग है । जैसे कहते है ना कि तुम्हारी इसीसे दोस्ती है और दोस्तीका त्याग कैसे होगा ? जब अहितपनेकी कल्पनाएँ बना लेंगे तो दोस्तीसे त्याग हो जायगा और यदि हितपनेकी कल्पनासे, उसीको ढँगसे जान लिया तो इसीके मायने दोस्ती है । इसको मेरेसे अंदर विरोध है इसी जाननेके मायने त्याग है । मित्रता करता तो ग्रहण कुछ करता नही, परन्तु कल्पनाओ द्वारा मित्र बना लिया । तो जैसी हो कल्पना होगी वैसी ही मित्रता होगी और वैसा ही त्याग होगा । इसी तरह यह धन-वैभव बना हुआ है तो यह कुछ मायने नही रखता । वे भी भिन्न पदार्थ है । उनका लेना-देना आत्मामे नही है । बस मान लिया कि मेरे पास धन है । यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन है तो वह धनी बन गया और यदि यह मान लिया कि मेरे पास धन नही है तो गरीब बन गया । इस जीवमे पूर्ण सामर्थ्य है । यह जैसा अपनेको माने तैसा हो जायगा । जो-जो कुछ दिखते है वे सब सयोगजन्य पदार्थ है । खास, यथार्थ परमार्थमे कुछ भी तत्त्व नही दिखता । जिस जीवसे प्रीति होती है, मोह होता है वह पदार्थ अत्यन्त भिन्न है । उसकी प्रीति करके उन पदार्थोंमे कुछ असर बदल नही जाता, कुछ अपने हो नही जाते । जैसे देखा होगा कि और बहुतसे मनुष्य हैं जिनसे बोलनेसे भी प्रसग नही होता और आपका मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है तो मोह और प्रीतिका कारण तो तुम्ही हो । केवल अपने अन्दर कल्पनाए मोह और प्रीतिकी भर ली है । अब तुम्ही दुखी रहो, वह तो जो है सो है । जैसे किसीको बुरा लग जाय तो कहते है कि तुम्हारे पेटमे उर्दा चुरने लगा । जो बुरे सकल्प करे, बुरे विचार करे तो वह अपने अन्दर घुल जाता है, मिट जाता है, बरबाद हो जाता है । जो खोटे भाव करेगा वह स्वय मिट जायगा । नश्वर मायामय वस्तुवोका सग्रह करनेके उद्देश्यसे अपने आपकी रुचि छोडकर झूठ धोखा आदि करे तो यह अपने आपपर बहुत बडा अन्याचार है । और यदि अपने ईमान और सच्चाईपर दृढ होकर और फिर अपने बलसे धर्मसे स्खलित न होकर देखो तो आत्मामे एक चमत्कारसा बैठा हुआ आनन्द उत्पन्न होता है । ये कुछ नही । इन मायामय चीजोको मायामय दृष्टिसे निरखकर मायामय प्रयोगके द्वारा इनकी कल्पना बना लें तो उत्थान नही होगा ।

मदिरमे भगवानकी मूर्तिके सामने ध्यान करते है तो किस बातका करते है ? उस प्रभुकी मूर्तिकी मुद्रा ऐसी है कि मानो वह कह रही है कि हे आत्मन् ! तू समस्त जंजाल छोडकर कुटुम्ब परिवार इत्यादिका तू त्याग कर, मुझ जैसा विश्राम पा, तेरा किसीसे प्रयोजन नही है । तू अपना प्रयोजन किसीसे न रख । तू अपने आपमे ध्यान करके शान्त होगा

और अपने आपके स्वरूपमे मग्न होगा। केवल तू शुद्ध अपने आप रहेगा और आनन्दमग्न हो जायगा। हे भगवन् ! आप तो शुद्ध रहे, अपने आपमे आनन्दमग्न हो गए। धन्य है तुम्हे भगवन ! यही आपकी महत्ता है। हे आत्मन् ! ऐसी महत्ताका तू विचार कर, ऐसा ही अपने आपको निरखकर आनन्दमग्न हो जा। किसीसे तेरा प्रयोजन न रहे और स्वयमे विचार करके आनन्दमग्न हो जा तो तेरी स्थिति उस भगवानसरीखी हो सकती है।

तू मदिरमे मूर्तिको देखकर इस प्रकारसे ध्यान कर कि उस मूर्तिको देखनेसे तुझे शाति की शिक्षा मिले, त्यागकी शिक्षा मिले। यही वास्तविक मूर्तिकी पूजा है। और यदि मूर्तिको खूब सजाए, ऊचा आसन बनाए, सिहासन बनाए और उस मूर्तिको बैठाए और यदि उस मूर्तिसे शिक्षा न ले सके तो वास्तविक पूजा नही कही जायगी। उस मूर्तिसे तुम्हे त्यागकी शिक्षा प्राप्त होगी, शाति एव धैर्यकी शिक्षा प्राप्त होगी।

हे आत्मन् ! त्याग ही सार है। तू त्यागको ही अपना। यदि तू त्यागको अपनाता है तो आत्माको क्लेश नही है और यदि त्यागसे विमुख होकर इस प्रकारके दूषित वातावरण मे पडे तो आजीवन क्लेश रहेगे। मूर्ति जो कि मन्दिरके अन्दर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है। हे जगतके प्राणी ! यदि परिग्रहका त्याग नही, स्त्री पुत्रोसे वैराग्य नही और ऊट-पटाग बैठनेका ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होगे। अरे अपनेमे विराजमान साक्षात् परमात्म-तत्त्वको देखो और अपने समस्त मायामोहोको त्यागो। यदि यह भाव उत्पन्न होता है तो तुझे सुख है। तेरे सुखी बननेका अच्छा उपाय है कि जैसी शान्त मूर्ति है वैसा शान्त बननेकी कोशिश करो। उस मूर्तिके दर्शनसे जो शिक्षा मिलेगी वह तेरे लिए कल्याणकारी है। देखो जिनमे फसे हुए हो वे सब मायामय पदार्थ हैं। तू उन समस्त मायामयी पदार्थोंसे प्रीति मत कर। सावधान ! डैन्जर है। यह सब डैन्जरस है। तू परसे प्रीति मत कर। यदि परकी प्रीतिमे फस गया तो तुझे क्लेश है। प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है। स्त्री बडी उत्तम है, बडी गुणवान है, बडी रूपवान है, पुत्र बडे अच्छे है, मित्र बडे अच्छे हैं। अरे ये तेरे नही हो सकते हैं। ये सब तेरे लिए जजाल है। इनसे तेरा हित कुछ नही, अहित ही रहेगा। यह गृहस्थी बनाई गई है, गृहस्थधर्म बताया गया है, पर स्त्री पुत्रोसे आनन्द प्राप्त करने ही को नही बताया गया है। इसलिये यह गृहस्थ धर्म है कि हे भाई ! तेरा काम तो यह है कि अपने सारे आरम्भ परिग्रहका त्याग करके अपने अहिसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य व आकिञ्चन्यमे आ करके आत्मयोगी बनकर मोक्षमे पधारो, किन्तु जो कोई कायर है, कम-जोर है, कुछ कर नही सकता है तो उसे बताया है कि इस प्रकारकी गृहस्थचर्या धारण करके, तुम धर्मके कार्योंमे लगो। यदि धर्मके कार्योंमे लगोगे तो तुम्हारा कल्याण निश्चित है। यह गृहस्थी इसलिये बसाई है कि तुमसे महाव्रत नही पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थीमे

संतोष करके बाकी सब पापोसे दूर रहो।

हे आत्मन्! शत्रुता बनाए रहना और झंझटोमे पडा रहना यह गृहस्थीका धर्म नही है। इसलिए तू इन समस्त झंझटो एव शत्रुताओसे विलग होकर अपने आपमे रमो। जब अपने आपमे रमोगे तभी गुजारा होगा अन्यथा नही। जो बच्चा अच्छी तरहसे नही चल सकता है उसके लिए माता अगुलीका सहारा देती है। इसी प्रकारसे जो सयोगदृष्टिसे देखते है यह मै नही हू, वह मेरा नही है, इसलिए मैं इन सबको त्याग देता हू, त्यागना क्या है—यह मान लो कि यह भिन्न है, भाव सत् हैं। मेरा इनसे कुछ सम्बन्ध नही है। मैं तो एक ज्ञानानन्द भावात्मक वस्तु हू, स्वय आनन्दस्वरूप हू, परिपूर्ण हू, अधूरा नही हू। कमी नही है। हमे बनना नही है, हम बने बनाए हैं। मेरेमे सब वैभव भरा है, सब तैयार है। केवल ऊपरकी ढकी हुई अज्ञानकी चद्दरको उठानेकी जरूरत है। जैसे भोजन भीतर सब तैयार है। किन्तु उस थाली पर छन्ना ढका है तो सिद्ध है कि छन्ना उठने की जरूरत है। आत्मामे ज्ञान आनन्द सुख इत्यादि समस्त तैयार भरे पडे हुए है। केवल जानने भरकी जरूरत है। अज्ञान का छन्ना पडा हुआ है, उसे हटा लो पूरी सावधानी करके अपने जौहरको देखो और उसका आनन्द लूटो। इन त्यागे जाने योग्य पदार्थोमे पडनेसे कभी कुछ पूरा नही पडेगा। अतः मैं इन सयोगजन्य पदार्थोका त्याग करूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

यह मैं आत्मा अन्य किसी जगह नही हू। मैं मुझमे ही हू। यह मैं आत्मा किसी अन्यका नही हू। मैं मेरा ही हू। यह मै आत्मा कभी नष्ट नही हुआ और न नष्ट हूगा। मैं ध्रुव हू। यह मै आत्मा अपनेसे बाहर कभी नही गया, जो मुझको अपनेको ढूँढनेकी हैरानी करनी पडे क्योकि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा यहीका यही विराजमान है। तीन लोकके अधिपति बननेका उपाय अकिञ्चनस्वरूप आत्माका दर्शन है। एक जगह गुरुभद्र स्वामी ने कहा कि—

अकिञ्चनोहमित्यास्य त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।
योगिगम्य तत्र प्रोक्त रहस्य परमात्मनः॥

गुरु जी अपने शिष्योंसे करते हैं कि आजमे तुम्हे परमात्मा बनने का रहस्य बतलाऊँ तो शिष्योने कहा कि हाँ हाँ गुरु जी बतलाओ। गुरुजी ने कहा देखो मैं अकिंचन हू, मेरा कही कुछ नही है, मेरा मैं ही हू। मेरेसे बाहर मेरा न तो गुण है, न पर्याय है, न असर है, न लगाव है और कुछ भी नही है, ऐसा मानकर टन्नाकर बैठ जावो, ऐसा अपने मनमे जिद्द बना कर ठहर जावो तो तुम तीन लोकके अधिपति हो जावोगे। देखो यह परमऔषधि पदार्थ है। देखो सर्व क्लेश मिटनेकी सबसे परमऔषधि है अकिञ्चन की भावना। जैसे कोई रोग हो जाय तो कही उस डाक्टरसे इलाज करवाया, वही उस डाक्टरसे इलाज करवाया। सबसे इलाज करवाया, परन्तु किसीसे भी आराम नही हुआ तो जिसको वह ज्यादा समझदार

समझता है उसके लिए आखिरीमे इलाज करवानेके लिए कहता है और उसीसे इलाज करवाएगा। अरे अब आखिरी एक इलाज तो करवा लो। इसी तरह ससारके दुःख दूर करने है, इलाज कई तरहका बहुत कराया। धन, वैभव हो जाय, कुटुम्ब परिवार हो जाय, लडके बच्चे हो जाएँ, बहुत यत्न किये इलाज किये. किन्तु लडके बच्चे हो जाएँ। बहुत यत्न किये, इलाज किये, किन्तु इनसे नही दूर हुए। कितने भी उपाय कर डालो पर दुःख दूर नही होंगे इनसे। दुःख दूर करनेका इलाज तो यह है कि अपनेको अकिंचन मानो। बस ससारकी सारी चिंताएं, सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। अपनेको मानो कि मैं अकिंचन हू, मेरा तो मै ही हू, अन्य कोई नही है! यही सबसे अच्छा इलाज है। सो भैया! अपने को अकिंचन मानकर अपने आपमे विश्राम तो कर लो। यदि अपनेको अकिंचन मान लिया और अपने आपमे ही विश्राम पाया तो त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। मै यहाँ अपने आपमे हू, अपने ही स्वरूपको लिए हू, मेरेमे अनत आनन्द भरा हुआ है, मैं कैसा विलक्षण, सबसे निराला ज्ञानानन्दमय, परम-पवित्र पदार्थ हू? कही बाहर नही हू, अन्यत्र नही गया हुआ हू पर अपने आपको न निरखकर यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नही रखता है और बाह्यमे दृष्टि रखता है अपने को सकिञ्चन भावके लगाता। इसीसे उसे क्लेश हुआ करते हैं। हम अपने आपको समझें कि मैं अकिंचन हू। मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है और जो कुछ मुझमे है वह कही बाहरसे नही आता है। मेरेमे तो मेरा स्वरूप चतुष्टय विद्यमान है, यह मैं ज्योतिर्मय पदार्थ हू। देखो लोकव्यवहारमे भी उस मनुष्यकी इज्जत बढती है। जो मनुष्य यह कहता है कि मैं कुछ नही हू, जीवनभर बडे दानके भी काम कर लिए, देश और समाजकी सेवाओका भी काम कर लिया तो उनकी प्रतिष्ठा भी बढ गई उनकी शोभा बढ गई, उनका सम्मान भी होता है। पर यह तब तक है जब तक वह अपनेको ना कुछ कहता है। उसने परमार्थसे भी देख लिया कि मैं औरोके लिए कोई चीज नही हू, मेरा जगतमे कुछ नही है, मैं केवल अपना स्वरूपमात्र हू—यदि मैं अपनेको इस तरहसे समझूं तो अतरमे पारमार्थिक इज्जत हो जायगी। आनन्द चाहते हो तो आनन्दका उपाय इसी अमूर्ततत्त्वका ही लेना है—मैं अकिंचन हू मेरा कुछ नही है।

एक साधु था। उसकी लगोटीको चूहे काट जाया करते थे। अब साधुको यह बहुत बडी हैरानी हुई। साधुने चूहोसे रक्षाके लिए बिल्ली पाली। बिल्ली दूध पीती थी। अब उस बिल्लीको दूध पिलानेके लिए एक गाय पाली। उस गायको चराने वाला कोई नौकर या नौकरानी होना चाहिए। गायको चरानेके लिए एक नौकरानी रख लिया। कुछ समयके बाद उस दासीके कुसगिनी होनेसे लडका पैदा हुआ। उस साधुने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर गाय हुई, गायका बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लडका हुआ। इस तरहसे मेरा घर

तो भर गया। अब उन्हे किसी गाँव जानेकी जरूरत पडी, क्योकि घर तो भर गया था उसकी गुजर करनी थी। रास्तेमे एक नदी पडी। उस नदीसे सब निकलने लगे तो अचानक ही एक छोटीसी बाढ आयी जिससे सबके पैर उखड गए, सब बहने लगे। दासीने झट साधुकी लगोटी को पकडा, क्योकि रक्षा करने वाले तो वही थे। इस तरहसे सब उस साधुकी शरणमे गए। बिल्ली भी गयी, गाय, गायका बच्चा तथा लडका इत्यादि भी सब उस साधुकी शरणमे गए। अब तो साधु भी डूबने लगा। अब वह साधु सोचता है कि अरे यह सारी बला तो केवल लगोटके कारण आई है। लगोटके ही कारण गाय, गायका बच्चा, बिल्ली, दासी, दासीका लडका इत्यादिसे विडम्बना हो गई है। अब साधुने लगोटको झटकेसे निकालकर फेक दिया और सत्य विचारने लगा कि ये जीव मेरे कुछ नही है इनसे मेरा कोई सम्बध नही है। उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया! उस साधुने परसे सम्बध स्थापित कर लिया था तो उसे क्या-क्या मुसीबतें उठानी पडी? जो अपनेको परसे मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा। और जो अपनेको कुछ नही समझता है वह तिर जायगा।

किसी घरमे होता है कि बाप बडी उमरका हो जाता है। पाँच सात बच्चे भी हो जाते है। बच्चोका रोजिगार भी अच्छा चलता है। बाप उन बच्चोके काममे दखल देता है। दखल देनेसे नुक्सान हो रहा है। कही ४–६ महीनेको वह बूढा बाप न रहे, किसी जगह चला जाय तो बच्चे सुख शातिसे काम करते है। बाप तो यह समझता है कि हम काम कर रहे है पर बच्चे मुसीबत उठाते व नुकसान भी यदि बाप बच्चोसे काम न पूछे तो बाप खुश है और बच्चे भी खुश है। देखो ना इस जीवने भी इन शरीरवर्गणाओमे दखल दिया तो शरीर भी खराब हो गया व आत्मा भी खराब होगा। हम तो आत्मा है, वह तो बडा भला है, इस आत्माका जाननेका ही काम है। मेरेमे कोई भी विपदाएँ हो, कोई भी बाहरी विवाद हो दुःख नही पहुचाते है। किसी भी प्रकार की विपदाएं इस आत्मामे नही आती है। इन आहारवर्गणाओमे जब यह दखल देता है तो यह भी बुरा होता है व शरीरवर्गणा भी बुरी होती है। यह जीव अकेला रहकर बडे आरामसे बना रहता है। ये पुद्गल भी मासादि रहित पवित्र बने रहते है।

इसीसे पुद्गलकी यह दशा हो गई। इसीसे जीवकी यह दशा हो गई। अच्छी नुक्ती का बढिया लड्डू है बढिया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है यह आदमी भी अच्छा है। बस अब लड्डू खाए। लड्डू खानेसे लड्डूकी क्या हालत हुई सो मुँह बाकर ऐनामे देख लो, चिपर चिपर हो रहा, यहाँ खानेमे आसक्त हुए पुरुषकी दशा देख लो, बीमारीने आक्रमण कर लिया। यह हुई खाने वालेकी दशा। खाने वाले की तो तबियत खराब हो जाती है और लड्डू बेकार हो जाता है। यह हुई लड्डू महाराजकी दशा। लड्डू

अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगहपर अच्छा था। अपनी जगह पर रहते तो दोनो मजेमे थे। ये दुनियाके सारे वैभव, मित्रजन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हो तो उनसे पूरा नही पडेगा। इन किन्हीसे भी हमारा पूरा न पडेगा खरावी ही रहेगी। जो पदार्थ जहाँ जिसमे, जिस स्वरूपमे है बना रहने दे उनमे पडे तो यह भी खरावी है। यह अकिंचन भाव अमूर्त है। कितने ही कष्ट हो जरा अपनेको ज्ञानमे अकिंचन बना लो सब मिट जायेंगे।

अरे भाई अपने को सबसे निराला समझो। यह समझो कि मैं अकिंचन हू, मेरा कही कुछ नही है। मैं अकिंचन हू तो आनन्दमग्न हू। यह अकिंचन भाव अच्छा है। यदि अकिंचन भाव अपनेमे न आया तो बडी-बडी झझटें पड जावेंगी। जैसे कि लौकिक झझटें बहुत पड गई हो बडी चिंतायें हो गई हो, इसमे २० हजार लगे, इसमे ५० हजार लगे, इसमे ५ हजार लेना। टोटल किया तो ७५ हजारका नुक्सान आया। अरे यह नुक्सान मेरा कुछ नही है। हो जाने दो, इससे मुझे कुछ नुक्सान नही पहुच सकता है--इस प्रकार का यदि विचार वन जावे तो लो दुःख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढते ही चले जावेंगे। जैसे सट्टा खेलते है। मिलता-जुलता उसमे कुछ नही। केवल कहते हैं कि इतने पैसे लगे हैं। यह खरीदा, वह खरीदा। खरीदना कुछ नही पडा, पैसे कुछ नही लगाने पडे, सट्टा खेलते हैं। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात दिन जगे। इसी तरह इन पदार्थोंसे हमे लेना देना कुछ नही। इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने से नुकसान ही है। जैसे सट्टा खेलनेका फल केवल पूरी रातका जागरण है इसी प्रकारसे परपदार्थोंसे सम्बन्ध स्थापित करना, उनको अपना इष्ट, अनिष्ट मानना यह सब धोखा है, इसका फल क्लेश है, परन्तु यदि अपनेको अकिंचन मान लें तो तीन लोकके अधिपति हो जावें। अरे घरमे बच्चो मे कोई चीजका झगडा हो जाय। किसी चीजके वितरणमे कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नही लेंगे, और हमे कुछ नही चाहिए। माँ बाप कहते जाते हैं कि नही बेटा और ले लो। बेटा नही कर देता है। अब उस नही कर देनेके बदलेमे और और मिलता है जो शांत है, जिसने नही, नही कहा। सीधे-सीधे शातिरूपसे तो उसे और और मिलता है, अगर वह कह देता है कि हमे और चाहिए तो उसके लिए माँ बाप कह देंगे कि अब नही मिलेगा। इसी प्रकार हे आत्मन्, ज्यो ज्यो परपदार्थोसे बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह कहोगे कि मुझे कुछ नही चाहिए तो पुण्य होता जायगा और त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। ज्यो ज्यो बाह्यसे हटोगे त्यो त्यो लो। हे जगतके प्राणी! परपदार्थोंमे न पडो ये सब गोरखधधे है। अरे तुम कहाँ अपना विश्वास कर रहे हो? अरे ये सब परपदार्थ तुम्हारे लिए हितकर नही हैं। कौनसी ऐसी चीज है, जिससे पूरा पड जायगा? अरे पूरा पडने वाली कोई भी चीज नहीं है। यदि तू उनमे पडा तो तेरी दशा खराब हो जायगी। तू अपने को अकिंचन मान। ऐसा

अपने आपमे विश्वास कर कि मै अपने आपमे हू, अन्यत्र नही हू, परिपूर्ण हू, नष्ट नहीं हू। मैं बाहर नही गया हू—इस तरह सबकी ओर उपेक्षा भर रहे और जिसके केवल पर्यायबुद्धि के कारण भीतरमे लगाव होता है कि मैं यह इसान हू, मैं अमुक हू, मैं अमुक चद हू इत्यादि पर्याय बुद्धिके हो जानेसे मेरे ऊपर खोटे अभिप्राय बढ जाते है।

भैया! देखो—एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। चाहे अकिंचन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो प्रयोजन दोनोका एक है। मै केवल ज्ञानमात्र हू, जानन एक विलक्षण भाव है जिसका उपाय दुनियामे कही नही मिलता है, किसीको स्पष्ट नही दीखता है, उस जाननके पेट नही है, पैर नहीं है, शक्ल नही है, रूप रस, गध इत्यादि उस जाननमे नही है, ऐसा ही मै जाननमात्र हू, ज्ञायकमात्र हू, इसके आगे मेरा लगाव नही है। यदि हम ऐसा अपनेको मानते है तो मौज है और यदि इसके विपरीत हम अपने को समझते है, तो हमे क्लेश हैं। हम अब तो अपने घरमे रहते ही नही, कितने कष्ट की बात है? अरे बाहर भी रहते हो तो घरमे दो चार घटेको तो घुसा ही करते है। अनन्तकाल व्यतीत हो गए, बाहर बाहर ही दृष्टि रही और विपदाओके साधनोकी ओर ही दृष्टि रही। अरे ज्ञानघन आत्माको देखो, सोने चाँदीके ढेरोमे क्या रक्खा है? दौलतसे, धन वैभवसे तुम्हारा क्या विकास, क्या उत्थान हो जायगा? हे जगत्के प्राणी! तू अपनेमे ही सकल्प विकल्प करके दुःखी होता है। तेरी आत्मामे तो दुःखरूप है ही नही। वह तो आनन्द घन है, फिर तू क्यो दुःखी हो रहा है? अरे इन सकल्पविकल्पोको टाल दो तो आनन्द उत्पन्न हो जायगा।

मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड करने वाला मै ही हू। मुझे अपनेको ज्ञान-स्वरूप, ज्ञानानन्दमात्र निरखकर आनन्दमग्न होना चाहिए। यह प्रभु तो लो यहाँ विराजमान है, अतिनिकट क्या, यहाँ मै हू। परमात्मतत्त्व कुछ अन्य वस्तु नही है। चेतनतत्त्व ही परमात्मा होता है। केवल यथार्थ समझ लेने व न समझपानेका ही सारा अन्तर हो जाता है। जिन्होने अपना यथार्थस्वरूप समझा और इसी कारण द्रव्येन्द्रिय व विषयभूत वस्तुमे अपना प्रयोजन नही समझा सो तीनोसे उपेक्षा की और उपेक्षा करके अपने ज्ञानस्वरूपमे रत हुए तो परमात्मतत्त्व प्रकट हो जाता है। ऐसा ही स्वरूप मेरा है। उसका ध्यान कर सर्वक्लेशोसे मुक्त हो जानेका उपाय कर लेना ही परमविवेक है।

देखो भाई—ये विषय है जिनमे ससारी प्राणी अन्धा हो जाता है, विषसे भी भयकर है। विष तो एक ही भवमे प्राणका हरण करता है परन्तु विषयोकी आसक्ति भव-भवमे मूल प्राण चैतन्य प्राणका हरण करता है अर्थात् ज्ञानदर्शनका विकास नही होने देता। ससारके विभिन्न तिर्यञ्चोको तो देखो, ये तो देखनेमे आ ही रहे है—हाथी हथिनीके सम्पर्ककी धुनमे जगलमे बनावटी हथिनीके समीप दौडकर जाता है और उस स्थलपर जाते ही गड्ढेमे गिर

जाता है दुखी होता है और पराधीन हो जाता है। मछलियोको तो देखो जरासे माँसखण्डके खानेके लोलुपी होकर धीमरके जालमे फस जाती हैं। धीमर लोग फिर उनको पकडकर अलग रख देते है वे मर जाती है या कही कही तो वे धीमर मछलियोको जिन्दा ही आगमे भून डालते है। भ्रमर गधके वशीभूत होकर पुष्पके भीतर ही नि श्वास हो जाते है। पतगे तो रोशनीमे ज्वालापर पडकर मर जाया करते हैं, यह तो प्राय: देखते ही रहते होगे। सांप हिरण आदि शब्दके विषयमे मस्त होकर पकड लिये जाते है सपेरे व शिकारियो द्वारा। जब इन जीवोकी एक-एक इन्द्रियके विषयके वशमे हो ऐसी दुर्गति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य कीट जो पाँचो इन्द्रियोके विषयोका दास है, इसका क्या हाल होगा ?

अतः भैया! पुण्यके उदयसे पाया तो सब कुछ समागम है, परन्तु उसके भोगनेसे पहिले कुछ विवेकका भी आदर कर लो अन्यथा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयो को विषकी तरह अहितकारी समझकर और विषयोंके साधनभूत शरीरको आत्मासे पृथक् मानकर उन सबसे उपेक्षा करना—यह भाव ही धर्ममार्ग है। ये विषयभोग ससारमे परिभ्रमण कराते है, जन्म परम्परा बढाते है। तब कर्तव्य क्या है कि इन विषयोको छोडकर और उन विषयोंके साधनभूत शरीर है सो इस शरीरको भी आत्मासे पृथक् देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मै अपने आपमे उपयोगी होऊँ।

इन्द्रिय विषयोको जीतनेके लिए मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड दें अथवा धर्मके नामपर किसीकी उपासना करलें, बडे-बडे कार्य कर लें, ये सब ठीक है, परन्तु निर्विषय आत्म-तत्वका दर्शन जब तक नही तब तक इन्द्रियोका विजय नही। इन्द्रियविजय बिना मोक्षमार्ग नही। इन्द्रिय विषयोको जीतनेके लिए हमे कैसा उपयोग बनाना है ? इस सम्बधमे समयसार मे श्रीअमृतचदजी सूरि जी कहते है कि विषय भोगका सम्बध तीन बातोसे हुआ करता है—१—द्रव्यइन्द्रिय, २—भावइन्द्रिय और ३—विषयभूत पदार्थ। विषयभोगका सम्बन्ध इनका रहा करता है। द्रव्यइन्द्रियके निमित्तसे उनके विषयभूत इन्द्रियोमे ज्ञान करके उनमे ही रम गया। इस तरहसे भोग भोगनेके लिए तीनसे वास्ता पडता है—द्रव्यइन्द्रिय, इन्द्रिय और विषयभूत पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय तो शरीरमे दिखने वाले ये है। द्रव्यइंद्रियके निमित्तसे ज्ञान द्वारा जानकारी होती है, वह जानकारी भावेन्द्रिय है और विषयभूत पदार्थ, ये जगतके सब पुद्गल पदार्थ हैं, जो विषय पाच प्रकारके होते है। स्पर्श तो स्पर्शनका विषय है, रस रसनाका विषय है, गध घ्राण का विषय है, रूप चक्षुका और शब्द श्रोत्रका विषय है। चक्षुइन्द्रिय और रसनाइन्द्रिय तो दुनियामे कमाल कर रहे है, हम इन इन्द्रियोके प्रति कैसा ज्ञान बनावें कि विषयोसे हटकर अपने स्वभावमे लग जावें। कहते है कि इन्द्रिय क्या है ? पुद्गल हैं, जानने वाली नही हैं, क्योकि यह मैं आत्मा आत्मा हू, चैतन्यस्वरूप हू। जो जानता हू, ज्ञानमय तत्त्व हू। मैं सबसे

निराला हू । मुझमें और इन पौद्गलिक इन्द्रियोमे कितना अन्तर है ? यह इन्द्रियाँ तो मैं हू ही नही, ये तो मेरेसे भिन्न है । मिथ्या ज्ञान करके ही हम इन इन्द्रियोके वशीभूत हो जाते है और इन इन्द्रियोके वशीभूत होकर दु ख उठाते है ।

इन द्रव्य इन्द्रियोके द्वारा भोगसाधन विषय हो जाते है, क्लेश हो जाते है । तो हमे इनका विजय करनेके लिये इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए । लोग कहते है कि भली मार करतारको दिलसे दिया उतार । अरे इन इन्द्रियोने जितना हमे कष्ट दिया है, अन्यने नही दिया है । जैसे किसी परिवारमे प्रधान पुरुष तथा स्त्री पुत्रमे कुछ अनबन हो जाय । प्रधान पुरुष उन अधीनस्थोसे उपेक्षा कर जाये, अलग रहे, उनसे बोलना ही छोड दे, स्त्रीको दु.ख होगा और कहेगी कि बडी मार करतारकी दिलसे दिया उतार । वह सोचती है अरे पतिदेव हमसे विलग क्यो हो गए है ? इससे अच्छा तो यह भी था दो चार दिन खाना न देते, मार देते, परन्तु हमे दिलसे क्यो उतार दिया है ? हमसे वह स्नेह क्यो नही करते है, हमसे बोलते नही। , और हमारी ओर निगाह भी नही डालते है । अरे ऐसा ही इन इन्द्रियोको दड दे दो इन्द्रियोको विजय करनेके लिये क्या जीभ काट डालो, नाक काट डालो, आँखें फोड दो । नही, इन्द्रियविजयका उपाय है उपेक्षा । किसी दूसरेकी ओर मुडकर भी न देखो । अरे यह तो जग है, इससे तू बिलग है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है । तू इन्द्रियोमे क्यो फसा हुआ है ? और इन इन्द्रियोके वशीभूत होकर तेरा ज्ञान दब रहा है । इन इन्द्रियोके कारण ही तो स्पष्ट बात भी समझमे नही आती है । अरे तू तो अपने आपको सोच कि मैं इन्द्रियोसे अपना सम्बन्ध नही रखता । मेरी तो इन्द्रियोकी ओर ज्ञानदृष्टि भी नही जाती । तू अपनेको जान कि मैं आत्मा स्वतत्र हू । यदि तू अपने को इस प्रकारका बना ले तो यही हुआ इन्द्रियोपर विजय प्राप्त करना । इन इन्द्रियोके द्वारा ही नाना कषाय बढते है । इन्द्रियोके निमित्तसे जो ज्ञान होता है उसे कहते है भावइन्द्रिय । इन्द्रियोके प्रति हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है, पराधीन ज्ञान है, किन्तु मै आत्मा तो अपूर्ण नही हू यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञानमय है । इन्द्रियोके द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है । अत परस्पर इन दोनों ज्ञानोमे अन्तर है । मैं अपूर्ण ज्ञान नही हू । मैं तो अपनेको इन्द्रियज्ञानसे भिन्न सहज ज्ञानमय देखता हू, क्योकि वह तो अपूर्व ज्ञान है । मुझे तो चाहिए कि इन इन्द्रियोके खण्ड-खण्ड ज्ञान से मैं पृथक् अखण्डज्ञानमय आपको अनुभवू, इन्द्रियज्ञानसे बिलग होऊ ।

रसनाइन्द्रियको तो देखो इसका विषय भावेन्द्रिय ज्ञानके द्वारा ही ज्ञान पाया है । कोई अधेरेमे बैठा हुआ आम चूस रहा है । उसको पता नही कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है, केवल उस आमके रसको जब जिह्वामे रखता है तब उसे आमका पता चलता है कि आम है । फिर भी उसे आमके रूपका पता नही चलता है । उसे यह पता नही कि आम

किस रंगका है, किस रूपका है ? देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ ना । आमके विषयमे पूर्ण जानकारी नही हो पाई । यह ही देखो इन्द्रियज्ञान है ।

भाई अपनेको इन इन्द्रियोके उपयोगसे हटाओ । ये बाह्यपदार्थ जड है, सग है, परिग्रह है, पर यह मै आत्मा चैतन्यस्वरूप हू, केवल हू, असग हू, किन्ही अन्यपदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध नही है । वे सब स्वरूप अपनी-अपनी सत्तामात्रमे है, मैं अपनी सत्तामात्र हू—ऐसा भेद करके उन बाह्यपदार्थोंसे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो, उनमे दृष्टि न डालो । केवल अपने आपको निरखो । अरे अपने इन विषयोको जीतनेका क्या कोई और उपाय है ? इन्हे कुवेंमे डाल दो अथवा इन्हे तोड फोड दो । अरे इन इन्द्रियोको बर्बाद कर दो, कान कतर दो, आँखें फोड दो । विषयोमे विजय प्राप्त करने का क्या यही उपाय है ? अरे इन इन्द्रियोका बहिष्कार कर दो, दिलसे उतार दो । इसी प्रकारने विषयोको दिलसे उतार दो, मोहको भुला दो । अरे ये सब भिन्न-भिन्न रूपोमे जन्ममरणके चक्रमे डालने वाले है, इन विषयकषायोको त्याग दो । इन विषयोके सारभूत शरीरको अपने स्वरूपसे पृथक् देखो और अपने को ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होवो । इस जगतमे जितने भी लोग पराधीन बने रहते है वे विषयोके कारण ही पराधीन बने रहते है । अरे अपने विषयो को दूर करो । जो पराधीनता है, वह विषयोसे ही है । इसलिये विषयोंसे छुटकारा प्राप्त करो । कोई किसीमे बधा है क्या ? अरे कोई किसीसे बँधा हुआ नही है । केवल खुद ही मे कल्पनाएँ करके विकल्प बना लिया है । विकल्प बन जानेसे मोह हो गया है और मोहमे आकर ही वह परमे बध गया है ।

सुकौशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्थामे विरक्त हो गया । वह घर छोडकर चल दिया । देखो राजकुमारकी अवस्था छोटी थी । अपनी माँ व साम्राज्य सुखसे विलग हो गए थे । देखो मत्रीजनोंने उन्हे बहुत समझाया, अन्य लोगोने भी बहुत समझाया, पर वह न माने । उन्हे ज्ञान हो गया था, वे अपनी आत्मामे ही लीन होना चाहते थे । तब फिर उनका रोकने वाला कौन था ? उनमे यथार्थज्ञान हो गया था तब फिर दूसरोका असर उनके ऊपर किस प्रकारसे हो सकता था ? मन्त्रियोंने राजकुमारको बहुत समझाया कि आपकी स्त्रीके गर्भ है, बच्चा तो हो जाने दो, फिर बादमे चाहे चले जाना । बेटा उस बच्चेको राजतिलक दिए जावो । दुनियाको यह बता जावो कि मैं अपने बच्चेको राजतिलक दे रहा हू । इसलिए हे महाराज ! अभी इतना जल्दी न जावो । दो तीन माह बाद चाहे चले जाना । राजकुमार सुकौशल कहते है कि अच्छा गर्भमे जो सतान है उसे मैं तिलक किए देता हू । जो गर्भमे सतान है उसे मै राजा बनाए देता हू । ऐसा कहकर कौशल राजकुमार विरक्त हो गए । ज्ञान ही सुख, आनन्द व शांति देता है और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश हैं । अत

मै अपनी विषय कषायोको त्यागकर अपनेमे ज्ञान उत्पन्न करूँ और अपने आपके ज्ञानसे आनन्द लू और सारे संकल्पोसे मुक्त होऊं। शान्तिके मार्गमे बढनेके लिये सबसे पहिला कदम है इन्द्रियविजय अर्थात् इन्द्रियोके विषयोपर विजय प्राप्त करना। यह इस उपायसे संभव है। इन विषयोसे पृथक्, विषयोके ग्रहणके साधनभूत द्रव्येन्द्रियसे पृथक् और विषयग्रहण विकल्परूप भावेन्द्रियसे पृथक् ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वका सचेतन करू। इसके लिये हम सीधा इतना ही करे कि विषयके निमित्तोको दूर करें और विषयोके कारणभूत इस शरीरको आत्मासे अलग समझें। फिर इन विकल्पोके दूर होनेपर आत्मामे परमविश्राम होगा, जिससे शान्तिके स्वरूप और शान्तिके मार्गका साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूपमे है। अन्यत्र विषयोमे सुख खोजना महामूढता है।

जो आत्मामे हो उसको तो हाँ करना और जो आत्मामे नही है उसे ना करना। आत्मामे ज्ञान है सो ज्ञानकी हाँ करना और आत्मामे वर्ण नही, देश नही, जाति नही, शरीर नही, कर्म नही तो उसकी ना करना। ना को हा कर दे और हा को ना करदे उसीका नाम मिथ्यात्व है। आत्मामे ज्ञान है, पर उसे ना कहने वाले बहुत है। कुछ दार्शनिक भी ऐसे है जो आत्माका स्वरूप ज्ञान नही मानते। बहुत-बहुत बातें हैं। यहा कौन अपनेको ज्ञान-स्वरूप मानता है? अरे विशुद्ध व्यवस्था नही है तो मैं हू क्या? जैसा ही जिसने कह दिया वैसा ही मान लिया और बहकाए यह तो हाल है सस्कार परिणामोमे, जैसा जिसने समझा दिया, जैसा जिसको जैसा सग मिल गया तैसा ही असर बना लिया। ऐसोकी सख्या ज्यादा है जिनको हा का पता नही है और जिनको ना ना ही का भूत लगा है। उनकी तो चर्चा ही नही है यहाँ। और भीतर दर्शन शास्त्रमे चले तो ज्ञानका निषेध करने वाले बहुत है। कोई दार्शनिक ज्ञानको आत्माका स्वरूप नही मानते, क्योकि ज्ञानका स्वभाव आत्मासे नही मानते। ज्ञानके सम्बन्धसे आत्मा ज्ञानी है, आत्माका स्वरूप ज्ञान नही है ऐसा मानते है। और इसी तरह और और भी है। आत्मामे रूप है क्या कि आत्मा हरी है कि काली है कि सफेद है, कुछ भी नही, किन्तु मोही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह सफेद है। मैं गोरा हू, मै काला हू, मै गेहुवें रगका हू। अरे यह आत्मा अनेक रूप नही है। आत्मामे वर्ण है क्या, जातिया है क्या? अरे आत्मामे जातिया नही। आत्मामे वर्ण नही, वह तो चैतन्यस्वरूप, चेतनात्मा प्रभु सरीखी एक वस्तु है। वह आत्मा है, मेरी जाति नही। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इत्यादि कोई जाति आत्मामे नही है। विकार और अविकार भावोकी तो बात ठीक है कि मेरी इस आत्मामे तो विकार है या अधिक विकार नही है। वह तो निर्विकार है, निर्विकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानघन स्वरूप है। विकारोका होना आत्माका काम नही है। वह तो चैतन्यपदार्थ है। यद्यपि करीब-करीब परिणामोके अनुकूल ही जातियो मे विभाग हैं अर्थात् जितने प्रकारके परिणाम हो। उतनी ही जातिया होगी। परतु परमार्थसे

जैसा मै हू वैसा ही हू। मेरे अस्तित्वमे कोई जाति नही। जैसे आज मै हिन्दुस्तानमे हू और हिन्दुस्तानी कहलाता हू और अगर मरकर और इगलैण्डमे जाकर किसी अन्य योनिमे जन्म लेऊँ तो अगरेज बन जाऊँ और कहू कि मेरा देश इगलैण्ड है। इस तरहसे मेरे स्वरूपमे कोई जातिया नही। जब तक जिन्दा हू तब तक तो हिन्दुस्तानी हू, अगरेज हू, फला हू इत्यादि विकल्पोकी बातें रहती हैं, पर ज्यो ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प कहा जाता है ? देश का बात देखो, देशके परमाणुकी बात देशपे है, मेरा देश नही, मेरे विग्रह नही। सुख दु खका अनुभव तो चैतन्य प्रदेशमे होता है, शरीरमे सुख दु'खका अनुभव नही होता है। ज्ञान, शिक्षा की बात चैतन्य प्रदेशमे होती है शरीरादिमे नही होती। मेरे विग्रह नही, शरीर भी नही। मैं इनका नही और ये मेरे नही। मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र हू—ऐसी भावना ज्ञानी जीवके होती है।

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्न· सकरेपी च सकर ।
तत्त्वतः सर्वतः प्रत्यक् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

हे आत्मन् ! तुझे जगतमे न्यारा बनना है या जगतसे मिचा (मिला) हुआ रहना है—पहले इसका निर्णय कर। जगतसे न्यारा रहनेकी स्थिति कैसी होगी तो देखो वहा न कुटुम्ब है, न समागम है, न शरीर है, न कर्म है, न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कषाय है, न इच्छा है, न व्याकुलता है, न आकुलता है, केवल जाननमात्र निराकुल, शान्त सामान्य स्वरूप तेरी स्थिति होगी। यदि जगतसे मिला हुआ रहना है तो उसमे स्थिति कैसे होगी ? कुटुम्ब परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशसा, निन्दा, कभी बडा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो सकता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कही नारकी हो जाय, कही तिर्यंच हो जाय, कही कुछ हो जाय, कही निगोद हो जाय, कीडा-मकौडा बन जाय, उसका कोई भरोसा नही कि वह क्या न बन जावे ? निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने समझनेकी शक्ति भी नही मिलती है। जगतसे मिला हुआ रहने पर देखो भाई ऐसा हो जाता है। अब तो निर्णय कर लो कि इस ससारसे न्यारा रहना है या ससारसे मिलकर रहना है ? यदि तुझे जगतसे भिन्न रहना है तो अपनेको जगतसे भिन्न देख और यदि जगतसे अपनेको मिला हुआ रखना है तो अपनेको जगतसे मिला हुआ देख। यदि जगतसे मिला हुआ रहता है तो उसे सकर कहते है। तो तू अपनेको जगतसे भिन्न रखनेका प्रयत्न कर और जगतमे भिन्न रहनेका एक सरल उपाय यही है कि तू अपनेको जगतसे भिन्न देख। जो अपनेको जगतसे भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है और जो अपनेको सकर याने जगतसे मिला हुआ मानता है वह सकर अर्थात् जगतसे मिला हुआ रहता है।

भाई कल्याणका बडा सरल उपाय है। केवल अन्तरमे अपने आपको मानना है कि

मैं ज्ञानमात्र हू, निर्मल हू, जगतमे सबसे निराला हू। भाई अपने आपमे ऐसी दृष्टि बनाना कुछ कठिन है क्या ? अरे यह तो अत्यन्त सरल है, मगर अतरग सयम चाहिए। अपनी अतर आत्माको सयत कर सको, ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो तू कमाने वाला है क्या ? हजारो रुपयो का मुनाफा मिलता है तो वह तेरी करतूत है क्या ? कभी-कभी बडे-बडे सेठ लोगोको देखा होगा कि उनके पास लाखो रुपयोकी सपत्ति होती है, वे दूसरोको क्षमा कर देते है। बतलावो कि उनके पास सपत्ति कैसे आ जाती है ? अरे वे पहिले वे शुद्ध मार्गके प्रेमी थे व अब धर्मका कार्य करते हैं, दान करते है तो उनके पास करोडोका धन आ जाता है, उन्हे परिश्रम नही करना पडता है। और दूसरे वे लोग जो दूसरोको गाली देते है, अधर्मका कार्य करते है वे लोग बडा परिश्रम करते है, फिर भी सम्पत्ति हाथमे नही आती है। धनका आना पुण्योदय पर निर्भर है। उन व्यक्तियोको देखा होगा कि वे अचानक ही अपने धार्मिक सत्सगके पास चले जाते है, अपने घर-द्वार की फिक्र नही करते है, फिर भी उनको करोडो रुपयोकी आय हो जाती है। अरे अगर हम दुकानपर बैठे ही रहे तो क्या इतनेसे कमाई हो जायगी, नही होगी। कमाई तो पुण्यसे होती है। अपना कर्तव्य समझकर अर्थ-पुरुषार्थका उचित समय पर कार्य करें और पुण्यका कार्य करें, धर्मका कार्य करे तो कमायी होती है। और वर्तमानमे भी पुण्यधर्मसे चलते है तो लम्बे समय तक सपत्ति साथ रहती है। लक्ष्मीके चिन्तनमे अपने को अधिक फसानेकी आवश्यकता नही है। गृहस्थको तो यह देखनेकी आवश्यकता है कि मेरे भाग्यसे जितना आता है उसके भीतर ही हम अपना गुजारा बनाए। जैसा गुजारा बन सके वैसा बनावें। लोग इज्जत करते है तो इज्जत करनेके लिए उनके पास पोजीशन चाहिए। और यदि पोजीशन नही मिलती है तो बात नही बनती है। लोग दूसरोकी इज्जत रखनेके लिए, देखनेके लिए, समझानेके लिए प्रयत्न करते है परन्तु उनकी इज्जत नही रहेगी इत्यादि प्रयोजन रखना अविवेक है। जिस किसी प्रकारसे यदि धन वैभव आता है उसपर यह विश्वास करना चाहिए कि भाग्यसे ही प्राप्त होता है। अतः जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जावे उस पर ही गुजारा करना चाहिए। बस इस तरहसे जो रहे और अपने आत्मकल्याण की ओर ध्यान रखे तो वह मजेमे रहेगा। हम कुछ दिनके लिए यहाँ है, सदा नही रहेगे। अचानक ही किसी दिन यहाँसे चले जाएगे।

यहाँके लोगोको क्या अपना मानें। अपना पूरा कैसे पडे तथा आनन्द कैसे अपनेमे भरे ? इसकी फिक्र तू करे तो तेरा भला होगा। यदि तू अपनेको जगतसे न्यारा रक्खे, शरीर से कषायोसे न्यारा रखे और केवलज्ञान और आनन्दको ही तू प्राप्त करनेकी दृष्टि रखे तो तेरा भला होगा। अरे दूसरोसे मुहब्बत जोड-जोडकर तू कब तक गुजारा करेगा ? यदि तूने इस प्रकारसे अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। किन लुटेरो खचोडो को तू अपना

मान रहा है ? वे अपने नही है । अरे देखो मोहका माहात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निकृष्ट भी हैं तो भी अच्छे लगते हैं, उनमे कुछ ज्ञान नही है, उनमे दुर्गुण है, वे सब स्वार्थी है, खुदगर्जी है, उनसे अपना कल्याण नही है, फिर भी उनमे मोह है, आकुलताएं है । उनको आकुलित होना निश्चित है जिनकी दृष्टि परमे ही होती है । उनसे तेरा क्या पूरा पडेगा ? अरे उन लतोडो-खचोडोसे अपना सम्बध न स्थापित करो । उनसे तुम्हे कुछ नही मिलेगा । तुझे ससारी ही रहना है तो तू ससारी ही अपनेको देख । यदि तू सकरको चाहता है तो बाह्य पदार्थोंमे ही तू अपनी रुचि बना । तू अपनेको बाह्य पदार्थोंसे मिला-जुलाकर रख । यही तेरा ससारी बननेका मुख्य है । और भाई अगर अपनेको जगतसे न्यारा रखना है तो तू अपनेको जगतसे न्यारा निरख । आनन्द तो तेरेमे ही है । तुझे आनन्द कही बाहरसे नही लाना है । तू अपनेको यह समझ कि मैं ज्ञानमात्र हू, इसके आगे मैं कुछ नही हू । इस ज्ञानमे ही सब कुछ आ गया । तू जगतके अन्य प्राणियोसे भिन्न हो जायगा । मैं कोई ऐसी चीज मुट्ठीमे ले लू और मुट्ठी बद करके कहू कि इसमे क्या है ? इस बातको मैं फिर बताऊगा कि इसमे क्या है ? मैं पूछूंगा कि मेरी मुट्ठीमे क्या है ? मैं ही उत्तर देता हू कि मेरी मुट्ठीमे सब कुछ है । चौकी है, ताला है, चाभी है, बाल्टी है इत्यादि । लोग यदि कहे कि दिखलाओ तो मैं दिखलाऊँगा । हाथमे कौनसी चीज निकली ? स्याहीकी टिकिया । अरे उस स्याहीकी टिकियामे ही सब कुछ है । क्या है ? अरे बिल्डिग है, बाल्टी है, समुद्र है, चौकी है, सब कुछ है । उस स्याहीकी टिकियाको पानीमे घोल लिया, फिर उस स्याहीसे बिल्डिग बना लिया, बाल्टी बना लिया, समुद्र बना लिया इत्यादि । यह देखो एक स्याहीकी टिकियाने ही तीन लोककी रचना कर दी । बताओ ये सब कहांसे आए ? अरे ये सब हाथसे ही आए । अत मेरे हाथमे वह चीज है कि इसमे सब कुछ है । यह एक विनोदकी बात है । मेरे हाथमे सब कुछ है । यहाँ प्रकृत बातपर आइये । मेरेमे क्या है ? मेरेमे सब कुछ है । मेरेमे ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है । ज्ञानकी कलामे ही तो देखो यहाँ राग है, मोह है, शोक है, ज्ञानका अंधेरा है, ज्ञानका उजेला है । ये सब ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है । ज्ञानसे ही विपदा है, ज्ञानसे ही सपदा है, सब कुछ ज्ञानपर निर्भर है । बडी-बडी विपदाओके सामने यदि ज्ञानसे काम लें तो विपदाएँ दूर हो सकती है । ज्ञानके बिना आकुलताएँ, व्याकुलताएँ दूर नही होती है ।

भैया ! कल्पनाएँ करके ही विपदा बना ली जाती है । देखो एक नौजवान लडका है । कोई अभी-अभी चार-छ. वर्ष शादीके हुए हैं । दोनोमे परस्पर प्रीति है । एक दूसरेका जीवन आनन्दसे व्यतीत हो रहा है यानी दोनो ही एक दूसरेके इष्ट बन रहे । और स्त्री यदि किसी कारणसे गुजर जाता है तो स्त्रीके पीछे उस पुरुषको कितना क्लेश होगा ? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई मर गये । इस प्रकारसे वह व्यक्ति २४ घटे दुःखी

होता रहता है। और यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनावे कि अथवा उस व्यक्तिका ज्ञान जग जाय कि अरे यह मेरे स्त्री, पुत्र वगैरा मेरे कही कुछ नही है, यह सब माया है, ये सब अलग-अलग अपना अस्तित्व लिए हुए है, उनसे मेरा परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नही है—ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाएँ समाप्त हो जावे। बाकी अन्य उपायोसे विपदाएँ खत्म नही हो सकती है। चाहे इसकी शादीकी बात चलने लगे, धन-दौलत मिल जाय, जेवर, गहना मिल जाय, सारी चीजें मिल जावें, मगर जो इष्ट उसके दिलमे बस गया है उसकी कल्पना उसे दु:ख देती रहती है। उसका केवल ज्ञान जग जाय तो ये सारी विपदाएँ समाप्त हो जावेंगी। रोजगारमे भी ऐसा ही होता है। कोई समय ऐसा आवे कि चारो तरफ से नुक्सान हो जावे। चारो तरफसे नुक्सान होनेपर उस व्यापारीको दु:ख हो जाता है। हाय मैंने कितनी कमाई की? सब चला गया, नुक्सान हो गया। अरे व्याकुल हो जानेसे क्या धन वापस लौट आता है? क्या उस नुक्सान हो जाने वाले धनको कोई वापस कर जायगा? अरे कोई धन वापस नही दे जायगा। उल्टे लोग तो उसे लूटनेकी और सोचेंगे। दु:ख दूर होनेका उपाय तो यहा भी ज्ञान है। ज्ञानसे जब जाना कि वह सब तो भिन्न चीज है, तू उस धनकी चिंता न कर। अरे तुझे कोई शरण नही मिलेगी। तू परपदार्थमे शोक मत कर, व्यर्थमे मत घबडा। तेरे शोक करनेसे तुझे लाभ नही मिलेगा। अरे तुझे केवल तेरे ज्ञानसे लाभ मिल सकता है। ज्ञानको छोडकर अन्य किसीसे कुछ लाभ नही प्राप्त हो सकता है। अरे मुझे पार कौन कर देगा? जिस भगवानकी हम उपासना करते है। क्या वह हमे पार कर देगा? भगवानकी उपासना करके अपने स्वरूपको पहिचाने अपने आपके स्वरूपको निर्मल बनावे तो यह भगवान हमे पार कर देगा और हम पार हो जावेंगे। मुझे पार करने वाला कोई नही है। कोई मुझे सुखी कर देगा। अरे मुझे सुखी कर देने वाला कोई नही है। जैसे माँ-बाप बेटेको सतोष देते है कि बेटा तू तो राजा है। राजा कही पाप करता है। देखो यहाँ यथार्थ बात है। हमारे आचार्योंने हम लोगोंको करुणा करके ऐसा समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञानमात्र है, तेरेमे तो कोई क्लेश है ही नही, तू तो सर्वोत्कृष्ट है। अरे तू दु:खी क्यो हो रहा है? अरे इन बाहरी पदार्थोंमे जिनमे तू दृष्टि डालता है वे सब असार हैं, अहित करने वाले भिन्न हैं। इसलिए जब कभी भी परमे दृष्टि होगी तब क्लेश होगे। वे परपदार्थ तेरे लिए शातिके कारण नही होगे। अरे तू उनके लिए क्यो मरता है? क्यो अपनेको बर-बाद करता है? अरे अपने स्वरूपको तो देखो। तू तो परमार्थस्वरूप है। तू अपने आपको देख तो तू प्रभु हो जायगा।

भैया! बतलाओ कि अपने आपको जगतमे सब पदार्थोंसे निराला मान लेनेमे क्या बिगाड हो जायगा? हे जगतके प्राणी! तू अपनेको सबसे निराला मान ले तो तेरे समस्त दु:ख

समाप्त हो जावेंगे। अरे तू ठीक ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दुःख दूर हो जावेंगे और यदि इसके विपरीत तूने अपनेमे ज्ञान न किया, भीतरमे ज्ञानका अँधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश रहेंगे और तू जगजालमे फँसा रहेगा। तू अपनेको निर्मल देख, अपनेमे ज्ञान उत्पन्न करे तो तुझे जीवनभर सुख प्राप्त होगे। यदि तू अपने ज्ञानस्वरूपको न सभाल सका, अपने आपको निर्मल न समझ सका तो आजीवन जगजालमे फसे रहेगा। भगवानकी वाणी एक आध घटे पढ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियोके सगमे रहते है तो फिर वे ही सोचें अपनेको कैसे सभाला जाय ? अरे उनको तो वह मोही प्राणी ही रुचते है, उनके लिए वही सब कुछ हैं। भयानक विपत्तियाँ जिनमे सामने है उनको ही वे मोही प्राणी दौडते हैं और जिनसे कुछ हित होगा, जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही है। जो अपनेको शुद्ध, आत्मतत्त्व रूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा और जो अपनेको अशुद्ध देखेगा वह अशुद्ध बन जायगा। मै मनुष्य हू, मैं अमुक चद हू, मैं फल हू—ऐसी दृष्टि अगर बन गई तो क्रोध, मान, माया इत्यादि बढ ही जावेंगे और अहकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। और यदि अपनेमे ऐसी भावना बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र, शुद्ध, चैतन्यस्वरूप वस्तु हू तो मैं शुद्ध बन जाऊगा। हे आत्मन् ! तेरे ऊपर कूडा लदा है। तू इस कूडेकी फिक्र मत कर। तू अपनेमे विद्यमान ज्ञानके उजेलेको सम्हाल, बस यही एक फिक्र कर। तू अपनेको देख कि मै सबसे निराला, ज्ञानमात्र हू, ज्ञानमय हू। तू अपनेको यदि ज्ञान-मय देखे तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदाएँ, सारा कूडा खत्म हो जायगा। तू अन्यकी चिता न कर। तू तो केवल अपने भीतरको शुद्ध देखनेकी फिक्र कर। जो अपनेको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है।

भैया, बहुतसी चीजे मिल जाएँ, फिर भी किसी जीवमे किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही। एक बोरेमे गेहू, चना, मटर इत्यादि मिल गए है, फिर भी सब न्यारेके न्यारे है। समुदायको देखकर कहते हैं कि मिल गए हैं, परके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे ही है। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया तो समुदायमे कहते हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमे दूध है और पानीमे पानी है। अब भी दूधमे पानी नही मिला और न दूधमे पानी मिलेगा। सब न्यारा-न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरसे न्यारा नही रखा है, क्योकि यदि हम चाहे कि शरीर तो यही रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुच जाय तो आत्मा नही पहुच सकता। तो भी शरीरमे शरीर है और आत्मामे आत्मा है। केवल विवेक यन्त्र चाहिए। पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग-अलग करनेका यन्त्र होता है। यन्त्रोके द्वारा ही दूध और पानीको समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुए शरीर और आत्माको समझनेका यन्त्र चाहिए। वह यन्त्र है—प्रज्ञा-

स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि। इन्द्रिय सयम कर लो। इन्हीसे तो बरबादी होती है, इसको तू सयत कर। और अपनी आत्मामे चला जा, तू अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कर कि इस शरीरका ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोका ध्यान न रहे तो अनुपम सुख प्राप्त होगा। तू इन्द्रियोंको नि सकोच उपयोगसे त्याग दे। किसी भी इन्द्रियका रच भी ख्याल न रहे। तो तुझे स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवलज्ञानका वर्तन है। अरे वही तो तेरा स्वरूप है। तू अपने स्वरूपको पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है, तू जगतसे भिन्न हो सकता है। जिन्होने जगतसे भिन्न अपनेको देखा है वह जगतसे भिन्न होकर भिन्न ही चलता रहेगा। और जो अपनेको मिला हुआ देखता है, मैं अमुक हू, मैं साधु हू मै ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ ही चलता रहेगा और आजीवन उसको क्लेश ही रहेगे। जो व्यक्ति अपनेको सबसे मिला हुआ समझता है वह सबसे बोलता-चालता है, देखता है, सुनता है, सबसे मिलता है, सबसे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणकी फिक्र उसको नही रहती है। इसी कारण वे जीवनभर दुःखी रहते है। अगर भीतरके सत्मे स्वय निरखें कि मै तो सबसे निराला, केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हू। तो हमारी यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओके कर्मोंके पहाडोके पहाडोको जला सकती है। है एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्मदृष्टि, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि सारे पहाडोको भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बातको छोडकर चलोगे तो जगतमे रुलना पडेगा। और यदि इतनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतमे सबसे निराला, ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्तिको लिए हुए हू तो हे प्रियतम! तू प्रभु बन जायगा।

देखो एक शब्दकी बात--पतिके कितने नाम है, प्रीतम बोलते है, खसम बोलते है, बालम बोलते है, सैया बोलते है, पिया भी बोलते है, मगर ये सब क्या हैं? ये सब आत्माके नाम है। जो पतिके नाम रख दिये है वे सब आत्माके नाम है। पिया वह कहलाता है जो प्रिय है। मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है? अरे तुम्हारा प्रिय तुम्ही हो। अगर कोई जानपर आफत आ जाय तो यदि हाथमे लडका हो तो अपनी जान बचानेके लिए लडका भी फेंक दिया जावेगा। लडकेकी फिक्र नही रहेगी। लडकेका पता नही क्या होगा, परन्तु उसको भी फेंक दोगे। इसलिए तेरा पिया दूसरा नही है, तेरी अपनी आत्मा ही अपना पिया है, दूसरा नही है। प्रीतम शब्द बना है प्रियतमसे। जो ज्यादा प्रिय है। जैसे गुड, बैटर, बैस्ट रूप बनते है तारतम्यमे वैसे ही प्रीतम, प्रिय, प्रियतर, प्रियतममे है। प्रियतम शब्द के माने है जो अधिक प्रिय हो। तेरा प्रीतम कौन है? तेरा प्रीतम तेरी आत्मा है। आत्मा को छोडकर अन्य कोई तेरा अधिक प्रिय नही है। कितने ही तो धर्मके खातिर सब कुछ छोड़

देते है । सीता जी अग्निपरीक्षामे उत्तीर्ण हो गयी । अग्निमे जब कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावें तो फिर घरमे आनन्दसे जावें । उनके तो धर्ममे प्रीति थी, सब कुछ छोडकर एक आत्मधर्ममे रुचि थी । हमारा घर छूटा जा रहा है—इस विकल्पको तो सभावना भी नही, ऐसा सीता जी ने अपने धर्मको बचानेके कारण नही कहा । उनके लिए धर्म ही प्रिय था । वह सोचती थी कि यदि बच जाऊगी तो धर्ममे ही रहूगी । धर्मके माने है स्वभावरमण और दूसरी चीज नही है । सही स्वरूपको जानने व उसमे रमने का नाम ही धर्म है । प्रीतम तुम्हारा कोई नही है । तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है । बालमको बल्लभ बोलते है । बल्लभका अर्थ प्रिय है । सैया बना है स्वामीसे । अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन ? अरे तेरा स्वामी तू ही है । तेरा मालिक तू ही है । तेरा सइयाँ तू ही है ।

देखो भगवानकी भक्तिमे भगवानको सब विशेषण लगते है । हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइया । साइया तो भजनमे भी गाया करते है । भगवान और आत्मामे भेद क्या है ? कुछ नही । तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैया है, तुम्हारा प्रिय है, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है । और हे आत्मन् ! इस दुनियामे तेरा कुछ नही है । सबसे निराला अपने आपको देखो । यदि सबसे निराला इस जगतमे तू अपने आपको नही देखता है तो तू इस ससारमे रुलेगा । अब देखो जिसको कल्याणमे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नही है । हे आत्मन् ! तुझे तो कल्याण चाहिए । तेरा वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए । ज्ञानकी बातको ज्ञानी ही समझ सकता है, अज्ञानी नही समझ सकता है । ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको परख सकता है, पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति ज्ञानी को नही परख सकते है । देखो ये दो भैया भिण्डसे आये हैं जैसे कोई तो पर्वको घरसे निकलता फिर पर्वके बाद घर पहुच जाता है । किन्तु इनको तो सभी दिन पर्वका दिन है । अरे परवाह न करो । घरका काम तो चल ही जायगा । उसकी चिंता न करो । अगर तुम चिता करोगे तो क्या तुम्हारे घरका काम नही चलेगा ? अरे चिंता न करो, घरका काम तो चलेगा ही । चिताएँ नही करनी चाहिएँ । चिंताए करनेसे नुकसान है । भीतरसे जब आत्मकल्याणकी भावना रहे तो शाति प्राप्त हो सकती है ।

सुकुमार स्वामी मकानसे चले । जिसका शरीर तो सुकुमार था । कमलकी वासमे पहुचने वाले चावल ही जिसके गलेमे निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखते ही आँसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए, घरसे चले, नगे पैर चले जा रहे है, खून बह रहा है । अब उनके लिए वैभव वैभव नही रहा । वे साधु हो गये, ध्यानमे बैठ गये । अब उनके शरीरमे केवल ढाँचा ही रह गया था । ऐसी सुकुमार अवस्था थी, जब कि इन्होंने,

अपने शरीरको तपस्यामे ही गला डाला था और देखो अतमे उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या उन्हे कष्ट था ? अरे भाई यह समझो कि कोई कष्ट नही है। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो नही है। अरे देखो रात दिन कितने कष्ट है ? गृहस्थीमे कष्ट नही मालूम होते है, पर धर्मके कामोमे कष्ट मालूम होते है। जहा मन नही लगता वहां कष्टोका नाम लगता है। धर्मका काम जहांपर हो रहा हो वहाँ बैठनेमे ही हे आत्मन्! तू परेशान हो जाता है। जहा थोडासा भी समय हो गया कहते है कि अरे एक घन्टा हो गया, दो घटा हो गया, पौन घन्टेमे हो जाना चाहिए था। स्वाध्याय जल्दी खतम हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कार्यमे वे आरामसे घुटने टेके बैठे रहे, कोई परेशानी नही है। कितनी ही अडचनें हो, फिर भी उनको परेशानी नही होती है। हे आत्मन्! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है वहां चाहे जितने कष्ट हो कष्ट नही है और जिसका मन किसीके ऊपर नही है वहाँ यदि कष्ट भी नही है तो कष्ट कल्पनासे आ पडते है। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपकी ओर देखो तो आत्मा भिन्न हो जायगी, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हू इसलिए अब अपनेको सहज सत्यस्वरूपमे देखकर अपनेमे अपने आप विश्राम पाऊँ।

॥ इति आत्मपरिचयन ॥

ब्रह्मचर्य-विंशतिका

ब्रह्मचर्यं परं दानम्, ब्रह्मचर्यं परं तपः।
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं परं महः ॥१॥

ब्रह्मचर्यं परं यानम्, ब्रह्मचर्यं परं हितम्।
ब्रह्मचर्यं परं ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं परं सुखम् ॥२॥

ब्रह्मचर्यं परं तेजः, ब्रह्मचर्यं परं बलम्।
ब्रह्मचर्यं परं श्रेयः, ब्रह्मचर्यं परं फलम् ॥३॥

ब्रह्मचर्यं परं सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो यमः।
ब्रह्मचर्यं परं तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परो वृषः ॥४॥

ब्रह्मचर्यं परा क्रान्तिः, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम्।
ब्रह्मचर्यं परा कीर्तिः, ब्रह्मचर्यं परं ऋतम् ॥५॥

ब्रह्मचर्यं परा भक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुरुः।
ब्रह्मचर्यं परा शक्तिः, ब्रह्मचर्यं परो गुणः ॥६॥

ब्रह्मचर्यं परं ज्योतिः, ब्रह्मचर्यं परा छविः।
ब्रह्मचर्यं परं वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं परं हविः ॥७॥

ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम्।
ब्रह्मचर्यं परं धाम, ब्रह्मचर्यं परं श्रितम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यं परं रत्नम्, ब्रह्मचर्यं परो लयः।
ब्रह्मचर्यं परं भद्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः ॥९॥

ब्रह्मचर्यं परा शान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा निधिः।
ब्रह्मचर्यं परा क्षान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा विधिः ॥१०॥

ब्रह्मचर्यं परं मन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परो जयः।
ब्रह्मचर्यं परं तन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परं वपुः ॥११॥

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धि', ब्रह्मचर्यं परा गतिः ।
ब्रह्मचर्यं परा ऋद्धिः, ब्रह्मचर्यं परा नतिः ॥१२॥

ब्रह्मचर्यं परो योगः, ब्रह्मचर्यं परो दमः ।
ब्रह्मचर्यं परो भोगः, ब्रह्मचर्यं पर शमः ॥१३॥

ब्रह्मचर्यं पर शीलम्, ब्रह्मचर्यं परं क्रतु ।
ब्रह्मचर्यं पर सत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं पर सुहृत् ॥१४॥

ब्रह्मचर्यं पर स्वास्थ्यम्, ब्रह्मचर्यं पर पदम् ।
ब्रह्मचर्यं पर क्षेमम्, ब्रह्मचर्यं पर वरम् ॥१५॥

ब्रह्मचर्यं परं यज्ञम्, ब्रह्मचर्यं पर शिवम् ।
ब्रह्मचर्यं पर दुर्गम्, ब्रह्मचर्यं पर धनम् ॥१६॥

ब्रह्मचर्यं पर सारम्, ब्रह्मचर्यः परा शुचि ।
ब्रह्मचर्यं पर साम्यम्, ब्रह्मचर्यं परा रुवि. ॥१७॥

ब्रह्मचर्यं परं कृत्यम्, ब्रह्मचर्यं परो रस' ।
ब्रह्मचर्यं पर साध्यम्, ब्रह्मचर्यं पर वचः ॥१८॥

ब्रह्मचर्यं पर स्थानम्, ब्रह्मचर्यं परा धृतिः ।
ब्रह्मचर्यं पर मानम्, ब्रह्मचर्यं परा रति ॥१६॥

ब्रह्मचर्यं पर वीर्यम्, ब्रह्मचर्यं पर रहः ।
ब्रह्मचर्यं पर वित्तम्, ब्रह्मचर्यं पर यश. ॥२०॥

आर्या

आचरति ब्रह्मचर्यं मनसा कायेन यो नर सततम् ।
भजते युग्म स्वास्थ्य सहजानन्दात्मक पद नियमात् ॥२१॥

॥ इति श्री ब्रह्मचर्यविंशतिका ॥

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

82

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

।। शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ।।

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा:, प्रापुर्लभन्त अचल सहज सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।१।।

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।२।।

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ।।३।।

ज्योति. पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।४।।

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।५।।

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्टयाम् ।
आनदशक्तिदृगिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।६।।

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेज, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।७।।

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदित. समाधि ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्ग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ।।८।।

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्प य ।
सहजानन्दसुवन्द्य स्वभवावमनुपर्यय याति ।।९।।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः, प्रापुर्लभन्त अचलं सहज सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशतः स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेज, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदित. समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्ग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्प य ।
सहजानन्दसुवन्द्य स्वभवावमनुपर्यय याति ॥९॥